पंत : आधुनिक कवि

लेखक

प्रो० केसरी कुमार, एम० ए०

प्रकाशक

मोतीलाल बनारसीदास

पुस्तक-प्रकाशक तथा विक्रेता

बाँकीपुर, पटना–४

१९५५] [मूल्य ३॥)

प्रकाशक :—श्री सुन्दरलाल जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बाँकीपुर, पटना
मुद्रक:—श्री शान्तीलाल जैन, स्वतंत्र नव भारत प्रेस, कदमकुआँ, पटना

छायावन की रास

कहते हैं, 'दूर उन खेतों के उस पार, जहाँ तक गई नील झनकार', एक छायावान था। दर्शन की किरणों से उसे सजाया गया था। आम्र, पीपल और वेणुवृक्ष उसके प्रहरी थे। बीच मे एक केलि-कुंज था। वहीं पल्लव पर्यंक पर एक प्रतिमा लेटी थी। उसकी भवों में भंगिमा और नयनों में पंचशर के वाण थे। उसके होठों मे अमृत और हृदय में प्यार था। पर उसकी गिरा मे लाज और प्रेम में मान की मर्यादा थी। सूरज उसके पाँवो मे जावक लगाता था, रात उसकी आँखों में काजल डालती थी। यह आज भी विवादास्पद है कि वह तापसकन्या थी या रतिबाला। पंत के लिए वह नवयुग की रम्भा थी और निराला के अनुसार वह अतीत की शकुंतला थी जो दुर्वासा आलोचको से अभिशप्त होकर दूर चली गई थी। तब द्विवेदी युग की वह आचारपूत धरती जल रही थी जिसने रतिशास्त्र को अग्निसात् किया था और शृंगार तथा विलास को वर्जित प्रदेश (Forbidden land) मान लिया था। उसी समय मध्यवित्त वर्ग मे कुछ नवशिक्षित तरुण, जो रंगीनियों के बीच पले और स्कूल-कॉलेजों मे हीगल के सौंदर्यवाद और अंग्रेज रोमांटिक कवियों के स्वच्छंदतानुराग से अभिभूत हुए थे, उस वर्जित प्रदेश को बडी हसरत से देख रहे थे। उमरखैयाम की रुबाइयों और रवीन्द्र के 'सब-पेयेछिर देशे' में उनकी चाह ने एक राह ढूंढ ली। समय का हर-नेत्र बचाकर, प्रकृति और अध्यात्म की ओट ले तथा कल्पना के सेतु पर चढकर वे उस छायालोक में गए थे। कहते थे, हम वनदेवी की उस अनन्त रास में सम्मिलित हुए हैं जो दिन-रात चला करती है और जिसमें सीमा असीम का आलिंगन करती है। पर लोगों को विश्वास न हुआ था क्योंकि तब आध्यात्मिक रंग के चश्मे सस्ते न थे और अनेक कवि घर के पास कायिक रोमांस के लिए बदनाम थे। वे स्वयं भी धरती की गंध में लौट आए। आज वह छायावन फिर उदास हो गया है। पर कुछ लोगों का

ख्याल है कि वहाँ वह पारिजात भी था जिसके फूल कभी मुरझाते नहीं।

महादेवी जी कहती है कि 'छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त्त और अमूर्त्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है, बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखंडता का भावन किया, हृदय की भावभूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौंदर्यसत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की और दोनों को मिलाकर एक ऐसी काव्य-सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद आदि अनेक नामों का भार सँभाल सकी।' उनका यह कथन सत्य भी है और असत्य भी। सत्य इसलिए कि छायावाद को प्रकृतिवाद, अध्यात्मवाद, रहस्य-वाद आदि नाम मिले। असत्य इसलिए कि उसमे उन मतवादो के सत्य का विकास न हो सका। प्रकृति को एक स्पंदित व्यक्तित्व तो दिया गया, उसके अंतस की अमियधार मे अवगाहन की चेष्टा तो की गई, उसमे एक अमूर्त्त सत्ता के विराट् रूप के दर्शन का प्रयत्न तो किया गया पर साहचर्य की खुली आँखो से उसे देखा न गया जो प्रकृति-चित्रण की सबसे बड़ी शर्त्त है। सबने प्रकृति मे अपनी 'प्रवृत्ति का प्रतिरूप' देखा। अनेक स्थानो पर प्रकृति को उनकी निजी मान्यताओ का बेगार करना पड़ा है। छायावाद को प्रकृतिवाद का पर्याय माननेवाली महा-देवी ने 'सान्ध्यगीत' मे कोमल पंक्तियाँ कही हैं.—

तारक लोचन् से सींच-सींच, नभ करता रज को विरज आज,
बरसाता पथ में हरसिंगार, केशर से चर्चित सुमज--लाज,
कण्टकित रसालों पर उठता है पागल पिक मुझको पुकार!

वसन्त की इस अलस-मदिर सांझ मे हम उनके अनुराग को समझते है, कुछ उनकी उत्कंठित विकलता को भी। परमपुरुष से मिलने के लिए प्रकृतिस्वरूपा होकर उनका जाना भी उचित है। सब ठीक है, सब वाजिब है, पर इसी भरे बसन्त में जब आम की डालियाँ मंजरियों से लद गई है, और अमराई मे कोयल बोल रही है तब शरत् ऋतु मे विशेष रूप से खिलने-वाला हरसिंगार इतने फूलों का गाला कैसे छीट रहा है?

पंत जी की 'चाँदनी' की:--

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद-हासिनी
मृदु करतल पर शशि-मुख धर
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि !
....
वह सोई सरित-पुलिन पर
सांसों में स्तब्ध समीरण
केवल लघु-लघु लहरों पर
मिलता मृदु-मृदु उर-स्पन्दन !

--आदि पंक्तियों में चित्र की असम्बद्धता और दूरान्वयता सहज में ही देखी जा सकती है। रात में कमल का खिलना, आकाश की नीलिमा के नीचे रहनेवाली चाँदनी का आकाशरूपी नीलकमल के ऊपर बैठना और आकाश में सर रखकर सरित-पुलिन पर उसका सोना सबकुछ अद्भुत है।

बात यह है कि प्रसाद जी सारियल गली में 'कामायनी' लिख रहे थे, महादेवी जी तसवीरों से सजे कमरे में 'सांध्यगीत' रच रही थीं और पंत जी सपने में रवीन्द्रनाथ का काव्य-चित्र देख रहे थे।

महादेवी जी की प्रायः प्रत्येक कविता में प्रकृति की पृष्ठभूमि मिलेगी पर उसमें न तो एकतान समग्रता है और न कोई नवीनता या विशिष्टता।

किसी नक्षत्र लोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात।
ढुलक जो पड़ी ओस की बूँद
तरल मोती-सा ले मृदु गात
नाम से जीवन से अनजान,
कहो क्या परिचय दे नादान !

अथवा,

स्वर्ण-वर्ण के दिन से लिख जाता, जब अपने जीवन की हार
गोधूली नभ के आंगन में देती अगणित दीपक बार।

यह सब कुछ अत्यत साधारण है । हर भोर और हर साँझ में द्रष्टा के लिए जो नया रूप, नयी रागिनी या नया सदेश रहता है उसका दर्शन हम महादेवी मे नही करते । इसका कारण यह है कि वे अपने विचारो मे बाँधकर सूय, चन्द्र, आकाश, उदधि, किरण, वायु को अपने काव्य में उतारती है । प्रकृति मे उनका मन रमता नही है, इसलिए उनके दृश्य जगत् मे एक साधारणपन है । एक-आध ऐसी जगह भी है जहाँ उन्होंने नवीन कल्पना तो की है पर वह पाठक के 'सौदर्य सस्कार के प्रतिकूल' पड़ गई है।

पत जी कहते है कि कविता करने की आदि प्रेरणा उन्हे प्रकृति से मिली है जिसका श्रेय उनकी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश और कालिदास की अमर प्रकृतिगीति मेघदूत को है और हम मानते है कि पत जी मे लाघव के साथ कोमल प्रकृति के सहज चित्रण की विपुल सामर्थ्य है । वर्डस्वर्थ की भांति उन्होंने भी प्रकृति के शात-कोमल श्याम-लाचल मे बैठकर मर्म की वाणी कही है और उनके 'साध्यतारा' की तुलना वर्डस्वर्थ के 'Westminister bridge' से की जा सकती है यद्यपि इसमे पत जी का विशेष गौरव नही है, क्योंकि 'पत्रो के आनत अधरों पर सो गया, निखिल वन का मर्मर' बहुत ऊंची पक्ति है; पर वर्डस्वर्थ और पत मे एक मौलिक अतर है । वर्डस्वर्थ की प्रकृति दृष्टि का विषय है, पत की अनुभूति का । वर्डस्वर्थ प्रकृति के व्यक्त स्वरूप का वर्णन बडे मनोयोग से करते है किन्तु पंत के लिए वह—

खड़ी दृगों के सम्मुख
सब रूप रेख रंग ओझल
अनुभूति मात्र-सी उर में
आभास शान्त शुचि उज्ज्वल

प्राय. छायावादी कवि न तो आत्मविभोर होकर प्रकृति का निरीक्षण कर सके और न आत्मसमर्पण द्वारा सकेत-ग्रहण ही । वे अपनी कल्पनाओ के रग मे प्रकृति को रग देते है और कहीं २ दार्शनिक भावो से उसे युक्त कर देते है और तब प्रकृति का सहज सौदर्य मर्माहत होकर मुरझा जाता है ।

रहा अध्यात्म या दर्शन। सो वह छायावाद का सब से कमजोर पहलू है। अध्यात्म के लिए जिस श्रद्धा और विश्वासपूर्ण साधना की अपेक्षा होती है वह उनके पास न थी। वाणी और कर्तृत्व के अनैक्यके कारण उनका अध्यात्मवाद विश्वसनीय नही था और इस असगति ने उस समय के अखबारो मे कार्टूनों के लिए काफी समाला दिया था। बाद मे वे स्वय भी भौतिकता से समझौता करने लगे। उनके सैद्धातिक अध्यात्म का परीक्षण आज भी उसे काव्यप्रसाधन ही मानने को बाध्य करता है। महादेवी वर्मा की 'बीण भी हूँ, मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ, दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ' एक सुन्दर भावपूर्ण गीत है और निराला की 'तुम और मै' शीर्षक कविता वेदात के अद्वैतवाद और शकराचार्य के सिद्धांतो का प्रतिपादन करती है और इस कारण उसका काव्य-सौंदर्य भी एकरसता मे पडकर किंचित मलिन हो गया है। पर निराला की उसी कविता की प्रतिध्वनि और शैली में जब महादेवी जी कहती है कि—

मै कम्पन हूँ, तू करुण राग
मै आंसू हूँ, तू है विषाद,
मैं मदिरा तू उसका खुमार
मै छाया तू उसका आधार
मेरे भारत मेरे विशाल
(यामा)

तो हम भौचक रह जाते हैं। ब्रह्म की अद्वैतानुभूति की बात समझ सकते है पर स्थूल पर अद्वैत का यह आरोप, देशभक्ति के साथ शराब और खुमार का यह रूपक तो अध्यात्मवाद की एक पैरोडी-सा लगता है। दुर्वासा आलोचक (!) शुक्ल जी के इस कथन में भी कुछ वजन था कि छायावाद अभिव्यंजना की एक शैली था। पंत जी के 'मौन निमंत्रण' के साथ जब हम महादेवी जी की—

कुमुद-दल की वेदना के दाग को,
पोंछती जब आँसुओं से रश्मियाँ;

चौंक उठतीं अनिल के विश्वास छू
तारिकाएँ चकित-सी अनजान-सी
तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत-सा वह कौन है ?
शून्य नभ पर उमड़ जब दुःखभार सी
नैश तक में, सघन छा जाती घटा;
बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी
जब सुनहले आँसुओं के हार-सी;
तब चमक जो लोचनों को मूँदता,
तडित् की मुस्कान में वह कौन है ?

—आदि पंक्तियों को जब हम पढते है तब स्वतंत्र चिंतन का अभाव शैलीवाली बात को और पुष्ट करता है ।

महादेवी जी ने अपने को एक चिरविरहिणी की भूमिका मे रखा है । इसलिए कहा जा सकता है कि उनका दु खवाद आध्यात्मिक है । यह तो निर्विवाद है कि महादेवी जी की कविताओ में सर्वत्र शून्यता और निर्जनता है । पर आध्यात्मिक एकाकीपन तो चिंता की सबसे बडी समाधि होता है । एकांतवासी योगी जीवन के रहस्य का उद्घाटन करता है । अकेले म साधारण आदमी भी अपनी समस्याओं का निदान ढूढता है । महादेवी की एकातता में यह चिंतन , मर्म का यह बोध, रहस्य का यह उद्घाटन कहाँ है ? रवीन्द्रनाथ के 'संध्या संगीत' मे निरुद्ध अवस्था की जो अधीरता है वह 'सांध्यगीत' मे कहाँ है ? रवीन्द्र मे सर्वानुभूति है, महादेवी मे एकान्तानुभूति । यहाँ मात्र शून्यता है, केवल आँसू है । और ये आंसू भी कितन सस्ते है ! महादेवी में कबीर और मीरा की वह वेदना नही है जो हृदय की शिराओं को कपा देती है । मीरा की वेदना जीवन-प्रसूत है, महादेवी की कल्पना-प्रसूत । झूमझूम कर वेदनाओ का प्याला पीनेवाली महादेवी के रुदन मे 'आमोद है, निरोध नहीं' । इस प्रकार सत्ता, समस्या और चिंतन के अभाव मे आपकी वेदना हमारी संवेदना नहीं पाती ।

प्रसाद जी आरम्भ से अत तक कवि रहे। आप मे अध्यात्म के प्रति वैसा दुर्दांत आग्रह नही। निराला ने कही २ बडी कठोर दृढता से उसका पल्ला पकडा है । पर उनके काव्य का लौकिक पक्ष कम भारी नही है । और, सच तो यह कि इन दोनो कवियो का कवित्व दूसरे पक्ष मे ही प्रगट हुआ है ।

— छायावादी पंत ने हिन्दू अध्यात्मवाद और बर्गसा के जीव-चैतन्यवाद, महात्मा बुद्ध के मध्यम मार्ग, रवि ठाकुर की बधन-मुक्ति और वर्डस्वर्थ के प्रकृति-सिद्धात का समन्वय कर एक नूतन दर्शन गढना चाहा, पर उनके इस जीवन-दर्शन की रीढ नही दिखाई पडती । उसका कोई निजी व्यक्तित्व नही है । उनके दर्शन मे अनेक विवादी सुर सुनाई पडते है । कही वे ससार को सुखमय मानते है, कही दु खमय और कही सुख-दु ख-समन्वय को ही ससार का अटल नियम मानते है। कही हिन्दू विचार धारा मे अवगाहन करते हुए कहते है कि सारा विश्व ही ईश्वर की माया है, तो कही वर्डस्वर्थ का अनुसरण करते हुए कहते है कि ससार मे केवल मानव दु खी है पर प्रकृति सुखी है । मनुष्य ने स्वय अपने को प्रकृति से अलगकर दु खी बना लिया है । अत मनुष्य को जीवन की सीख प्रकृति से लेनी चाहिए ।

इस प्रकार अध्यात्म छायावादी कवियो का प्रकृत क्षेत्र नही है ।

छायावाद मूलत प्रेम-सौदर्य-काव्य है । यही इसका प्रकृत रूप है और इसी रूप में इसका मूल्याकन होना चाहिये । छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं है क्योंकि उसमे अनेक मासलताएँ है । वह सघर्ष की हार से उत्पन्न भी नही है क्योंकि उसके जन्मकाल मे आर्थिक सकट उतना तीव्र नही था । वह द्विवेदी काल की शुष्कता के प्रति रसिकता की प्रतिक्रिया है। छायावाद खड़ी बोली में सौन्दर्य-भावना के पुनरुत्थान (Aesthetic Revival) का पहला युग था । छायावाद के सभी कवि सौदर्यजीवी थे । उनके काव्य में असुन्दर के लिए स्थान नही है । 'कुत्सित कुरूप' मे रूप-निर्माण करने की प्रवृत्ति परवर्त्ती है । उनमे सौदर्य की एक बुभुक्षा-सी

है । अपनी सौंदर्य-बुभुक्षा की परितृप्ति के लिए एक ओर उन्होंने मधुवन की ओर देखा है और दूसरी ओर 'निखल छवि की छवि' नारी की ओर। उनकी चिंता के केन्द्र में नारी बैठी थी। नारी उनके सौंदर्य की सीमा थी। उनके उपचेतन ने प्रकृति में नारी का ही यौवन—विलास और विरह-दैन्य की छाया देखी है। पंत ने उसकी वय संधि की धूप-छाँह को, प्रसाद ने उसके यौवन-विलास को, निराला ने उसकी रति-क्रीड़ा और शक्ति को तथा महादेवी ने उसकी अतृप्त वेदना को वाणी दी है। उनकी इस नारी की भी एक सीमा थी पर यह वह सीमा न थी जिसका वर्णन रवीन्द्र नाथ ने 'वाणी' में इस प्रकार किया है—

'बूंद-बूंद वर्षा के रूप में आकाश के बादल धरती पर उतरते हैं—धरती को पकड़ाई देने के लिए। ऐसे ही कहीं से स्त्रियाँ आती हैं, पृथ्वी पर—बंधनों में बंधने के लिए। उनके लिए कम जगह की तंग दुनिया है—थोड़े आदमियों की। उतने ही में उनका अपना सब कुछ अंट जाना चाहिए—उनकी सब बातें, सब व्यथाएँ, सब चिन्ताएँ। इसी से उनके सर पर घूंघट है, हाथों में कंकण हैं, घर में आँगन का घेरा है। स्त्रियाँ सीमास्वर्ग की इन्द्राणी हैं।. . . भला, किस देवता के कौतुक-हास्य की तरह अपरिचित चंचलता के लिए हुए, हमारे मुहल्ले में, उस छोटी-सी लड़की का जन्म हुआ ?. . वह भागते हुए झरने का पानी है, शासन के कंकड़-पत्थरों को लाँघ-लाँघकर चलती है। उसका मन मानो वेणुवृक्ष की ऊपरकी डाली का पत्ता है। हमेशा झर-झर काँपता रहता है। आज देखूं तो वह लड़की छज्जों की मुंडेरे पर झुककर चुपचाप खड़ी है—वर्षाशेष के इन्द्रधनुष की तरह।

नहीं मानो चलते-चलते एक जगह ठिठक कर सरोवर हो गई है।. . . . आदियुग में सृष्टि के मुंह से पहली बात निकली थी जल की भाषा में, हवा के कंठ में। लाखों करोड़ों युग पार होकर उस स्मरण-विस्मरण की अतीत बात ने आज वर्षा बादल के कलस्वर में उस लड़की को आकर पुकारा।

इसी से वह बड़ी-बड़ी आंखें खोलकर निस्तब्ध खड़ी रही,—मानो अनन्तकाल की ही प्रतिमा है वह।'

छायावाद की नारी भी सीमा की रानी है । पर वह सीमा संयम और निरोध की नही, उम्र की है । वह पूर्ण नही अर्द्धनारी है—किशोर और यौवन की । प्रसाद जी ने छायावाद की व्याख्या इस प्रकार की है—'कवि की वाणी मे यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा-भूषण की तरह होती है, ध्यान रहे कि यह साधारण अलकार जो पहन लिया जाता है वह नही है, किन्तु यौवन के भीतर रमणीसुलभ श्री की बहिन ही है, घूघटवाली लज्जा नही।' मेरे ख्याल मे छायावाद की यह प्रकृत व्यख्या है ।

हिन्दी के छायावाद में रवीन्द्र की नारी की 'शेषेर उक्ति' नही है, 'विहग बालिका' और 'मदिर नयना यौवना' का प्रेम-निवेदन है । रवीन्द्र का प्रेम-क्षेत्र व्यापक है । उनमें कुरूप नायिका का भी लज्जा-सुलभ प्रेम-निवेदन है—

जार नवीन सुकुमार कपोल तल
कि शोभा पाय प्रेम लाजेगो !
जाहार ढलढल नयन शतदल
तारेइ आंखी जल साजेगो ।
ताई लुकाये थाकी सदा पाछे से देखे,
भालो बासिते मरी सरमे ।
रुधिया मनोद्वार प्रेमेर कारागार
रचेछि आपनार मरमे ।

'जिसके कपोलतल नवीन और सुकुमार है, प्रेम की लज्जा से उसकी कितनी न शोभा होती होगी । जिसके नयन-शतदल डबडबाये हुए ही बने रहते है, आँसू बस उसे ही सजते है । वह मुझे कही देख न ले, इस भय से मै सदा छिपी रहती हूँ । प्यार करने को (क्या कहूँ) लज्जा से ही मरी रहती हूँ । मन का द्वार बन्द करके, मैने अपने मर्म के भीतर प्रेम का कारागार रचा है ।'

छायावाद का जन्म लौकिक प्रेम से हुआ है । हम रामनरेश त्रिपाठी के प्रेम-काव्यों की चर्चा नही करते, जिनमें कुछ लोग जाने कैसे छायावाद का आदि-सूत्र देख लेते है । हम तो छायावाद के सम्मानित प्रजापतियों

की कहते है जिनमे अनेक ऐसे थे जिनके जीवन का प्रेम-चक्र काव्य में मूल स्वर बनकर उतर आया है । लौकिक प्रेम, छायावाद के आदि प्रजापति जयशंकर प्रसाद की कविता की सबसे प्रमुख विशेषता है। 'कानन-कुसुम' से 'कामायनी' के अंतिम अध्याय तक वे जीवन को सौंदर्य, प्रेम और करुणा के माध्यम से देखते रहे। 'प्रेम-पथिक' मे वे प्रेम की अनोखी राह के पथिक हुए है जिसपर भूल-भूल कर चलना पडता है, जिसके ऊपर घनी छाँह होती है और जिसके नीचे काँटे बिछे रहते हैं। 'आँसू' और 'लहर' इसी प्रेम-परम्परा की करुण रागिनियाँ है। 'आँसू' के अध्ययन के लिए दर्शन की सहायता की आवश्यकता नहीं। प्रसाद के आरम्भिक प्रेम-चिंतन पर उर्दू-शैली का प्रभाव भी स्पष्ट है—

सरासर भूल करते है उन्हे जो प्यार करते है
बुराई कर रहे है और अस्वीकार करते है
उन्हें अवकाश ही रहता कहाँ है मुझसे मिलने का
किसी से पूछ लेते है यही उपकार करते है

(इन्दु)

यह वह गजल है जहाँ से प्रसाद जी ने आरम्भ किया था। इन पंक्तियों मे अभिव्यक्त प्रेमी की विफलता और प्रेमिका की निष्ठुरता को पृष्ठाधार के रूप में ध्यान मे रखे । कहा जा सकता है कि छायावाद का आरम्भ तो इन पंक्तियो मे नही, उन पंक्तियो में है जहाँ प्रसाद जी ने नाविक से भुलावा देकर उस प्रदेश में ले जाने का आग्रह किया है—

जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी—
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे।१

---

१ तुलना कीजिए—

दरिया का किनारा हो या कोह का दामां हो
या वादि हो सूनी सी सुनसान बयाबां हो

हमारा निवेदन होगा कि यह छायावाद का आरम्भ नही, विकास है जहाँ प्रेमी प्रेम-व्यापार की असफलता से ऊबकर कुछ क्षणों के लिए विस्मृति अथवा कल्पना की दुनिया मे अपने को उड़ा ले जाना चाहता है। और, इसकी परिणति तो 'कामायनी' की उस पंक्ति मे हुई जहाँ नारी कहती है—

तुमुल कोलाहल कलह में मै हृदय की बात रे मन!

हाँ, प्रसाद का अतरिक्ष-प्रदेश हृदय का देश है, 'कबिरा का देस', नही 'जहाँ रैन ना होय'। 'हृदय की बात' उनके छायावाद का मूल उत्स है।

'प्रेम की बाहों मे' मुक्ति पानेवाले, और पुल्लिग शब्दो का स्त्रीलिंग प्रयोग करनेवाले कोमल-प्राण पंत जी ने प्रकृति और नारी के सम्मोहन को किशोर-वृत्ति कहा है और यह भी दावा किया है कि 'पल्लव' और 'गुजन' के बीच उनका 'किशोर भावना का स्वप्न' टूट गया। यदि ऐसा होता तो हम दुर्भाग्य ही समझते, पर ऐसा न हुआ और नारी का सम्मोहन 'वीणा' से 'स्वर्णधूलि' तक एकरस बना रहा। 'वीणा' मे प्रकृति से नारी की ओर जाते हुए उन्होने एक असमंजस का अनुभव किया था।

छोड़ द्रुमों की शीतल छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन?
भूल अभी से इस जग को!

दुनिया से परे और दूर एक शहरे खामोशा हो
आये न नजर कोई ऐ इश्क वहाँ ले चल
महफूज जहाँ हूँ मै उल्फत की बलाओं से
माशूक के गम्जों से और उसकी अदाओं से
गैरों की जफाओं से और अपनी वफाओं से
जी चाहे जहाँ तेरा ऐ इश्क वहाँ ले चल।

—कविवर 'नाशाद'

इन पक्तियो की आलोचना करते हुए निराला ने कहा था कि बाला को छोडकर प्रकृति की ओर जाने मे पत जी अपनी कला में विपरीत रति करा रहे हैं। पर 'वीणा' के बाद ही 'ग्रथि' निकली जो कितनो की नजर मे उनकी अपनी प्रेम-ग्रथि थी जो समाज के सशय के कारण खुली नही। प्रेम की यह पीर 'पल्लव' तक चलती है। 'गुजन' मे एकबार फिर सयोग के मादक तार बजने लगते है। हाँ, लौकिकता के परिहार के लिए यहाँ नारी को बडे बडे विशेषण दिये गये है। प्रकृति के उपादानो से उसे सजाया गया है। कही उसे दृष्टि से अनुभूति के क्षेत्र मे खीचा गया है। कही शेली की भाँति उसे एक सौंदर्य-भावना (Spirit of beauty) के रूप में देखने का प्रयत्न किया गया है।

पर ये सभी प्रयत्न एक झिलमिल झरोखा ही बना सके जिसके भीतर से धरती की कांति लाख-लाख बार बाहर झाँकती है। वर्डस्वर्थ की यह पक्ति बडी चुस्त बैठती है—A spirit and a woman too.

निराला ने अपेक्षाकृत नारी का चित्रण कम किया है पर उनकी नारी की स्नायु औरो की अपेक्षा अधिक माँसल भी है। 'शूर्पनखा' की मासलता तो छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म की प्रतिक्रिया माननेवालो के लिए एक चुनौती है। विनयकुमार सरकार का यह कथन कि—

The earthly elements, the pleasures of senses are too many to be ignored.

—न केवल विद्यापति के लिए वरन् सभी छायावादी कवियो के लिए समान भाव से लागू होता है।

पर क्या इसका यह मतलब हुआ कि छायावाद के रूप मे रीतिकाल फिर आ धमका था? रीतिकाल का विरोध सभी छायावादी कवियो ने एक स्वर से किया है। प्रसादजी ने तो ब्रज के साथ अवधी की एक विशेष धारा का भी विरोध किया है।

"धर्म की आड में नये-नये आदर्शों की सृष्टि, भय से त्राण पाने की दुराशा ने इस युग के साहित्य में, अवधीवाली धारा में मिथ्या आदर्शवाद और ब्रज की धारा मे मिथ्या रहस्यवाद का सृजन किया।

मिथ्या आदर्शवाद का उदाहरण—

जानत न अधम उधारन तिहारो नाम, और की न जानें पाप हम तो न करते।

मिथ्या रहस्यवाद —

ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावत।"
नहीं जानते, प्रसाद जी, इस रहस्य के निष्कर्ष पर कैसे पहुँचे ? शायद वे रीतिकाल से छायावाद का पार्थक्य स्थापित करना चाहते थे। उनकी दृष्टि में 'रीतिकालीन प्रचलित परम्परा से—जिसमे बाह्य वर्णन की प्रधानता थी—इस ढग की कविताओं मे भिन्न प्रकार के भावों की नये ढग से अभिव्यक्ति हुई।' (भाव और शैली-दोनो की भिन्नता) निराला ने 'काव्य साहित्य' तथा 'बिहारी और रवीन्द्रनाथ' शीर्षक निबधो मे बिहारी के व्याज से रीतिकाल पर आक्षेप किया है और कहा है कि वह हर चीज को खुलासा कर देता है और उसमे डूबता भी नही।

"बिहारी तटस्थ रहते है, रवीन्द्र डूब जाते हैं।"... "बिहारी चित्रण-कुशलता दिखाने की फिक्र मे रहते है, परन्तु रवीन्द्रनाथ अपने विषय से मिल जाते हैं।"

पत की आलोचना सबसे कठोर है।

"पर उस व्रज के वन मे झाड-झखाड करील-बबूर भी बहुत है। उसके स्वर मे दादुरो का बेसुरा-आलाप, उसके कृमिल-पकिल गर्भ मे जीर्ण अस्थि-पंजर, रोडे, सिवार और घोघो की भी कमी नही। उनके बीचो-बीच बहती हुई अमृत-जाह्नवी के चारो ओर जो शुष्क कर्दममय बालुकातट है, उसमे विलास की मृगतृष्णा के पीछे भटकते हुए अनेक कवियो के अस्पष्ट पद-चिह्न, कालानिल के झोको से बचे हुए, यत्रतत्र बिखरे पडे है। उस व्रज की उर्वशी के दाहने हाथ मे अमृत का पात्र, और बाये मे विष से परिपूर्ण कटोरा है, जो उस युग के नैतिक-पतन से भरा छलछला रहा है। ओह, उस पुरानी गूदडी मे असंख्य छिद्र, अपार संकीर्णताएँ है।

"शृगार-प्रिय कवियोंके लिए शेष रह ही क्या गया ? उनकी अपरिमेय कल्पना-शक्ति कामना के हाथो द्रौपदी के दुकूल की तरह फैलकर

नायिका के अग-प्रत्यग से लिपट गई। . . .ऐसी विश्वव्यापी अनुभूति ! ऐसी प्रखर-प्रतिभा ! एक ही शरीर-यष्टि मे समस्त-ब्रह्माण्ड देख लिया !

"हम व्रज की जीर्ण-शीर्ण छिद्रो से भरी, पुरानी छीट की चोली नही चाहते, इसकी संकीर्ण कारा में बन्द हो हमारी आत्मा वायु की न्यूता के कारण सिसक उठती है, हमारे शरीर का विकास रुक जाता है। यह नकाब पहना हुआ हास्यास्पद चेहरों का नाच हमारी सभ्यता के प्रतिकूल है ।"

इस सिलसिले मे उन्होने भक्तिकाल की शकीर्णताओ का भी वर्णन किया है। शायद वे एक साथ ही कविता को भक्तिकाल की सकीर्णता और रीतिकाल की स्थविरता से मुक्त करने की लालसा रखते थे । वे काव्य में बोधा और द्विजदेव, बिहारी और केशव की अलख न जगाकर वर्डस्वर्थ, शेली और कीट्स को पुनर्जीवित करना चाहते थे ।

यो रीतिकाल और छायायुग मे अन्तर है । रीतिकाल की नारी उस चमत्कारवाद की बाँदी थी जिसे तत्कालीन दरबारी संस्कृति ने काव्य मे खडा किया था। उस चमत्कारवाद की रक्षा के लिए उसे अनेक अप्राकृतिक भूमिकाओ में उतरना पड़ा था। बिहारी के रूपक की सागोपांगता के लिए नारी को साक्षात् रसायनशाला बनना पड़ा था और सेनापति के अभंग और सभंग श्लेषो की सगति बैठाने के लिए उसे कही कामदेव की फुलवारी बनना पडा था, कही पगडी, कही शतरंज और कही चौपड । काव्य के इस आयास मे हम जीवित नारी के व्यक्तित्व का आभास नही पाते। छायावाद के केन्द्र में जो नारी बैठी थी वह हृदय के स्पदन और धडकन से युक्त नारी थी । काव्य को, उस नारी के शृगार के लिए स्वय रूप सँवारना पडा था, उसे अपने छदो, भाषा और शब्द में नये गीत, चित्र और झंकार लानी पड़ी थी । रीतिकाल में नारी का मापदड रीतिशास्त्र था, छायावाद में मनोविज्ञान और कामशास्त्र । रीतिकाल मे मात्र कल्पना है, छायावाद मे कल्पना और अनुभूति ने नारी-भावना को नवीन सजीवता

दी है । रीतिकाल का सौंदर्य एक देशीय है, छायावाद का सार्वदेशिक ।

रीतिकाल के प्रति उनके विकर्षण को हम रवीन्द्र और रोमांटिक कवियों के प्रभाव और द्विवेदी युग की पृष्ठभूमि में समझ सकते हैं जब रीतिकाल साहित्य का एक गर्हित अध्याय बन चुका था । स्वभावतः छायावादी कवियों का प्रेम उस ओर जाना नहीं चाहता था और एक नवीन बंधनमुक्त संसार की खोज कर रहा था—

चाहता है यह पागल प्यार
अनोखा एक नया संसार
——महादेवी

पर उसी समय पंत जी के मन में दो शंकाएँ उठी थीं——

(१) **अनिल कल्पित कमल कोमल गात को**
अङ्क भरकर रसिक किसकी चाह की
बाँह तृप्त हुई

(२) 'समस्तदेश की वासना के वीभत्स समुद्र को मथकर इन्होंने (रीतिकालीन कवियों ने) कामदेव को नव-जन्म दान दे दिया, वह अब सहज ही भस्म हो सकता है ?'

और पंत जी की ये दोनों शंकाएं ठीक निकलीं । कल्पित संसार में छायावादी कवियों को संतोष न मिला । धीरे-धीरे वे समतल भूमि पर उतर आए । काम उनपर विजयी हुआ । 'निराला' ने रीतिकाल की छंद, भाषा और अलंकार सम्बन्धी रूढ़ियों को तो बड़े साहस और सफाई के साथ तोड़ा पर प्रकृति-चित्रण करते समय उन्होंने रीतिकाल की समस्त नायिका-भेद-प्रणाली को उतार दिया । मुग्धा, वासकसज्जा, आगतपतिका, ज्ञात-यौवना, अज्ञात-यौवना आदि सभी नायिकाओं को आप वहाँ ढूंढ ले सकते हैं । पर उन्हें छोड़िए । उन्होंने तो 'पल्लव' की आलोचना में रीतिकाल का समर्थन भी किया है और 'बंगाल के वैष्णव कवियों की शृंगार-वर्णना' शीर्षक निबंध में बड़ी रसिकता के साथ कहा है कि 'आजकल जो

नग्न सौंदर्य के दर्शन से क्रमश. अतृप्ति बढती जा रही है, लोगो की दृष्टि मे चातक की तृष्णा समा रही है, देखिए पहले भी नग्न सौंदर्य के तृषित थे और किस खूबी से इस नग्न सौंदर्य की माधुरी का पान करते थे।' अत उनकी 'शूर्पनखा' आदि मे जो मासलता है उसपर विशेष आश्चर्य नही होना चाहिए । पर रीतिकाल की कटु आलोचना लिखनेवाले पत जी ने भी 'मधुवन' आदि कविताओ मे पुरुष-नारी की जिस एकाकारिता का वर्णन किया है उसके सामने पद्माकर की प्रलय-भावना भी हार मान लेगी । नारी सम्बन्धी रूढियाँ जिनका निर्देश साहित्य-दर्पण मे——

पादाघातादशोकं विकसति बकुलं योषितामास्यमद्यः
यूनामङ्गेषु हाराः स्फुटति च हृदयं विप्रयोगस्य तापैः ।
मौर्वी रोलम्बमाला धनुरथविशिखाः कौसुमाः पुष्पकेतोः
भिन्नं स्यादस्य बाणैर्युवजन हृदयं स्त्रीकटाक्षेण तद्वत् ॥

——आदि कहकर किया गया है, केवल संस्कृत और हिन्दी रीति-काव्य में ही नही मिलती । वे पत की कविताओ मे भी बदस्तूर बनी है। यहाँ भी नारी के स्पर्श से प्रियगु, पादाघात से अशोक, देखने से तिलक, प्रेम-वाक्य से मन्दार, हँसी से चपा, मुँह की हवा से आम, और नृत्य से करोजिर पूर्ववत् खिल रहे है——

एक चंचल-चितवन के व्याज
तिलक को चारु छत्र-सुख लाभ
तुम्हारे चल-पद चूम निहाल
मंजरित अरुण अशोक सकाल,
स्पर्श से रोम-रोम तत्काल
सतत-सिंचित प्रियंगु की डाल ।
स्वर्ण-कलियों की रुचि सुकुमार
चुरा चम्पक तुमसे मृदु-वास,
तुम्हारी शुचि-स्मिति से साभार,
भ्रमर को आने दे क्यों पास ?

देख चंचल मृदु-पटु पद-चार
लटाता स्वर्ण-राशि कनियार,
हृदय फूलों में लिए उदार
नर्म-मर्मज्ञ सुग्ध मंदार ।
तुम्हारी पी मुख-बास तरंग
आज बौरे भौरे, सहकार ।

जब प्रसाद जी कहते है कि--

नारी के नयन ! त्रिगुणात्मक ये सन्निपात
किसको प्रमत्त नही करते
धैर्य किसका ये नही हरते ?

तो लगता है कि आधुनिक भाषा मे रसलीन जी बोल रहे हैं।

इस प्रकार छायावाद पर अन्य प्रभावो के साथ सस्कृत साहित्य, रीति कालीन कविता और उर्दू शायरी का भी प्रभाव पड़ा है।

छायावाद पर जो आध्यात्मिक रग-सा छा गया है उसको इस प्रकार समझ सकते है। छायावादी कवि प्रेमानुभूति लेकर आए पर वे अपनी अनुभूतियो की अभिव्यक्ति रीतिकालीन पद्धति पर नही कर सकते थे क्योकि वह हिन्दी की भूमि मे अगत् पौराणिक सस्कृति की ध्वस्तचेतना का प्रतीक बन गई थी। नयी चेतना की नयी भाषा लहर मार रही थी। उधर, पश्चिम के वैज्ञानिक आविष्कारो के फलस्वरूप मध्यवर्गीय असतोष से उत्पन्न नीतिहीन व्यक्तिवाद की लहरे देश के किनारो से टकराने लगी थी। इधर चेतना की नयी लहरो पर रवीन्द्र ने 'सोने की नाव' डाली थी। सूफी शायरी तो घर की चीज़ थी। अत' हमारे कवियों ने रीतिकाल की भाँति देवताओं का आश्रय न ले नये प्रतीकों का अवलम्ब ग्रहण किया। पर छायावाद का जन्म ही एक कुसायत में हुआ था।

छायावाद के प्रथम चरण के मुख्यत तीन आलोचक थे--महावीर प्रसाद द्विवेदी, प० पद्म सिंह शर्मा और लाला भगवान दीन। उनके अनुसार छायावादी कवियों के भाव, भाषा और अलकार सभी असत्य थे। द्विवेदी

जी 'सुकवि किंकर' और 'द्विरेफ' के छद्म नामों से 'कमल-अमल, अरविंद मलिंद आदि अनोखे-अनोखे उपमानों की लाङ्गुन' लगानेवाले छायावादी कवियों को 'कवित्वहृता छोकड़े' कह रहे थे। पं० पद्मसिंह शर्मा छायावाद में 'कुत्सित कर्मनाशा की नई नदी' देखते थे। पंत जी की 'वीणा' और 'पल्लव' पर उन्होंने लिखा था कि—

'कविता-वल्ली को प्रतिभा के वारि से सींच कर 'पल्लव' निकालिये, खुशी से उसकी छाया में बैठकर 'वीणा' बजाइए, पर काव्य-कानन के कल्पवृक्षों की जड़ पर कुमति—कुठार न चलाइये। यह अत्याचार असह्य है। आपको इसकी गंध नहीं भाती, शिकायत नहीं, अपनी पसन्द, अपनी रुचि—की जै कहा करता मैं न चाहे—पर इनकी महक के मतवाले मधुप भी हैं, उन वृक्षों पर न सही, इन पर दया कीजिए। 'पल्लव' के नोकीले और जहरीले कांटे इनके दिल में न चुभाइये, 'वीणा' में मोहनी स्वर छेड़िए, 'मारू-राग' न बजाइए।' (पद्मराग, पृष्ठ ३३५)

लाला भगवान दीन छायावाद को अधकारवाद मानते थे—

'कवि को भाषा पर कमेंड होना चाहिए। आप में उसका अभाव है। आपका कवि होना वैसी ही अनधिकार-चेष्टा है, जैसी मेरे लिए एम० एस सी० क्लास का प्रोफेसर होना। नाम 'सत्य प्रकाश' और भटकते फिरते हो अँधेरे में। भारत में न तो छायावाद चलेगा और न प्रतिबिंबवाद, यहाँ तो प्रकाशवाद ही रहा है और रहेगा।'

[सुधा (भाद्र ३०७ तु० सं०) में छपी एक चिट्ठी]

स्पष्ट है कि छायावाद को 'मात्र नैतिक और शास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जा रहा था जिसका उसमें स्पष्ट विरोध था। छायावाद के प्रकृत सौंदर्य की ओर किसी का ध्यान न जा रहा था। परिस्थिति की ऐसी हीनता लेकर छायावाद जन्मा था।

पर इन्हीं लांछनाओं ने छायावादी कवियों को एक दूसरे के निकट लाया। एक छायावादी मोर्चा कायम हुआ। पंत ने इन समालोचकों को 'वारि-विकार के प्रमी' और 'रणकुशल कठफोरे' कहा। श्रीमान् गरगज

सिंह 'साहित्य शार्दूल' ने खूब 'चाबुक' चलाया। बाद मे आलोचकों का एक दूसरा गिरोह आया जिसमें रामचन्द्र शुक्ल, श्याम सुन्दर दास और श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी प्रधान थे। अब छायावाद एक पद्धति के रूप मे स्वीकृत हुआ। इसके बाद एक तीसरा गिरोह आया जिसमे गुलाबराय, नंददुलारे वाजपेयी, हजारी प्रसाद द्विवेदी और शातिप्रिय द्विवेदी के नाम उल्लेखनीय है। अब छायावाद एक दर्शन के रूप में स्वीकृत हुआ। पर शृंगारिकता और अस्पष्टता के लाछन बदस्तूर बने रहे। छायावादी मोर्चे पर खडे कवि शृंगारिकता के आरोप के उत्तर और अपने पक्ष के समर्थन मे मुख्यत तीन तर्क देते रहे।

१. हम लौकिक भाषा मे अलौकिक रागिनी गाते है। हमारे प्याले मिट्टी के है पर उनमे प्राणों का आसव है। हम रूपात्मक प्रतीक के सहारे अरूप का आराधन करते है।

मैंने कब देखी मधुशाला ?
कब मांगा मरकत का प्याला ?
कब छलकी विद्रुम की हाला ?
मैंने तो उसकी स्मिति मे
केवल आँखे धो डालीं ?
क्यों जग कहता मतवाली ?

—यामा (महादेवी)

२. प्रेम स्वय एक दर्शन है। सौंदर्य के अमृत का पान ही दिव्य जीवन का परम पुरुषार्थ है। प्रेम ही मुक्ति है।

दिव्य जीवन है छवि का पान,
यही आत्मा की तृषित पुकार

—रूपराशि (रामकुमार वर्मा)

अविराम प्रेम की बाहों में है मुक्ति यही जीवन-बंधन

—पंत

३. साहित्य साहित्य है और आचार आचार। साहित्य में अनेक रस, अनेक भाव रहते है। 'साहित्य को जीवित रखने के लिए

उसमे अनेक भाव, अनेक चित्रो का रहना आवश्यक है, और जबकि अपने अपने स्थान पर सभी भाव आनन्दप्रद और जीवन पैदा करनेवाले है।' (काव्य साहित्य--निराला) साहित्य मे श्रृंगार भी बुरा नही होता क्योकि साहित्य एक कला है। फिर ससार के वैष्णव भक्तो और महान् कवियो ने भी तो लौकिक प्रेम का चित्रण किया है। यह तर्क 'निराला' ने उपस्थित किया था और इस सिलसिले मे उन्होने बगाल के वैष्णव कवियो से लेकर उमर खयाम, गालिब और रवीन्द्रनाथ तक के नाम गिनाए थे।

"व्यापक साहित्य किसी सम्प्रदाय का साहित्य नही। शराब, कबाब, नायिका, निर्जन साज और सगीत के कवि उमर खैयाम की इज्जत साहित्य संसार के लोग जानते है। गालिब मशहूर शराबी थे। पर उनकी कृति कितनी सुन्दर है। व्यापक भावो के कवि रवीन्द्रनाथ ने भी इससे फायदा उठाया है—

कालि मधुयामिनी ज्योत्स्ना-निशीथे
कुंज कानने सुखे
फेनिलोच्छल यौवन सुरा
धरेछि तोमार मुखे।
तमी चेये मोर आंखी परे
धीरे पात्र लयेछ करे
हेसे करियाछ पान चुम्बन भरा
सरस बिंबाधरे
कालि मधुयामिनीते ज्योत्स्ना-निशीथे
मधुर आवेश-भरे"

(कल वसन्त-ज्योत्स्ना की अर्धरात्रि को सुख से बगीचे के कुज मे लपकती हुई फेनिल यौवन की सुरा मैंने तुम्हारे मुख पर रक्खा था। तुमने मेरी आँखों की कोर देखकर धीरे से पात्र (प्याला) हाथ में ले लिया, और हँसकर चुम्बनो से खिले हुए सरस बिबाधरों से मधुर आवेश मे आ, पी गई।)"
—निराला (काव्य साहित्य- चाबुक')

निराला ने बिहारी को भी महाकवि माना था।

नवीन ने तो यह भी कहा कि लौकिक प्रेम जीवन का एक सत्य है। अत वह पाप नही है।

यों भुज भरकर हिये लगाना है क्या कोई पाप ?

——'नवीन'

भोग का कर्म, कर्म का भोग
यही जड़ का चेतन आनन्द
——प्रसाद 'कामायनी'

प्रथम तर्क मे विशेष बल न था क्योकि छायावादी कवियो के प्रतीक कबीर के चरखा, चदरिया, हंस और नैहर के प्रतीक न थे, वे सभी मादक प्रेम-भावों को प्रगट करनेवाले कमल, दीपक, मधु, मधुकर, चन्द्र, नक्षत्र आदि के कोमल प्रेम-प्रतीक थ। हीरक के तारो को चूरकर बनाये गये इस नये प्रेम-प्याले मे जो शिराजी ढाली गई थी उसका रग भी काफी लाल था। 'अनमित अचल' और 'चचल चुम्बन' कोई फर्क नही ला रहे थे। फिर रीतिकालीन शृंगार-वर्णन के उपादानों का भी अनजान मे पर्याप्त प्रयोग हो चुका था।

दूसरा तर्क भी साधना और सत्ता के अभाव में अत्यत साधारण था। तीसरे तर्क मे काफी बल है और इस तर्क मे शृगार के आरोप का प्रकरणान्तर मे समर्थन भी हो गया है।

पर निराला को छोडकर अन्य सभी छायावादी कवि आरम्भ से ही जन-भीरु रहे और परिस्थिति-जन्य हीनता के बीच जन्म लेने के कारण छायावाद भी हयादार रहा। अत. जहाँ इन कवियो के चेतन ने तर्क उपस्थित किये वहाँ उनका उपचेतन शायद जगकातर हो उठा। वे अपनी सौंदर्य-प्रतिमाओं को कायिक मासलताओ मे मुक्त करने के लिये अधिक मे अधिक कल्पना के रग मे रंगने लगे जिससे उन पर एक आध्यात्मिक वेष्ठन चढ जाय। इसका एक प्रमाण यह है कि 'कानन-कुसुम' के पहले सस्करण में जहाँ अध्यात्मपरक एक भी गीत नही है वहाँ दूसरे

संस्करण मे कुछ ऐसे नये गीत जोड दिये गए है जिनपर अध्यात्म का-सा रंग लानेवाली कल्पना चढी हुई है । 'आसू' और 'गुंजन' को भी हम इसी अर्थ मे समझते हैं । यह छायावाद का सबसे बडा दुर्भाग्य सिद्ध हुआ । उस भूमि मे अध्यात्म का तो बिरवा उग सकता ही न था, कल्पना ने सहज सौंदर्य को भी दुर्बोध बना दिया । जहाँ रीतिकाल ने नारी को विलास की क्रीतदासी बना दिया था वहाँ छायावादियो ने उसे अप्सरा बना दिया । स्त्री करतार की सृष्टि न होकर कल्पना के शीशमहल की परी हो गई । कल्पना के व्योम मे विलास की रास के लिए एक नया मंडल तैयार हो गया ।

पर धीरे-धीरे ये कवि आदर पाने लगे । आलोचको के दूसरे और तीसरे समुदायो के आते-आते वे युगप्रवर्त्तक के रूप मे प्रतिष्ठित भी हो गए । तब वे फिर कल्पना के आकाश से धीरे-धीरे जीवन की धरती पर आने लगे । और लगभग २० वर्षों के बाद १९३३-३४ मे छायावाद की आध्यात्मिक कुहेलिका एकाएक फट-सी गई और अच्छा हुआ कि इसके विधाताओ के हाथो ही उसके कृत्रिम घुंघट का मोचन हुआ ।

पर आज जब कुहासा फट-सा गया है तब छायावन की रासभूमि में अनेक सौदर्य-प्रतिमाएँ अक्षय यौवन लेकर मुस्कुराती दिखाई पड रही है । 'जूही की कली', 'आखों के डोरे लाल आज खेली होली', 'आज रहने दो यह गृह काज, प्राण रहने दो यह गृह काज', 'बीती विभावरी' आदि छाया-युग के अनमोल प्रेम-गीत है । 'जूही की कली' मे क्षणिक यौवन को कला के स्पर्श से निराला ने हमारे लिए चिरस्थायी कर दिया है । 'आज रहने दो यह गृहकाज' मे पंत ने शृगार को स्वाभाविकता की अनुभूतिसिक्त सुरभि दी है । 'बीती विभावरी' मे प्रसाद ने सौदर्यभावना को नये स्वर मे जगाया है । छायावाद ने जडतावादी साहित्य के रेगिस्तान मे शाद्वल बसाया था । हम छायावन के केसर को अध्यात्म के ऊसर मे क्यों बिखेरें ? हम चाणक्य की हृदयविहीन नीति और शंकराचार्य के अरसिक सिद्धातो की बाँटियो से तौलकर इसका मूल्यांकन क्यों करे ?

छायावन की रास धरती पर हुई थी। मिट्टी की प्रतिमा ने क्षणिक दिन के आलोक में जीवन का लास्य रचा था। आज भी उसके अलकों में मलयज बन्द है। उसकी वेणी में अगरु धूम की श्याम लहरियाँ उलझी हैं। उसके अधरों में अमंद राग भरा है। उसकी आँखों के लाल डोरों में विहाग की रागिनी झूल रही है। वह अलसाई सी है। अध्यात्म या राजनीति की छड़ी से उसे न छेड़िए। वह बड़े सुकुमार हाथों की पली है।

श्री सुमित्रानन्दन पंत

'अत्यत कोमल शरीर, कौशल से कढ़े लहरोवाले रेशमी बाल, दीप्त गौर मुखमडल और स्वप्निल आँखें—हिन्दी के प्रियदर्शी रेखाएँ कवि पत।

अब पत जी तिरपन पार कर चुके हैं। पर 'थोड़े दिन हुए एक विदेशी चित्रकार ने उनसे कहा था कि यदि आप योरोप मे होते तो आपको केवल 'माडेल' बनाने के लिए लोग हजारो रुपये देने को तयार होते। पत जी के बालों मे अब वह सुनहलापन नही है, वे भूरे और सफेद भी हो चले ह पर आज भी वे घुँघराले हैं और कंघी के क्षणिक स्पर्श से इच्छित आकार-प्रकार से उनके सिर पर शोभायमान हो जाते हैं। पत जी को इन बालो मे से बड़ा मोह है। लोगों से बातचीत करते, चलते-फिरते उनकी उँगलियाँ उन्हे ठीक करने मे व्यस्त रहती है। और इन बालो की सुन्दरता के लिए वे नाई के ऋणी नही है। अपने जीवन मे नाई को उन्होंने बहुत कम ही पैसे दिये होंगे। अपने बाल वे खुद काटते-छाँटते जैसे अपनी कविता की पंक्तियो को। 'सरस्वती' के भूतपूर्व सम्पादक पडित देवीदत्त शुक्ल कहा करते थे कि पतजी के बालो मे भी कविता है।'[1] इन बालो की भी एक कहानी है। सातवे क्लास मे पढते समय एक बार उनकी दृष्टि नेपोलियन की उस तस्वीर पर पडी जिसमें उसने लम्बे बाल रक्खे थे; उसे देख पत जी भी लम्बे बाल रखने लगे।

बालों के अतिरिक्त कपडों का भी इन्हे शौक है। इनके कपड़े खास 'डिजाइन' के होते है। 'अगर पंत जी राजनीतिक नेता होते तो गाधी टोपी और जवाहर जैकेट के समान पंत-कुर्ता और पंत-कोट तो जरूर

---

१. बच्चन ('प्रतीक')

चल पड़ते ।' सर्दियों में ओवरकोट पर नाइट कैप लगाना भी उन्हें फबता है। वैसे उनकी प्रिय भूषा है पायजामा और अपने ढग का कुर्ता या पतलून और खुले गले की कमीज जिस पर कभी वे टाई भी लगाते और खास कट का कोट भी पहनते हैं।

माता-पिता का दिया नाम था गोसाईंदत्त पंत। कहते हैं, पंत जी के बड़े भाई श्री हरदत्त पंत[1] के एक बिहारी मित्र थे श्री सुमित्रानन्दन सहाय। उनका नाम कवि को भा गया और उन्होंने अपना नाम सुमित्रानन्दन पंत रख लिया।

जिसे महात्मा गांधी ने हिन्दुस्तान का स्विट्जरलैंड कहा था उसी अल्मोड़ा से ३२ मील उत्तर हिमालय की तराई में बसे कौसानी के हरिताभ अंचल में २१ मई, १९०० ई० (ज्येष्ठ कृष्णाष्टमी, सं० १९५७) को पंत जी का जन्म हुआ। जन्म के छः घंटे बाद ही माता (सरस्वती देवी) का देहान्त हो गया।

नियति ने ही निज कुटिल कर से, सुखद
गोद मेरे लाड़ की थी छीन ली,
बाल्य ही में हो गई थी लुप्त हा !
मातृ-अञ्चल की अभय छाया मुझे।

यह अभय छाया पंत जी को पिता और फूफी की गोद में मिली। फूफी अपने भाई के साथ कौसानी में ही रहती थी। उन्होंने ही पंत जी को पाला। पिता पं० गंगादत्त जी कसौनी टी एस्टेट में एकाउन्टेन्ट थे और लकड़ी के स्वतंत्र कारोबार से पैसा और यश दोनों प्राप्त कर चुके थे।[2]

---

१ पंत जी चार भाई थे और स्वयं माता-पिता के चौथे यानी सबसे छोटे पुत्र थे। शेष तीन भाइयों के नाम थे हरदत्त पंत, रघुवरदत्त पंत और देवीदत्त पंत।

२ कसौनी में तब एक अंग्रेज का चाय-बगान था। पं० गंगादत्त पंत का सम्बन्ध उसी से था।

पिता धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे और साधु-संतों की सेवा में विशेष रुचि रखते थे। दादी (देवकी देवी) परियों की कहानी सुनाती और कभी वंदना गाती—'साईं के मंदिरवा में दीपक बारो।' परिवार की धार्मिक प्रवृत्ति का प्रभाव पंत जी पर भी पड़ा है। कविवर नियमित रूप से प्रातःकाल ध्यान (Meditation) किया करते हैं।)

रोमांटिक कवियों की तरह पंत जी भी बचपन में अकेले रहना पसंद करते थे। हमउम्र साथियों के साथ खेलते-कूदते शायद ही किसी ने उन्हें देखा होगा। संकोचशील, जनभीरु और शर्मीले तो आज भी हैं, पर अब वे थोड़ी दूर भी अकेले चलना नापसन्द करते हैं। आज आप सदा उन्हें किसी न किसी के साथ देखेंगे। और जब 'मैली तहमत, लम्बे रूखे-बाल' और नंगे पांवोंवाले निराला जी के साथ दप-दप स्वच्छ पोशाक पहने पंत जी चलते हैं तो एक दृश्य खड़ा हो जाता है। वैसे पंत और निराला के स्वभाव में कहीं कोई मेल नहीं है। निराला ने पंत जी के 'पल्लव' पर एक 'ध्वंसात्मक लेख' भी लिखा था जिसे लेकर हिन्दी साहित्य में अर्से तक विवाद होता रहा। विवाद इस बात पर भी होने लगा था कि पंत बड़े हैं या निराला। 'मेरे गीत और कला' शीर्षक निबंध में निराला ने पंत पर भावापहरण का दोष लगाया था और उनके गीतों से अपने गीतों को श्रेष्ठ सिद्ध किया था। जो लोग इस विवाद से बचना चाहते थे वे पंत और निराला के ऊपर प्रसाद जी को प्रतिष्ठित कर देते थे। पर इससे छायावाद की वृहत्रयी—प्रसाद, पंत और निराला की मित्रता में आंच न आई। 'शायद ही किसी युग के तीन महान् कवियों में ऐसा स्नेह-संबंध रहा हो जैसा प्रसाद, निराला और पंत में था।'

प्रायः आपने कवियों को यह कहते सुना होगा कि कविता तो रात को लिखी जाती है, दिन के कोलाहल में कोई क्या लिखेगा। पर पंत जी दिन के प्रकाश में ही लिखते हैं। उनके लिखने का ढंग मैथिलीशरणजी से कुछ मिलता-जुलता है। वे एक भाव को अनेक प्रकार से प्रगट करते हैं और जल्दी-जल्दी उन तमाम मजमूनों को लिख लेते हैं। इसके बाद

किंचित संशोधन-परिवर्तन के साथ उनमे से किसी एक को चुनकर कागज पर उतार लेते है। पर गुप्त जी प्राय: स्लेट पर लिखते है और पंत जी कागज पर; और जिन कागजो पर लिखते है उन्हे अपने सशोधनों के साथ, द्विवेदी जी की तरह, सुरक्षित रखते है।

पत जी मात्र कविता ही नही करते, अन्य बातो मे भी दिलचस्पी रखते है। कई बार बीमार पड़कर बीमारियों और दवाइयों का इतना मर्म जान गए है कि एक साधारण डॉक्टर उनसे हार मान जाय। पत जी को मत्र-तत्र मे भी विश्वास है। हस्त-रेखाएँ और जन्मकुडली देखकर भविष्यवाणी भी करते है। ग्रहों के अनुसार ग्रह-ग्रस्त व्यक्तियों को मूँगा, मोती, नीलम आदि पहनने का भी आदेश करते है। इधर योगी अरविन्द ने उन्हे विशेष प्रभावित किया है। पंत जी 'अदिति', 'एडवेंट' और 'मदर' के नियमित पाठक है। जाने कविवर योग की क्रियाएँ करते है या नही ?

पतजी की काव्य-प्रेरणा के मुख्यत तीन स्रोत है---प्रकृति, अग्रज और कालिदास। आगे चलकर क्रमशः मैथिली-शरण गुप्त, श्रीमती नायडू, रवीन्द्रनाथ, और अग्रेज रोमांटिक कवियों से प्रभावित हुए।

काव्य : प्रेरणा और प्रतिबिंब

'तब मैं छोटा-सा चँचल भावुक किशोर था। मेरा कंठ अभी फूटा नही था। पर प्रकृति मुझ मातृहीन बालक को कवि-जीवन के लिए मेरे बिना जाने ही जैसे तैयार करने लगी थी। मेरे हृदय मे वह अपनी मीठी स्वप्नो से भरी हुई चुप्पी अंकित कर चुकी थी जो पीछे मेरे भीतर अस्फुट तुतले स्वरो मे बज उठी। पहाडी पेडो का क्षितिज न जाने कितने ही गहरे-हल्के रगो के फूलो और कोपलो मे मर्मरकर मेरे भीतर अपनी सुन्दरता की रंगीन सुगधित तहे जमा चुका था। 'मधुबाला की मृदु बोली-सी' अपनी उस हृदय की गुंजार को मैंने अपने 'वीणा' नामक संग्रह में 'यह तो तुतली बोली मे है एक बालिका का उपहार!' कहा है। पर्वत प्रदेश के निर्मल चचल सौंदर्य ने मेरे जीवन के चारो ओर अपने नीरव सौदर्य का जाल बुनना शुरू कर दिया था। मेरे मन के भीतर बरफ की ऊँची चमकीली

चोटियाँ रहस्य-भरे शिखरों की तरह उठने लगी थी, जिन पर खड़ा हुआ नीला आकाश रेशमी चँदोवे की तरह आँखों के सामने फहराया करता था। कितने ही इन्द्रधनुष मेरे कल्पना के पट पर रंगीन रेखाएँ खींच चुके थे। बिजलियाँ बचपन की आँखों को चकाचौंध कर चुकी थी, फेनों के झरने मेरे मन को फुसलाकर अपने साथ गाने के लिये बहा जाते थे और सर्वोपरि हिमालय का आकाश-चुम्बी सौंदर्य मेरे हृदय पर एक महान संदेश की तरह, एक स्वर्गोन्मुखी आदर्श की तरह प्रतिष्ठित हो चुका था। मैं छुटपन से जनभीरु और शर्मिला था। इधर हिम-प्रदेश की प्राकृतिक सुन्दरता मुझ पर अपना जादू चला चुकी थी, इधर घर में मुझे 'मेघदूत' 'शकुंतला' और 'सरस्वती' (मासिक पत्रिका) में प्रकाशित रचनाओं का मधुर पाठ सुनने को मिलता था जो मेरे मन में भरे हुए अवाक् सौंदर्य को जैसे वाणी की झंकारों में झनझना उठने के लिए अज्ञात रूप से प्रेरणा देता था। मेरे बड़े भाई साहित्य और काव्य के अनुरागी थे। वे खड़ी बोली में और पहाड़ी में प्रायः कविता भी लिखते थे। मेरे मन में तभी से लिखने की ओर आकर्षण पैदा हो गया था, और मेरे प्रारम्भिक प्रयास भी शुरू हो गये थे जिन्हें मुझे किसी को दिखलाने का साहस नहीं होता था।"[1])

यह तब की बात है जब पंत जी ११ वर्ष के थे और कौसानी ही में पढ़ा करते थे।[2] उस समय की रचनाएँ अब नष्ट हो चुकी हैं। इसके बाद वे अल्मोड़ा गवर्नमेन्ट हाई स्कूल में आए। यहाँ इनका परिचय पं० गोविन्द वल्लभ

आरम्भ : प्रयोगकाल

---

१ बड़े भाई अपनी तरुणी पत्नी के मनोरंजन के लिए 'मेघदूत' (हिन्दी) को बड़े राग से गाया करते थे।···भाई और छुट्टियों में आये उनके दोस्त इश्किया गजल गाया करते थे। सुमित्रानन्दन को गजल की लय अच्छी मालूम हुई और उस सात साल की उम्र में उसने भी अपने पीले कागज की कापी पर एक गजल लिख डाली। ('हिन्दी के युग प्रवर्त्तक कवि पंत'—राहुल सांकृत्यायन)

२ पंत जी नौ वर्ष की आयु में अपर प्राइमरी पास करके घर पर ही पिता और भाई से अंग्रेजी पढ़ते रहे।

पंत[1] के भतीजे पं० श्यामाचरण पत से हुआ। उनके सम्पर्क ने इन्हे हिन्दी की ओर झुकाया। श्यामाचरण पत उन दिनो 'सुधाकर' नामक एक हस्त-लिखित पत्रिका निकालते थे और सुमित्रानन्दन उसमें कवितायें लिखते थे। उन दिनो मैथिलीशरण जी की रचनाएँ जादू कर रही थी। अल्मोडा भी आन्दोलित हो उठा था। वहाँ एक पुस्तकालय की स्थापना हुई थी और खड़ी बोली के उस आरम्भिक आन्दोलन मे अन्य नवयुवकों के साथ पत जी भी सम्मिलित थे। उन्होने हिन्दी की बहुत-सी किताबे मंगाकर पढ़ी थी। पद्रह वर्ष के पत ने अपने फुफेरे भाई को रोला छद मे पत्र लिखा था। उसी समय उन्हें हिन्दी के शब्दो का इतना ज्ञान हो गया था कि उनके साथी उन्हे 'मशीनरी आफ वर्ड्‌स' भी कहने लगे थे और शिक्षक (बेपहचान शब्दो के प्रयोग के कारण) यह कि 'सुमित्रानन्दन हिन्दी मे जरूर फेल होगा।' आठवे क्लास से तो, जब वे पद्रह-सोलह वर्ष के थे, उन्होने नियमितरूप से कविता लिखना भी प्रारम्भ कर दिया था। गुप्त जी उनके आदर्श थे—

योग्य नहीं कुछ भेंट : आप चिर मैथिली शरण,
गीत मैथिली के गा छूता स्नेह से चरण !
शैशव से ही रहा आप के प्रति आकर्षण
ललित भणिति का किया प्रीतिवश चपल अनुकरण !

उस समय वे गुप्त जी की 'भारत-भारती', जयद्रथ-वध', 'रंग मे भंग' आदि रचनाओं और उनकी शैली से प्रभावित होकर हरिगीतिका, रोला, वीर आदि तत्कालीन हिन्दी के प्रचलित छंदो मे लिखते थे। उन्होने छद पर कई पुस्तकें पढी थीं। आठवी कक्षा मे उन्होंने 'हार' नामक एक उपन्यास लिखा था जिसकी पाँडुलिपि नागरी

१. साहित्यिक गोविन्दबल्लभ पत जो शिमला में रहते है और जिनकी चिट्ठियाँ उत्तर प्रदेश के मुख्य मत्री के पास अक्सर पहुँच जाती है।

प्रचारिणी सभा, काशी, मे आज भी रक्खी हे। (पंत जी की पहली कविता १६१६ मे 'अल्मोडा-अखबार' मे छपी। उस साल 'अल्मोडा-अखबार' मे 'तम्बाकू का धुआँ'[१] के अतिरिक्त एक और प्रसिद्ध कविता छपी 'कागज के फूल'[२]। नवी-दसवी कक्षाओ मे 'तम्बाकू का धुआ', 'कागज के फूल' आदि कविताएँ लिखी थी जिनमे उनके नवीन भाव-विन्यास और शैली की पहली झाँकी मिली थी। पंत जी को काव्य-साधना का मोल भी चुकाना पडा। कविवर दसवीं कक्षा में फेल हो गए। पर दूसरे साल जब उन्होंने जय नारायण हाई स्कूल, बनारस से हाई स्कूल की परीक्षा दी तब उन्हें हिन्दी मे डिस्टिंक्शन मिला। और वे द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए।) यह १६१६ की बात है।

बनारस में अध्ययन का अच्छा अवसर मिला। श्रीमती सरोजनी

निर्माण · छायाकाल

नायडू और रवीन्द्रनाथ की रचनाओं मे उन्होने अपने हृदय में छिपे सौंदर्य की प्रतिध्वनि सुनी। 'वीणा' मे संग्रहीत अनेक कविताओ पर, जो यहाँ लिखी गई, रवीन्द्र नाथ की छाप हे। "ममजीवन की प्रमुदित प्रात' वाला गीत तो 'गीताञ्जलि' के 'अन्तर मम विकसित कर' वाले गान के आधार पर ही लिखा गया है। पंतजी प्रसाद जी का 'झरना' पढ चुके थे और हरिऔध जी के 'प्रिय-प्रवास' के अनेक सर्गों को पढकर रो-रो पडे थे। १६१६ की जुलाई में पंत जी ने बनारस छोड दिया और प्रयाग के म्यूअर कालेज में भर्ती हो गये। उनके विषय थे इतिहास, तर्कशास्त्र और संस्कृत। यही हिन्दू हौस्टल मे उन्होंने 'इस विस्तृत हौस्टल में' शीर्षक कविता लिखी थी—

इस विस्तृत हौस्टल में मै सुनती हूँ
मेरा भी है सखि! छोटा सा रूम,

---

१. सप्रेम मान करके मानव तुझे हृदय में
रखता जहाँ बसे हैं भगवान् विश्व-स्वामी॥

२. कागज कुसुम बता तू छविहीन क्यों बना है।
तू रूप रंग में तो उपवन-कुसुम सदृश है॥

जहाँ मरी आकाङ्क्षा—सूम
गूँजती हूँ प्रतिपल को तूम !

'वीणा' को, जिसमें १६१८ से १६२० तक की आरम्भिक रचनाएँ संग्रहीत है, कवि ने अपना 'दुधमुँहा प्रयास' और 'बालकल्पना' कहा है। पर इसी 'बाल कल्पना' ने स्वच्छंतावाद के प्रथमचरण मे द्विवेदीकाल के महारथियो के दिलो मे आतंक उत्पन्न कर दिया था क्योंकि तब कविता की कसौटी भाषा की शुद्धता और अर्थ की सफाई थी और इधर 'वीणा' के तारो मे छायावाद की नयी झिल्ली बज रही थी। छायावाद मे 'कुत्सित कर्मनाशा की नई नदी' देखनेवाले प० पद्मसिंह शर्मा ने 'वीणा' पर टिप्पणी करते हुए कहा था—"कविता-वल्ली को प्रतिभा के वारि से सींचकर 'पल्लव' निकालिये, खुशी से उसकी छाया मे बैठकर 'वीणा' बजाइए; पर काव्य-कानन के कल्पवृक्षों की जड पर—कुमति-कुठार न चलाइए। यह अत्याचार असह्य है। आपको इसकी गध नही भाती, शिकायत नही, अपनी पसन्द, अपनी रुचि—कीजै कहा करता मै न चारो—पर इनकी महक के मतवाले मधुप भी हैं, उन वृक्षों पर न सही, इन पर दया कीजिए— 'पल्लव' के नोकीले और जहरीले काटे इनके दिल में न चुभाइये, 'वीणा' मे सोहनी स्वर छेडिए, 'मारू राग' न बजाइए।"

यदि छायावाद के आरम्भ करने का श्रेय जयशंकर प्रसाद को और उसके नामकरण करने का श्री मुकुटधर पाण्डेय को है (जनश्रुति) तो उसे लोकप्रिय बनाने का बहुत कुछ श्रेय पत जी को भी है। यदि पंत जी की आरम्भिक रचनाओं पर प्रसाद जी का प्रभाव है तो महादेवी वर्मा की आरम्भिक कविताओं में पंत जी की पंक्तियाँ प्रतिध्वनित है।

और, जब छायावाद को लेकर पुराने और नये लेखकों मे विवाद चला था तब प्रसाद जी एक प्रकार से तटस्थ थे। छायावादी मोर्चे पर खडे व्यक्तियों में श्रीमान् मृगराज, सिंह साहित्य शार्दूल (निराला), सबसे अधिक 'चाबुक' चला रहे थे। पर, उनके बाद पंत जी का ही स्थान था।

द्विवेदी जी ने छायावादी कवियों को 'कवित्व-हला छोकड़े' कहा तो 'निराला' ने पुराने आलोचकों को 'दुर्वासा' की संज्ञा दी थी और पंत ने उन्हें 'वीणा' की भूमिका में 'रण कुशल कठफोरे' कहा था—

"सत हंसों की तो वैसे भी चिन्ता नहीं रहती; हाँ, वाग्-विकार के प्रेमियों के कठोर आघात से बचने के लिए एक बार मैंने सोचा था कि इस भूमिका में अत्यन्त विनीत तथा शिष्ट शब्दों की चाटुकारिता का रोचक जाल फैलाकर उनकी रणकुशल कठफोरे की-सी ठोंठ को बाँध दूँ। किन्तु 'निज कवित्त केहि लागे न नीका' वाली किंवदन्ती के याद आते ही मेरे अभिमानी कवि ने निर्ममता का कवच पहनकर, मुझे, उनकी लम्बी चोंच के लिए 'शोग्वा' तैयार करने से हठात् रोक दिया।"

इसी 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि' शीर्षक कविता ने 'काव्य साधना की दृष्टि से नवीन प्रभात की किरण की तरह प्रवेश कर' कवि के भीतर 'पल्लव काल के काव्य-जीवन का समारंभ कर दिया था'।

(इन्हीं दिनों, (जनवरी १९२० की छुट्टियों में) पंत ने 'ग्रंथि' नामक वियोगात खंड-काव्य लिखा था। 'ग्रंथि' सयानों की दृष्टि में पंत जी की वास्तविक प्रेम-ग्रन्थि थी जो समाज के संशय के कारण खुली नहीं। पंत जी ने उसे अपने जीवन की भविष्यवाणी कहा है।

'ग्रंथि' के कथानक को दुखान्त बनाने की प्रेरणा देकर जैसे विधाता ने उस युवावस्था के प्रारम्भ में ही मेरे जीवन के बारे में भविष्यवाणी कर दी थी।'

('ग्रंथि' की दो विशेषताएँ हैं। प्रथमतः संस्कृत के सम्पर्क में आने के कारण कवि की भाषा पहले से अधिक तत्सम-प्रधान और अलंकृत हो गई है। द्वितीयतः 'ग्रंथि' छायावाद के उस आन्दोलन की प्रतीक है जिसमें कविता कल्याणी को पुराने पिंगल की रूढ़ियों से मुक्त करने का प्रयास किया जा रहा था। 'ग्रंथि' के छंद भी तुकान्त नहीं। उनमें 'अतुकान्त के सौंदर्य-स्वरूप' का विधान है।)

१९२१ के असहयोग आन्दोलन में गांधी जी के भाषण से प्रभावित होकर पंत जी ने (एफ० ए० फाइनल में) कॉलेज छोड़ दिया। इस साहित्यिक प्रवास में कवि के मन ने जान लिया कि 'मेरे जीवन का विधाता ने कविता के साथ ही ग्रंथिबंधन जोड़ना निश्चय किया है'। १९२१ में उन्होंने 'उच्छ्वास' नामक प्रेम-काव्य लिखा और इसके बाद 'आँसू'। 'ग्रंथि', 'उच्छ्वास' और 'आँसू' तीनों एक ही भावधारा की त्रिपथगा हैं। तीनों प्रेम के गीले गीत हैं। पर इन्हीं गीतों ने कवि को अन्तर्दृष्टि दी और उनके बाह्य नयनों के सामने एक नया अंतरिक्ष उदित किया। लेकिन उस समय किसी ने 'उच्छ्वास' को युगारम्भ कहा तो किसी ने उसका उपहास भी किया। 'सरस्वती' के तत्कालीन सम्पादक श्री पदुम लाल पुन्नालाल बख्शी ने तो उसे कोरा शब्दजाल ही कह डाला।

'मेरे तरुण-हृदय का पहला ही आवेश प्रेम का प्रथम स्पर्श पाकर जैसे उच्छ्वास और आँसू बनकर उड़ गया। उच्छ्वास के सहस्त्र दृग-सुमन खोले हुए पर्वत की तरह मेरा भविष्य जीवन भी जैसे स्वप्नों और भावनाओं के घने कुहासे से ढँककर अपने ही भीतर छिप गया।

उड़ गया अचानक लो भूधर
फड़का अपार वारिद के पर
अवशेष रह गए हैं निर्झर,
लो टूट पड़ा भू पर अंबर!
धँस गये धरा में सभय शाल
उठ रहा धुआँ जल गया ताल।
यों जलदयान में विचर विचर, था
इन्द्र खेलता इन्द्रजाल !

इसी भूधर की तरह, वास्तविकता की ऊँची-ऊँची प्राचीरों से घिरा हुआ यह सामाजिक जगत, जो मेरे यौवन-सुलभ आशा-आकांक्षाओं से भरे हुए हृदय को, अनन्त विचारों, मतान्तरों, रूढ़ियों, रीतियों की भूल-भुलैया-सा लगता था, जैसे मेरी आँखों के सामने से ओझल हो गया और

यौवन के आवेशों मे उठ रहे वाष्पों के ऊपर मेरे हृदय में जैसे एक नवीन अंतरिक्ष उदय होने लगा।"

तब १९२५ मे 'पल्लव' प्रकाशित हुआ। 'पल्लव' कवि की अनेक वर्षों की साधना का फल है। इस काल मे वह शेली, कीट्स, टेनिसन आदि से विशेष प्रभावित रहा है। इसलिए 'पल्लव' में शेली का 'व्योमविहार' कीट्स की 'मादकता', टेनिसन की स्वरसाधना और वर्ड्सवर्थ का प्रकृति-समर्पण है। 'वीणा'-काल में पंत अपनी भावनाओं के सूत्र मे 'शब्दों की गुरियों' को पिरोना सीख रहे थे। अब उन्हें 'शब्द-चयन और ध्वनि-सौंदर्य का बोध' हो गया है। आरम्भ से ही अन्य स्वच्छंदतावादी कवियों की तरह पंत के भी विशेष प्रिय विषय रहे हैं प्रकृति और प्रेम और इन दोनों प्रिय विषयों की प्राञ्जल एवं परिपक्व अभिव्यंजना पहली बार 'पल्लव' में ही हुई।

"'वीणा' की रहस्यप्रिय बालिका अधिक मांसल, सुरुचि-सुरंगपूर्ण बनकर प्राय. मुग्धा युवती का हृदय पाकर जीवन के प्रति अधिक संवेदनशील हो गई है। 'सोने का गान', 'निर्झर गान', 'मधुकरी', 'निर्झरी', 'विश्ववेणु', 'वीचिविलास' आदि रचनाओं में वह प्रकृति के रंगजगत में अभिनय करती-सी दिखाई देती है। अब उसे तुहिन-बन में छिपी स्वर्ण-ज्वाल का आभास मिलता है, उषा की मुसकान कनक-मदिर लगने लगी है। वह अब इस रहस्य को नहीं छिपाना चाहती कि उसके हृदय में कोमल बाण लग गया है। निर्झरी का अंचल अब आसुओं से गीला जान पड़ता है, उसकी कल-कल ध्वनि उसे मूक व्यथा का मुखर भुलाव प्रतीत होती है। वह मधुकरी के साथ फूलों के कटोरों से मधुपान करने को व्याकुल है। सरोवर की चंचल लहरें उससे आंखमिचौनी खेलकर उसके आकुल हृदय को दिव्य प्रेरणा से आश्वासन देने लगी हैं।"

'पल्लव' का प्रकाशन छाया-युग की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। शायद उस समय यह छायावाद की सबसे अधिक लोकप्रिय और आलोच्य पुस्तक थी। छायावाद और रहस्यवाद को एक माननेवाले व्यक्ति का तो

एकमात्र यही आधार था।) रहस्यवाद के प्रसग मे पत जी का 'मौन-निमत्रण' जितनी बार उद्धृत हुआ उतनी बार शायद छायावाद की कोई भी दूसरी कविता नही।

छायावाद का एक कमजोर पक्ष यह भी रहा है कि उसके स्रष्टा केवल सूक्तियों के गायक थे, आलोचक नही, जबकि अग्रेजी के रोमांटिक कवि कवि होने के साथ-साथ अच्छे समीक्षक भी थे। 'पल्लव' मे पत ने पहली बार छायावाद के बहिरग की परीक्षा की थी। 'पल्लव' की भूमिका छायावाद का मेनिफेस्टो बन गई थी।

एक बात और। छायावाद युग मे जहाँ निराला ने पिगल की कारा तोडी थी वहाँ पत ने व्याकरण की। 'पल्लव' मे तो यह प्रवृत्ति पत जी की कविता का एक अग बन गई। लिंग-निर्णय मे वे सदा अर्थ-सौंदर्य और श्रुतिमधुरता का ही ध्यान रखते है। छायायुग की भाषा मे भी 'पल्लवो की यह सजल प्रभात', 'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी' आदि ने एक नये स्वर का विधान किया था

इस काल मे देश की विषम परिस्थिति भी कवि को विषण्ण करती रही थी। उनका अशांत मन शाति ढूँढने के लिए दर्शन की ओर झुका। उपनिषद्, तथा टाल्सटाय, विवेकानन्द, रामकृष्ण, रामतीर्थ, काट, हेगल, भगवानदास, आदि की रचनाओं में वे सुख-दुख का रहस्य ढूँढते रहे। 'पल्लव' की 'परिवर्तन' (१९२४) शीर्षक कविता में हम उनके उन्मन मन को पढ पाते है।

'पल्लव' के प्रकाशन के दो ही साल बाद अर्थात् १९२७ मे पत जी के पिता का देहावसान हुआ। मँझले भाई १९२६ में ही मर गए थे। पंत जी स्वयं भी बीमार पड गए पर डा० नीलाम्बर जोशी की चिकित्सा ने उन्हे निरोग कर दिया। यह १९२९ की बात है। पिता की मृत्यु और दीर्घ रुग्णता के उपरान्त पानेवाले स्वास्थ्य मे कवि ने जीवन और मृत्यु के अक्षरों में लिखा हुआ मानव-जीवन का करुण-मधुर इतिहास पढा।

खुलता उधर जन्म लोचन
मूँदती इधर मृत्यु क्षण-क्षण !

दर्शन ने फिर उनके मन को अस्थिर भाव जगत से हटा कर चिरन्तन के लोक में प्रतिष्ठित किया।

अत: 'पल्लव' के बाद की रचना 'गुंजन' (१९३२) में हमें जीवन के प्रति एक नया आशावादी दृष्टिकोण मिलता है। 'गुंजन'[1] में कवि प्रकृति से मानव की ओर आया है----सुन्दर से शिव की भूमि में उतरा है। 'गुंजन' पंत जी की भावधारा के एक निश्चित विकास का द्योतक है।

'गुंजन' में पंत जी की सौंदर्य-कल्पना आत्मकल्याण तक ही सीमित रही है। मानववाद और समाजवाद के समन्वय से विश्वमंगल की भावना की प्रतिष्ठा 'गुंजन' के बाद की रचना 'ज्योत्स्ना' रूपक में हुई है।

छायायुग को पंत की देन

छायावाद के प्रजापतियों में प्रसाद सबसे अधिक गरिमामय थे, निराला सबसे अधिक पौरुषपूर्ण और पंत सबसे अधिक कोमल-प्राण। प्रसाद ने छायावाद को कल्पना की एकतानता दी, निराला ने अहं की पूर्णता और पंत ने उसे रूप की कोमलता, मन की प्रसन्नता और वाणी की स्निग्धता दी। महादेवी उसे हृदय की करुणा में स्नात करने को बाद में आयीं। पर महादेवी जी की आरम्भिक रचनाओं पर पंत जी का प्रभाव कम नहीं है। सच तो यह है कि छायावाद को लोकप्रिय बनाने में पंत जी का बहुत बड़ा हाथ रहा है। पंत जी ने सबसे पहले छायावाद के बहिरंग की सम्यक व्याख्या की थी। बाद में जयशंकर प्रसाद जी ने छायावाद-रहस्यवाद की भारतीयता सिद्ध की और महादेवी जी ने उसके दार्शनिक पक्ष का उद्घाटन किया। अर्थ की रमणीयता और श्रुतिमधुरता के आधार पर शब्दों का नये ढंग से लिंग-निर्धारणकर पंत जी ने छायायुग की भाषा में एक नवीन रागवाद को चलाया था। पूर्व और पश्चिम का समन्वय भी छायायुग का

---

१. वैसे 'गुंजन' में १९१९ से १९३२ तक की रचनाएँ सम्मिलित हैं किन्तु अधिकांश १९३०-३२ की हैं।

एक नारा था । तब बगला में कवीन्द्र रवीन्द्र ने इस समन्वय को वाणी दी थी और हिन्दी काव्य मे सबसे अधिक पत ने । जब छायावादी कवि रहस्योन्मुख होने लगे तब प्रसाद जी प्रेमपरक रहस्यवाद (Love mysticism) तथा निराला भक्तिपरक रहस्यवाद (Divotional mysticism) की ओर झुके और पत जी आधुनिक हिन्दी काव्य साहित्य में प्रकृतिपरक रहस्यवाद (Nature mysticism) के प्रवर्त्तक बने ।

दिशान्तर : प्रगतिकाल

'गुजन'-काल के 'सघर्ष और सधि पराभव' के बाद हम पत जी को 'युगान्त'[१] के मरु में खडा देखते है । 'युगान्त' का प्रकाशन (१९३६) भी हिन्दी-साहित्य मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । इसके साथ जैसे हिन्दी कविता के एक युग—छायायुग का अंत और दूसरे----प्रगतियुग का आरम्भ हो जाता है । 'युगान्त' मे कवि इस निष्कर्ष पर पहुँच गया है कि मानव सभ्यता का पिछला युग समाप्त हो रहा है और एक नया युग प्रगट होने की राह ढूँढ रहा है । प्रथम यूरोपीय महायुद्ध के अत ने वहाँ के कवियो को 'वैयक्तिक स्वर्ग कल्पना' से सामाजिक पुर्ननिर्माण की ओर खींचा था । इधर भारतीय असहयोग आन्दोलन ने जागरण का नया सदेश लाया था । उसी सामाजिक जागरण की आधी को १९३४ की फरवरी मे पत ने इन पंक्तियो मे रूपायित किया था----

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !
हे त्रस्त-ध्वस्त ! हे शुष्क-शीर्ण !
हिम-ताप-पीत,   मधुवात-भीत
तुम वीत-राग, जड़, पुराचीन !!

कवि को यह विश्वास हो गया है कि इस नये युग के साथ एक नयी संस्कृति और एक नया मानव धरती पर अवतरित हो रहा है । यह नया आदमी सामत-युग के जीर्ण संस्कारो और रूढियों से अपनी चेतना को मुक्त कर यत्रयुग के नये सौदर्यबोध के अनुरूप वैज्ञानिक ढग से अपना

१. रचनाकाल----१९३४-३५

नवनिर्माण करेगा । 'युगान्त' में कवि ने विगत को विदाई दी है और नवागत का स्वागत किया है—

> नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन,
> ध्वंस-भ्रंश जग के जड़-बंधन !
> पावक-पग धर आवे नूतन,
> हो पल्लवित नवल मानवपन !

'पल्लव' तक पंत जी प्रकृति-दर्शन (Naturalistic philosophy) में अनुप्राणित थे । परवर्ती काल में वे प्रकृति से मानव की ओर आए । 'पल्लव' तक वे 'सुन्दरम्' के उपासक थे । 'गुंजन' में वे 'शिवम्' के आराधक बने । 'गुंजन' के कवि ने वैयक्तिक उल्लास-अवसाद, कल्पना-संवेदना को आत्मोत्कर्ष (Sublimation) का रूप तो दिया, पर वे व्यक्ति-कल्याण तक ही जा सके । 'युगान्त' का कवि व्यक्ति से समाज की ओर आया है । स्वभावतः उसकी अन्तर्मुखी दृष्टि यहाँ पहुँचकर बहिर्मुखी बनने का उपक्रम करने लगी है ।

(युग के इस तूफान को छायावाद की सौंदर्यकल्पना अपने में बाँध नहीं सकती थी । 'छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी, नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौंदर्य-बोध, और नवीन विचारों का रस नहीं था । वह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था । द्विवेदी-युग के काव्य की तुलना में छायावाद इसलिए आधुनिक था कि उसके सौंदर्य-बोध और कल्पना में पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ गया था, और उसका भाव-शरीर द्विवेदी युग के काव्य की परम्परागत सामाजिकता से पृथक हो गया था । किन्तु वह एक नये युग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नहीं कर सकता था । उसमें व्यावसायिक क्रांति और विकासवाद के बाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की 'अन्न-वस्त्र धारणा' (वास्तविकता) नहीं आई थी ।) उसके 'हास अश्रु आशाऽकांक्षा' 'खाद्य मधु पानी' नहीं बने थे, इसलिए एक ओर वह निगूढ़, रहस्यात्मक,

भावप्रधान (सबजेक्टिव) और वैयक्तिक हो गया, और दूसरी ओर केवल टेकनीक और आवरण मात्र रहा गया।'

'युगान्त' में पंत ने ध्वंस और निर्माण का एक नया सरगम बाँधा है। जिस तरह 'गुंजन' की भावधारा 'ज्योत्स्ना' में अधिक प्रखर हो उठी है उसी तरह 'युगान्त' के निष्कर्ष 'पाँच कहानियाँ' में अधिक मांसल होकर उतरे हैं।

'युगान्त' को पूरा करते समय कवि ने लिखा था कि 'मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्य में मैं उसे अधिक परिपूर्ण रूप में ग्रहण एवं प्रदान कर सकूंगा।' इस 'नवीन क्षेत्र' का साहित्यिक नाम प्रगतिवाद है जिसे 'युगान्त' के बाद 'युगवाणी'[1] (१९३९) और 'ग्राम्या'[2] (१९४०) में दृढतापूर्वक ग्रहण किया गया है। यदि "युगान्त' छायायुग का अंत है तो 'युगवाणी' प्रगतियुग का जयघोष और 'ग्राम्या' उसका प्रयोग"। 'युगवाणी' पंत के चिन्तन का 'दर्शन पक्ष' है और 'ग्राम्या' उसी का 'भाव-पक्ष'। 'युगान्त' में कवि के निष्कर्षों के पग-चिह्न धुंधले दिखाई पड़ते हैं। 'युगवाणी' के युगदर्शन में उसने मानव के सामाजिक अभ्युदय के कुछ सिद्धान्त निश्चित कर लिए हैं। 'युगवाणी' के प्रकाशन तक प्रगतिवाद ने एक सक्रिय आन्दोलन का रूप ले लिया था। १९३५ में फासिस्ट-विरोधी लेखकों की एक सभा गोर्की के नेतृत्व में पेरिस में हुई थी जिसमें आन्द्रे, गाइड, फौरेस्टर आदि भी उपस्थित थे। डा० मुल्कराज ने भारत का प्रतिनिधित्व किया था। उस बैठक में 'International Association of writers for the defence of culture against Fascism' नामक संस्था की स्थापना हुई थी। उसी साल डा० मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर आदि ने लंदन में 'Indian Progressive Writers' Association' कायम किया। उसी साल भारत में प्रगतिशील संघ की एक बैठक हुई।

---

१ रचनाकाल---१९३७-३९

२ रचनाकाल- -१९३८-३९, प्रकाशन १९४०

दूसरे साल स्व० प्रेमचन्द ने लखनऊ अधिवेशन में सभापतित्व ग्रहण किया। साहित्य मे अब वादो और वर्गो की चर्चा थी। पंत जी ने लिखा है कि 'युगवाणी' मे 'युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न किया है'। अतः 'युगवाणी' मे मार्क्सवाद, गांधीवाद, साम्राज्यवाद, समाजवाद, भौतिकवाद आदि पर लिखी पंक्तियो मे युग की मनोवृत्ति का ही कंठस्वर सुनाई पड़ता है। 'युगवाणी' मे भूतवाद और अध्यात्मवाद, अंतस् और बाह्य, पदार्थ और चेतना का समकीकरण कर एक नवीन समन्वयवादी जीवन-दर्शन खड़ा किया गया है। 'युगवाणी' के जीवन-दर्शन की 'कुंजी' 'बापू' शीर्षक कविता की इन पंक्तियो में मिलेगी—

भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान
जहाँ आत्म-दर्शन अनादि से समासीन अम्लान

पंत जी ने "'युगवाणी' को विश्वमूर्ति कहा है जिससे वह जातिमन से मुक्त होकर युग के विश्वमन एवं लोकमन को अपने स्वरो में मूर्त्त कर सके: मनुष्य की अंतश्चेतना में जो सत्य अभी अमूर्त्त है उसे रूप दे सके' जीवन-सौंदर्य की जो प्रतिमा आज अंतर्मन मे विकसित हो रही है उसे भौतिक जीवन मे साकार कर सके, और हमारा मन स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आये।"

'युगवाणी' को पंत ने 'गीत-गद्य' इसलिए कहा कि उसमे छाया-युग की अलंकृति नही है वरन् उसका काव्य 'अप्रच्छन्न, अनलंकृत, और विचार भावना-प्रधान' है।

'ग्राम्या' में कवि ने 'युगवाणी' के सिद्धांत-वाक्यों को व्यावहारिक रूप दिया है। 'युगवाणी' का कवि लोकजीवन को 'नक्षत्र लोक' के वातायन से देख रहा था। 'ग्राम्या' मे वह कुरूप धरती पर उतर कर 'कीडो से रेंगते मनुजतन' को देख रहा है। वैसे 'ग्राम्या' की कविताएं भी ग्राम-जीवन के भीतर से नहीं लिखी गई है, कवि की दृष्टि मे 'वैसा करना प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता' पर इतना अवश्य है कि 'ग्राम्या' में कवि दर्शक की भाँति ही सही पर जगजीवन का निकट से निरीक्षण-परीक्षण कर रहा है।

फिर 'ग्राम्या' मात्र 'गीत-गद्य' नही है, उसमे पंत जी के काव्य का

एक मनोरम रूप प्रगट भी हुआ है'। न केवल विचारधारा की दृष्टि से वरन् कला और भाषा की दृष्टि से भी 'ग्राम्या' का पंत जी के काव्य-साहित्य में एक विशेष स्थान है। 'ग्राम्या' में हम पहली बार पंत जी के शिष्ट हास्य और परिष्कृत व्यंग का दर्शन करते हैं। गाँव में पहुँचकर पंत जी की तथाकथित 'एरिस्टोक्रेटिक भाषा' 'प्रौलटैरियट' बनकर सबके लिए बोधगम्य बन गई है।

प्रगतिवाद को पंत की देन

छायावाद की तरह प्रगतिवाद को भी लोकप्रिय बनाने के श्रेय पंत जी को हैं। आज 'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्ण-धूलि' में टाटा और बिडला का सोना को देखा जा रहा है और कुछ दिन पहले शिवदान सिंह चौहान ने पंत जी को मार्क्सवादी सिद्ध किया था। इसी असंगति में हम पंत जी का स्थान निर्धारित कर सकेंगे।

पंत जी प्रगतिवाद के प्रथम चरण के पुरोहित थे। पूरनचन्द्र जोशी की कम्युनिस्ट पार्टी उनसे संदेश मांगती थी। आज भी 'धोबियों का नृत्य' और 'कहारों का रुद्र नृत्य' प्रगतिवाद की प्रशंसित रचनाएं हैं। पददलित, भूलुंठित, वर्ग-शोषित जनों के जीवन के सामूहिक उल्लास-उमंग, राग-रंग का वर्णन, इतने उत्साहपूर्ण ढंग से शायद किसी अन्य प्रगतिवादी कवि ने नहीं किया है। यदि प्रगतिवादी हिन्दी साहित्य से पंत-साहित्य को अलग कर दिया जाय तो उसका दामन छूछा पड जायगा।

तत्कालीन प्रगतिवादी कवियों में शायद अकेले पंत जी ने ही कलाकार की मर्यादा की रक्षा का यत्न किया था। कम्युनिस्ट पार्टी को दिये गये संदेश पंत जी ने कहा था कि 'मेरे प्राण सौंदर्यवादी हैं, और मेरा सौंदर्य लोकप्राण है, इसीलिए मैं कम्यूनिजम से प्रभावित हूँ।' और चूंकि उनका सौंदर्य-दर्शन लोकप्राण था, इसलिए वे वर्ग और पार्टी की संकीर्णता को स्वीकार न कर सके। पंत जी ने मार्क्सवाद का अध्ययन किया पर उसका अंध-शिष्यत्व ग्रहण नहीं किया। मार्क्सवाद के अनुसार क्रांति का नेतृत्व शहर के समझदार मजदूर करेंगे। पंत जी का विश्वास इसके विपरीत है।

मनुष्यत्व के मूलतत्त्व ग्रामो ही में अंतर्हित,
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ है अविकृत ।

(ग्राम्या)

यह मार्क्सवाद नहीं गांधीवाद है । पर आज मार्क्सवादी माओ त्से-तुंग भी चीन में साम्यवाद को देशानुरूप बनाने का ही प्रयत्न कर रहे हैं ।

उस काल में पंत जी ने मार्क्सवाद और गांधीवाद, भूतवाद और अध्यात्मवाद का समीकरण कर प्रगतिवाद को एक नया जीवन-दर्शन देना चाहा था । शांतिप्रिय द्विवेदी ने कहा था कि 'पंत वैज्ञानिक गांधीवाद और आध्यात्मिक मार्क्सवाद चाहते हैं' और उन्होंने इस पंतीय मतवाद को 'ललितवाद' की संज्ञा दी थी । हम उसे समन्वयवाद ही कहना चाहते हैं ।

प्रगतिवादी रचनाओं में प्रायः संशय, कटुता, अविश्वास और अशिष्ट व्यंग्य देखे जाते हैं । पंत जी की रचनाएँ प्रायः इसके अपवाद हैं । पंत जी का विश्वास अभिनव और विरल है । उनका व्यंग चोखा होकर भी प्रायः शिष्टता की मर्यादा लिये हुए है ।

पंत जी की प्रगतिवाद रचनाओं में मर्यादा की एक और सीमा है । प्रगतिवाद में 'आर्थिक प्रजातंत्र' के साथ 'सेक्स-प्रजातंत्र' की भी गर्म चर्चा है । सेक्स-स्वातंत्र्य के नाम पर अनेक बदबूदार चीजें भी सामने आई हैं । पंत जी में ऐन्द्रिकता है और अनेक जगह उसमें वासना भी है; पर प्रायः पंत जी की सेक्स-भावना स्वस्थ है और उसमें मांसपूजा का 'स्तनविलास' नहीं है ।

मांस मुक्ति है भाव मुक्ति, और भाव मुक्ति जीवन उल्लास,
मांस मुक्ति ही लोक मुक्ति भव जीवन का जो चरम विकास ।

(युगवाणी)

'स्वर्ण किरण' (१९४७) और 'स्वर्ण धूलि' (१९४८) के साथ पंत जी के कवि जीवन का तीसरा अध्याय आरम्भ होता है । संसारव्यापी

द्वितीय महासमर के नारकीय दृश्य, विज्ञान के ध्वंसकारी परिणाम, स्वतंत्रा-प्राप्ति के बाद होनेवाले भीषण नरसंहार आदि घटनाओं ने कवि के मन में भौतिकता की प्रतिक्रिया उत्पन्न की है। अभी-अभी पंत जी ने दीर्घ अस्वस्थता के उपरान्त डा० जोशी के उपचार से स्वास्थ्य-लाभ किया था और जब-जब वे कठिन रुग्णता के बाद स्वस्थ हुए हैं तब-तब उनका 'सूक्ष्म-चेता मन' अध्यात्म की ओर झुकता देखा गया है। एक बात और, पंत जी का संबंध इधर योगी अरविन्द के आश्रम से भी हो गया है। अतः 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' के दर्शन को हम युद्धोत्तर राजनैतिक घटनाओं वैयक्तिक चिंताओं और अरविन्द के प्रभाव की पृष्ठभूमि में पढ़ सकेंगे।

प्रत्यावर्त्तन : स्वर्ण-काल

छायायुग में पंत जी 'पल्लव' से 'गुंजन' और 'ज्योत्स्ना' तक चलकर शरीर से मन और आत्मा की ओर आए थे। प्रगतिकाल में वे आत्मा से बाहर समाज में उतर आए थे। यद्यपि उस काल-खण्ड की रचनाओं में भी कवि ने मानव-जीवन का उपचार आत्मसत्य और वस्तुसत्य, भूतवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय में ही ढूँढा था पर उस काल की कृतियों में भौतिक समस्याएं ही प्रधान बनी हुई थीं। परवर्त्ती काल की घटनाओं ने उसके मन के प्रवाह को मोड़ दिया है। (वे आज फिर सामाजिक जीवन से अन्तर्मन की ओर प्रवृत्त हो गये। आज उनकी दृष्टि में वर्तमान जीवन की समस्या का बहुलांश बाहर नहीं भीतर है और इसलिए उसका निदान भी आत्मा में ही ढूँढना पड़ेगा----

सामाजिक जीवन से कहीं महत् अन्तर्मन,
वृहत् विश्व इतिहास, चेतना गीता किंतु चिरंतन।

पंत जी ने उचित ही 'स्वर्णकिरण' को 'अंतर की आभा' कहा है--

स्वर्ण किरण अन्तर की आभा अंतर में कर वितरण!

युगवाणी' और 'ग्राम्या' की समस्या युग की समस्या है, 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' की समस्या युग-युग की समस्या है।

कवि को विश्वास हो गया है कि अति-भौतिकवाद के कारण मानव जीवन का रस सूखता जा रहा है--

बहिर्चेतना जाग्रत जग में, अंतर्मानव निद्रित,
बाह्य परिस्थितियाँ जीवित, अंतर्जीवन मूच्छित, मृत !
भौतिक वैभव औ' आत्मिक ऐश्वर्य नही संयोजित,
दर्शन औ' विज्ञान विश्व जीवन में नहीं समन्वित।

इस यान्त्रिक युग के भीषण लौह अस्थि-पंजर मे मनुष्यत्व के हृदय का स्पंदन कैसे हो--यही उसकी दृष्टि मे आज का सबसे महान् श्न है और वह अणुयुग के वासियों को इसी प्रश्न पर विचार करने के हेतु आमन्त्रित करता है--

आओ, सोचें द्विपद जीव कैसे बन सकता मानव,
शक्ति--मत्त होकर भूदेव न बन जाए भू-दानव !
मानव संस्कृति का क्या स्वर्ग बसायेगा वह भू पर,
भीषण अणु का भू प्रकंप या छोड़गा प्रलयंकर !
नव मनुष्यता होगी भू संगठित कि राष्ट्र विभाजित,
अन्तर्देवों से प्रेरित या भूत दैत्य से शासित ?
धरा बनेगी शांति धाम या रक्त क्षेत्र रण जर्जर,
अमृत व्योम से बरसेगा ? विष वह्नि विनाश भयंकर ?

पंत जी ने इस प्रश्न का उत्तर अन्तर्जीवन के प्रवाह में पाया है।

अन्तर्जीवन का प्रवाह ही
भर सकता जग में समत्व नव !

पंत जी यह मानते हैं कि सामाजिक स्तर ऊँचा करने के लिए व्यक्ति पर ध्यान रखना होगा। सामाजिक जीवन व्यक्ति के आत्मिक विकास पर निर्भर करता है। व्यक्ति ही अपनी चेतना को रूपान्तरित कर विकसित समाज का निर्माण करेगा। पृथ्वी पर सामाजिक जीवन का सुखस्वर्ग उतारने के लिए विश्व के बाह्य रूपान्तर के साथ व्यक्ति के अंतर का रूपान्तर होना भी आवश्यक है ।

विस्तृत जो हो जाए मानव-अंतर, चेतना विकसित,
आत्मा के स्पर्शों से भू-रज सहज हो उठेगी जीवित !
अंतर का रूपान्तर हो औ' बाह्य विश्व का रूपान्तर,
नव-चेतना-विकास धरा को स्वर्ग बना दे चिर सुन्दर !
जन-मन के विकास पर निर्भर सामाजिक जीवन निश्चित,
संस्कृति का भू-स्वर्ग अमर आत्मिक विकास पर अवलंबित !

इस भाँति पत जी इन रचनाओ मे एक बार फिर व्यक्ति,आत्मा और अध्यात्म की ओर लौट आए है।

पर इसका यह तात्पर्य नही कि आज उन्होने जिस आध्यात्मिक अन्तर्चेतना को वाणी दी है उससे भौतिकता का सर्वथा बहिष्कार कर दिया है। आज भी उनकी चेतना समन्वयवादी है---

ब्रह्मज्ञान रे विद्या, भूतों का एकान्त समन्वय,
भौतिक ज्ञान अविद्या, बहुमुख एक सत्य का परिचय।

वे आज भी मानते है कि जीवन-साफल्य का मूलतत्त्व भूत और अध्यात्म का समन्वय है---जीवन-तत्त्वो का सतुलन है----

वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन,
भूतवाद हो जिसका रज तन प्राणिवाद जिसका मन,
औ' अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गंभीर चिरंतन।

पर इतना अवश्य है कि अतिशय भौतिकता की प्रतिक्रिया के कारण आज पंत जी अध्यात्म की ओर अधिक उन्मुख है----

आज हमे मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख ।

(अरविन्द का प्रभाव इस प्रकार है। अरविन्द अपनी योगसाधना के द्वारा ससार को दिव्य बनाना चाहते है। वे इस जगत् को माया नही भगवान् का सस्थान मानते ह। इसलिए वे संसार से भागना नही चाहते। यही उनमे और पहले के योगियो म अतर है। अरविन्द इसी पृथ्वी पर योग के द्वारा अमरत्व उतारना चाहते है। वाह्य जीवन मे आतरिक

रूपान्तर और विकास लाकर मनुष्य में देवत्व की अवतारणा करना उनके योग का लक्ष्य है। पंत जी में हम अरविन्द के इन योग-सिद्धान्तों का प्रभाव देख सकते हैं। कहीं कहीं तो अरविन्द के ऊर्ध्व मानव और अतिमानस चेतना के भी दर्शन हो जाते हैं।

ऊर्ध्व चेतना को चलना भू पर धर जीवन के पग
समदिक् मन को पंख खोल चिद्नभ में उठना व्यापक!

'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्ण धूलि' के प्रकाशन ने पंतजी के व्यक्तित्व को आज बहस का अखाड़ा बना दिया है। अन्य रचनाएँ हैं 'मधु-ज्वाल' (१९४८) 'युगपथ' (१९४९) और 'उत्तरा' (१९४९)। 'पल्लविनी' और 'आधुनिक कवि' पंत जी के ग्रंथों से चुनी गई और उन्हीं के द्वारा सम्पादित कविताओं के संग्रह हैं।

सिंहावलोकन

पंत जी कवि हैं। उन्हें सृष्टि की प्रतिभा और धारणा का वरदान प्राप्त है। लाघव चिंतन और विपुल अभिव्यक्ति उनकी विशेषता है—और यह विशेषता विशिष्ट कवियों में ही मिल सकती है।

पंत जी मुख्यतः सुन्दर के कवि हैं। उनका मन सौंदर्यजीवी है। संघर्ष और कटुता उन्हें अप्रिय है। उनके सौंदर्यबुभुक्षु मन ने अपनी परितृप्ति के लिए एक ओर 'उन्मद मधुवन' की ओर देखा है और दूसरी ओर 'निखिल छवि की छवि' नारी की ओर। यहाँ न तो कौलरिज की प्रकृति का खूनी पंजा है, न रवीन्द्र की कुरूपा की प्रेम-साधना। पंत जी, जैसा उन्होंने जोशी जी के नाम लिखे गए पत्र में लिखा था सौंदर्य ढूंढने के लिए ही कम्यूनिज्म की ओर आकर्षित हुए थे। तब वे प्रगतिवादी सिद्धान्तानुसार 'कुत्सित कुरूप में' रूप का संधान कर रहे थे। आज वे आत्मिक सौंदर्य से सम्मोहित हैं। कह सकते हैं कि उन्होंने सौंदर्य को एक व्यापक रूप में देखा है और वे अपनी सौंदर्य-भावना का उन्नयन करते चले हैं।

पर यह सुन्दर शिव से सर्वथा रिक्त भी नहीं है। उनके सुन्दर में शिव समाहित है। उनका काव्य कोरी कल्पना का भारवाही भृत्य

नही है । वह मागलिक भावनाओं मे स्नात है। पत जी मानता के कवि ह । उनका काव्य विश्व-मानव की पजी है ।

कहा जाता है कि पत जी मे सुन्दर आर शिव के तो दर्शन होते है पर सत्य के नही जो कला का सबसे महान् लक्ष्य है और साथ ही 'उनमे वह अनुभूति की तीव्रता नही मिलती, जो सत्य की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है' । इस सम्बन्ध मे पत जी ने कहा है कि 'यह सच है कि व्यक्ति-गत सुख दु ख के सत्य को अथवा अपने मानसिक सघर्ष को मैंने अपनी रच-नाओं में वाणी नही दी है, क्योकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है । मंने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है । 'गुजन' मे 'तप से मधुर मधुर मन', 'मै सीख न पाया अब तक सुख से दु ख को अपनाना' आदि अनेक रचनाएँ मेरी इस रुचि की द्योतक ह । मुझे लगता है कि सत्य शिव मे स्वय निहित है । जिस प्रकार फूल में रूप रग है, फल में जीवनोपयोगी रस, और फूल की परिणति फल मे सत्य के नियमो ही द्वारा होती है, उसी प्रकार सुन्दरम् की परिणति शिवम् मे सत्य ही द्वारा हो सकती है । यदि कोई वस्तु उपयोगी (शिव) है तो उसके आधारभूत कारण उस उपयोगिता से सबध रखने-वाले सत्य मे अवश्य होने चाहिए, नही तो उपयोगी नही हो सकती । इसी प्रकार अनुभूति की तीव्रता भी सापेक्ष है, और मेरी रचनाओ मे उनका सबध मेरे स्वभाव से है । सत्य के दो रूप है,—शराबी शराब पीता है यह सत्य है; उसे शराब नही पीना चाहिए, यह भी सत्य है । एक उसका वास्त-विक (फैक्चुवल) रूप है, दूसरा परिणाम से संबंध रखनेवाला । मेरी रचनाओं मे सत्य के दूसरे पक्ष के प्रति मोह मिलता है; वह मेरा सस्कार है, आत्मविकास (सब्लिमेशन) की ओर जाना । अनुभूति की तीव्रता का बोध बहिर्मुखी (एक्स्ट्रोवर्ट) स्वभाव अधिक करवा सकता है, मंगल का बोध अन्तर्मुखी स्वभाव (इंस्ट्रोव) क्योकि दूसरा कारण-रूप अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त न कर उसके फलस्वरूप कल्याणमयी अनुभूति को वाणी देता है । मेरे पल्लवकाल की रचनाओं में, तुलनात्मक दृष्टि से, मान-सिक सघर्ष और हार्दिकता अधिक मिलती है, और बाद की रचनाओं में आत्मोत्कर्ष और सामाजिक अभ्युदय की इच्छा ।'

पंत जी कोमल-प्राण कवि हैं। उन्होंने प्रकृति को नारी के रूप में---माँ और सहचरी के रूप में----देखा है और निसर्ग से तादात्म्य अनुभव करते समय स्वयं अपने को भी नारी के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने 'कोमल मनुज कलेवर' की कल्पना की है और 'अविराम प्रेम की बाहों में' मुक्ति पायी है। उन्होंने पुल्लिग शब्दों का स्त्रीलिंग प्रयोग किया है है। अतः पंतजी के प्राण कोमल हैं, उनकी कल्पना सुकुमार है और उनकी कला नारी कला है।

पंत जी की भाषा में राग और चित्र है। कल्पना, चित्र और प्रवाह के कारण उनकी भाषा धनी है। एक भाव को वे अनेक कल्पना-चित्रों में लाघव के साथ अभिव्यक्त कर सकते हैं। पद्य में प्रायः उनकी भाषा खिलती है, गद्य में वह बोझिल जान पड़ती है।

पंत जी के प्रिय विषय हैं प्रकृति, नारी, मानव, प्रेम, और आत्मा। प्रकृति की नील झनकार में उन्होंने काव्य की प्रथम स्वर-साधना की थी। मर्म की वाणी भी उन्होंने वृक्षों के मर्मर में ही सुनी थी। वर्ड्सवर्थ की भाँति उन्होंने भी प्रकृति में अमरत्व का संदेश सुना था और शेली की भाँति उसमें एक महती छाया देखी थी। पर वर्ड्सवर्थ की प्रकृति दृष्टि का विषय है और पंत की प्रकृति अनुभूति का। प्रकृति न केवल उनके काव्य का परमप्रिय उपादान है वरन् उनके विचारों की अभिव्यक्ति का साधन भी। आज जब वे अपने को प्राकृतिक दर्शन से विमुक्त करने चले हैं तब प्रकृति का दूसरा पक्ष ही प्रधान हो रहा है।

प्रकृति के बाद नारी ने उन्हें आकर्षित किया है। वस्तुतः प्रकृति और नारी उनकी सौंदर्य-भावना के ही उभय पक्ष हैं। जब वे प्रकृति का ध्यान करते हैं तब उनके सामने चेतना और चपलता से युक्त लावण्यमयी नारी खड़ी हो जाती है और जब वे नारी का ध्यान करते हैं तब उनकी आँखों में 'शरदाकाश' छा जाता है। उनकी नारी में यौन-आकर्षण के साथ दिव्यता भी है। उन्होंने नारी को जीवन-प्राण, सहचरी, माता, देवी

और सौंदर्य-भावना के रूप मे चित्रित किया है--'तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा-स्नान'।

पंत जी ने प्रेम के उभय पक्ष---संयोग और वियोग का चित्रण किया है । 'ग्रंथि' और 'पल्लव' मे विरह की रागिनी गाई है । पर 'गुंजन' और बाद की रचनाओं मे संयोग के मादक तार बजते है । पंत जी का प्रेम यौवन-जन्य है । उसमे अनंग की व्यापकता की स्वीकृति भी है । पर उसकी एक मर्यादा है । यों एक-आध गीतो में संयोग अत्यंत स्थूल हो उठा है पर ऐसे चित्र कम है । प्रायः कल्पना और अनुभूति के संयोग ने उनके संयोग-चित्रण को बचाया है और उसे स्वाभाविकता की सुरभि दी है ।

पंत जी कलाकार होने के साथ ही एक मननशील चिंतक है । चिंता की दृष्टि से वे उस संधि-प्रदेश के कवि है जहाँ धरती और आसमान, सत्ता और छाया, स्थूल और सूक्ष्म, देह और मन, वस्तु और आत्मा, भूत और अध्यात्म, ऊर्ध्व और समदिक्, व्यक्ति और समाज, सुख और दुख परस्पर मिलकर जीवन का उन्नयन करते हैं। जीवन के समस्त तत्वो का समन्वय उनका दर्शन है---यही उनका आदर्शवाद है ।

पंत जी आशावादी, विश्वासपरायण कवि है। जीव और जगत् के उत्तरोत्तर विकास मे उनका विश्वास है । दुख में भी उन्हे सुख का आशा-आलोक मिलता है ।

पंत जी के कलापक्ष पर विशेषतः शेली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, टेनीसन और रवीन्द्रनाथ का प्रभाव है । उनमे शेली का 'व्योमविहार,' कीट्स की 'मादकता' और टेनीसन की स्वरसाधना है ।

उनके भाव पक्ष पर विशेषतः हिन्दू विचार-परम्परा, महात्मा बुद्ध, मार्क्स, गांधी, वर्ड्सवर्थ, रवीन्द्र और अरविन्द का प्रभाव पडा है । हिन्दू ब्रह्मवाद, बुद्ध के मध्यममार्ग, मार्क्स के आर्थिक प्रजातंत्रवाद, गांधी जी की अहिंसा, वर्ड्सवर्थ के प्रकृति-समर्पण, रवीन्द्र की बंधन-मुक्ति

और अरविन्द की ऊर्ध्वचेतना के सयोग से उन्होने आज के सकटसकुल जीवन को एक नया दर्शन देना चाहा है। इसे 'पतवाद', 'ललितवाद' आदि सज्ञाएँ मिल चुकी है।

पत जी अनेक दृष्टियो से वर्ड्सवर्थ के निकट है। सुनने मे यह अच्छा लगता है पर साथ ही साथ यह एक भय का कारण भी है। वर्ड्सवर्थ युवावस्था मे एक प्रतिष्ठित कवि थे और अधेड़ होते होते वे मात्र विचारक रह गये। पत जी के संबध मे भी लोगों को यह भय होने लगा है। पर पत जी अभी जीवित है और उनके हृदय का रस अभी सर्वथा सूखा नही है।

भाषा-शैली

शैली का स्वरूप

शैली भाषा का व्यक्तिगत प्रयोग मात्र नहीं, वह अभिव्यक्ति की असंख्य व्यक्त-अव्यक्त प्रक्रियाओं का एक सामूहिक नाम है ।

अभिव्यक्ति का यह आयास जितना व्यक्तिगत है, उतना ही युग-गत और समाजगत । प्रत्येक युग अपनी अगडाई को एक विशेष प्रकार की शैली मे प्रगट करता है क्योंकि युगवाणी के तूफान को बाँधने मे युगान्त के छद छोटे पडते है। इसलिए जब समय की सक्रांति में भावना करवट बदलती है तब अतरग के आवर्त्तन के साथ ही बहिरग का विवर्त्तन भी आरम्भ हो जाता है ।

जयकाव्य की पहली ललकार ने अपने बोलो के लिये अपभ्रश को छोडकर एक नयी भाषा ली थी अवहट्ठ या डिंगल की, दूहा और गाथा के अतिरिक्त नये छद लिये थे छप्पय, तोमर, तोटक आदि के। निर्गुण भक्ति-काल सवर्ण के प्रति अवर्ण की, विप्र के प्रति अन्त्यज की, अर्थात् धार्मिक व्यक्तिवाद के प्रति वैयक्तिक स्वातत्र्य की प्रबल जनक्रांति का वाहक था ।

शैली और युगान्तर

धार्मिक क्षेत्र के इस जनपदीय आन्दोलन ने साहित्य के क्षेत्र मे भी जनपद की 'सधुक्कडी' भाषा ली, जनपद का छद लिया--गीत और जन-जीवन का नया अलंकार लिया--उलटबाँसी ।

इस लोक भाषा और लोक गीत के निर्गुण को जब तुलसी ने साकार किया तब अर्द्धालियों के चरणान्त मे गुरु मात्राएँ रखी जिनपर चढकर भाव साकार होता है । रीतिकाल की दरबारी सस्कृति ने साहित्य मे जिस चमत्कारवाद को जन्म दिया उसने अपने अनुकूल कवित्त और सवैया के छंद गढे । उन्नीसवी शताब्दी मे जब भारतीय वाङ्मय ने क्राति का आवाहन किया तब उसका अनल किरीट ब्रजभाषा के सिर पर नही रखा

जा सकता था । अब 'भारत के कृष्ण ने मुरली छोड़कर पाञ्चजन्य उठा लिया था' । सुप्त देश की वाणी जाग उठी थी । ब्रजभाषा 'रात्रि की अकर्मण्य स्वप्नमय ज्योत्स्ना' की भाषा थी, उसमे 'दिवस का सशब्द कार्य-व्यग्र प्रकाश न था । प्रेम-कुंजों में पली असूर्यम्पश्या ब्रजबोली की सुकुमारता काल के अग्निस्फुलिंग को वरेण्य न थी । उसकी एकान्तता युग की नाना चिंताओ की व्याख्या करने मे असमर्थ थी । अत युग के कर्तृत्व ने खड़ी बोली की भाषा ली जो विवेचनात्मक गद्य के समीप थी । उसने खड़ी बोली के छंद लिये, ग्राम्यछंदो को संवारकर अपनाया और बंगला तथा उर्दू पिंगल के सयोग से कुछ नये छंद गढ़े ।

भारतेन्दु-काल ने खड़ी बोली को एक सर्वमान्य रूप दिया और द्विवेदी-काल ने उसे काव्योपयोगी बनाया । द्विवेदी-काल खड़ी बोली का आग्रह लेकर चला था और वह आग्रह समय के घात्याचक्र से उत्पन्न हुआ था । यह खड़ी बोली का शास्त्रीय (क्लासिकल) युग था जब उसके गद्य और पद्य की पक्की व्यवस्था की गई थी । यह 'लोकचेतना के व्यावहारिक पक्ष को लेकर चलनेवाला, सुधार और नैतिकता से शंकित', इतिवृत्तात्मक युग था । इस उपयोगितावादी युग ने अपने इतिवृत्त के अनुकूल अभिव्यक्ति का सरल मार्ग ढूंढ़ लिया था । तब काव्य की कसौटी थी भाषा की शुद्धि और अर्थ की सफाई । यह विश्लेषण का युग था, संश्लेषण का नही । लोक चेतना के व्यवहारवाद ने व्यावहारिक भाषा का पल्ला पकड़ा था । गद्य की भाषा पद्य में तरती जा रही थी जिसमें सांकेतिकता की अपेक्षा पूर्णता प्रश्रय पाती और उपचारवक्रता एक दोष मानी जाती थी । यह एक शुष्क सात्विक आचारवादी युग था । इस आदर्शवादी रूक्षता का प्रभाव तत्कालीन भाषा-शैली पर भी पड़ा था । भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से यह एक 'पुरुष काल' था ।

भाषा-शैली और द्विवेदी-युग

पर यह एक समस्यासकुल बहुज्ञ काल था । नवोदित शिक्षित युवक-समुदाय की इस बहुज्ञता के कारण साहित्य मे 'बहुविधि विषय-विन्यास'

आया, शैली मे बहुविपयोपयोगी विविधता आई और भाषा की शब्द-सम्पत्ति की अभिवृद्धि हुई तथा उसमें वह लचक आई जो उसे सहज ही भिन्न-भिन्न दिशाओ मे मोड सके।

भाषा-शैली और छायायुग

द्विवेदी-काल पौरुषपूर्ण होकर भी 'दो दशाब्द मात्र जीवित रहने वाला' अल्पायु युग था। जब गाधीजी राजनीति को दर्शन की किरणो मे सजाकर असहयोग को अहिसा से बाध रहे थे तब इधर उमर खैयाम के प्रेम-दर्शन, गीताञ्जलि की 'नीरव क्राति', हीगल के सौदर्यवाद और अग्रेजी रोमाटिक कवियो की नीतिविहीनता के प्रभाव ने हिन्दी मे एक नवीन 'हृदयवाद' को जन्म दिया था। इस नये 'मनवाद' की अराजकता मे द्विवेदी-काल के सरल-शुभ आदर्श और भाषा-व्यवस्था' दोनो विलीन होने लगे। अध्यात्म के आवरण मे श्रृगार आया। सीमा असीम के आलिगन करने का व्याज करने लगी। कल्पना भूमि छोड आकाशगामिनी हुई। सुन्दर का आवाहन हुआ। कला पुरुष का परिधान उतारकर नारी-सुलभ श्रृगार करने लगी। स्वभावत' भाषा ने इतिवृत्तात्मक स्वरूप छोडकर लाक्षणिक वैचित्र्य, अप्रस्तुत प्रतीक और चित्रमयता को ग्रहण कर लिया। अब अभिव्यक्ति का साधन अलकार नही, चित्र और सगीत था।

शैली का वैयक्तिक पहलू

यह तो छायावादी पंत की शैली के अध्ययन का ऐतिहासिक पृष्ठाधार हुआ। इतिहास से अलग शैली का वैयक्तिक पहलू भी होता है। एक व्यक्ति के शिक्षण और सस्कार दूसरे से भिन्न होते है, इसलिए उसकी अभिव्यक्ति समकालीन व्यक्तियो के समकक्ष होकर भी विशिष्ट होती है। पोप ने शैली को विचारो की पोशाक कहा है। कार्लाइल को इस परिभाषा मे अति-व्याप्ति दोष दिखाई पड़ा। उसने पोप की व्याख्या मे एक सशोधन उपस्थित करते हुए कहा कि शैली 'विचारो की पोशाक' नही जिसे जब चाहें उतार दे; वह तो 'विचारों की चमड़ी' है। चमडी पर बाहर के ताप, हिम, वर्षा

आदि का प्रभाव तो पडता है पर व्यक्ति के भीतरी खून से उसका गहरा सम्बन्ध होता है ।

शैली का एक तीसरा पहलू भी है, जो पूर्वोक्त अंगों की भांति सबमें समान भाव में नहीं रहता । यह शैली का शास्त्रीय पक्ष है । यह शैली की शक्ति और सामर्थ्य का पहलू है । इसमें शैलीकार की बौद्धिक, भावुक और सामंजस्य-बोधक क्षमताओं का परिचय मिलता है । शैली का औचित्य ज्ञान, भाषा का लचीलापन, शब्दों की उपयुक्तता, वाक्यों का स्वरूप-विधान, वर्ण्यवस्तु की आकर्षणशीलता——ये सभी इसके अंतर्गत आते हैं ।

शैली का शास्त्रीय पहलू

अत हमें ऐतिहासिक, वैयक्तिक और शास्त्रीय——इन तीनों दृष्टियों से 'पंत' की भाषा-शैली का मूल्यांकन करना चाहिए ।

छायाकालीन पंतजी की भाषा

छायाकालीन पंत जी की भाषा में, अन्य छायावादी कवियों की भाषा की तरह, तत्समता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, चित्रमयता, संगीतात्मकता और अलंकृति है ।

वैसे तो द्विवेदी-युग की शब्द-साधना भी संस्कृत की छाया तले हुई थी, पर वह अपनी भाषा में 'संस्कृत की देव-वाणी' का संगीत नहीं ला सका था । खड़ी बोली की शब्द-तंत्री में संगीत की अवतारणा करने का श्रेय छायावाद को है । पंत जी की भाषा उस संगीत की एक मधुर कड़ी है । पंत की रुचि कोमल है, अत उनकी भाषा प्रशस्त होने के साथ ही कोमल-मधुर और संगीतप्राण है । विशुद्ध तत्सम भाषा में लिखी गई 'अप्सरा' आदि कविताओं में भी हरिऔध जी की कठोर शब्द-मैत्री या मैथिलीशरणजी के 'अरुन्तुदवाक्य' न मिलेंगे; उनमें संस्कृत शब्दावली के साथ कोमल कांतता और प्रवहमानता मिलेगी ।

कोमल-प्रशस्त तत्समता

उदित शुक्र अब, अस्त भानु बल,
स्तब्ध पवन, नत नयन पद्म दल,

तन्द्रिल पलकों में, निशि के शशि !
सुखद स्वप्न बनकर विचरो, हे !

—साध्य वहना (आ० क० पृ० ४६)

चरण कमल में अर्पण कर मन,
रज-रंचित कर तन,
मधु-रस-मज्जित कर मम जीवन
चरणामृत आशय मे !

—नीरव तार (आ० क० पृ० ६)

उपर्युक्त पंक्तियो की सामासिक पदावलियाँ भी संगीत के उपकूलों में बंधकर वेगवती हो गयी हैं । पंत जी को भाषा-संघटन मे जो सफलता मिली है उसका कारण यह है कि उन्होंने संस्कृत शब्दावली को हिन्दी की अनुरूपता मे अपनाया है और उसके अनुकूल छंदों का विधान किया है, पूर्व कवियो की तरह टाप् प्रत्यात विशेषण आदि संस्कृत-व्याकरण के नियमों की रूढि नही मानी है । पंतजी की लोकप्रियता का एक कारण उनकी वह भाषा है जिसने हिन्दी को अभूतपूर्व शब्द-लालित्य, नवीन अन्तर्संगीत और भावाभिव्यक्ति की नूतन शक्ति दी थी ।

लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता

शैली की दृष्टि से छायावाद अगीत की वाणी है । अत उपचार-वक्रता—लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता—उसकी भाषा का धर्म है । छायावाद अध्यात्म और प्रकृति-प्रेम के व्याज से रति-भावना की अभिव्यक्ति करने चला था, अत: उसके हृदय मे प्रेम और अधर पर रहस्य के बोल थे ।

प्राण ! तुम लघु-लघु गात !
नील नभ के निकुंज में लीन,
नित्य नीरव, निःसङ्ग नवीन,
निखिल छबि की छबि ! तुम छबिहीन
अप्सरी-सी अज्ञात ।

—वायु के प्रति (आ० क० पृ० ४६)

कब से विलोकती तुमको
उषा आ वातायन से ?
सन्ध्या उदास फिर जाती
सूने गृह-के आँगन से !

—गु०, पृ० ४५

प्रेयसी के ध्यान में मग्न कवि, दूसरे उद्धरण मे यह न कहकर कि रात के सपनों के बाद प्रभात मे उसकी आँखे उसे ढूढती है और सध्या के अलस प्रहर में उसे न पाकर उसका मन उदास हो जाता है, यह कहता है कि आकाश के झरोखे से धरती की उस सौंदर्य-लक्ष्मी को देखने के लिए ही प्रभात में सूरज निकलता है और सध्या उसके आँगन मे उतरती है, पर उसे न पाकर उदास लौट जाती है । इसी प्रकार पहले उद्धरण मे वह वायु के व्याज से प्रेयसी (प्राण) के सम्मोहन को ही प्रकट करता है ।[१]

पंतजी की इस लाक्षणिक भाषा का मुख्य आधार है विशेष्य-विशेषण-सम्बन्ध पर आधृत लक्षणा जिसे आधुनिक भाषा में विशेषण विपर्यय कहते है। वे विह्वल भ्रमरों का गुञ्जन न कहकर अलियों का 'उन्मन गुञ्जन' कहेंगे ।

छाया उन्मन-उन्मन गुञ्जन,
नव-वय के अलियों का गुञ्जन !

—गु० पृ० १

यहाँ 'उन्मन' गुञ्जन के विशेषणरूप में प्रयुक्त है, पर वस्तुत वह गुञ्जन का विशेषण न होकर, गुञ्जन करनेवाले विशेष्य भ्रमर का विशेषण है ।

---

१. यह बात और स्पष्ट हो जाती है जब पहले उद्धरण की पंक्तियों (प्राण ! तुम लघु लघु गात....) की तुलना पंत की प्रसिद्ध प्रणय-गीतिका 'भावी पत्नी' की निम्नलिखित पंक्तियों से करते है—

वसे लक्षणा के और प्रकार भी मिल जायंग । 'रे गंध-अंध हो ठौर-ठौर' अथवा 'गन्ध-अन्ध दिशि-वात' मे अन्ध का अर्थ अंधा नही है क्योकि उसका सम्बन्ध गध से है । यहाँ साहचर्य-सम्बन्ध के कारण अंध का लक्ष्यार्थ होगा मदाध, मत्त आदि ।

पंत जी के प्रतीक

पत जी के प्रमुख प्रतीक हैं, मधु, मधुकर, गुञ्जन, सरोवर, लहर, मधुबन, वसन्त, शिशिर, तरु, कली, किसलय, फूल, शूल, गध, स्वर्ण, वीणा, ऊषा, संध्या, सरिता इत्यादि । पत-साहित्य मे मधुकर प्राण का प्रतीक है, मधु अनुभूति या सुख का, गुञ्जन अन्तर्संगीत का, सरोवर अथवा वीणा हृदयका, वसन्त सयोग या यौवन का, शिशिर विरह अथवा वृद्धावस्था का, तरु अथवा सरिता जीवन का, कली आशा का, किसलय प्रेम का, फूल सुख का, शूल दु:ख का, लहर इच्छा का, गंध गुण का, ऊषा उल्लास का, सध्या वेदना का और स्वर्ण पवित्र भाव का ।

बरसो कुसुमों में मधु बन,
प्राणों में अमर प्रणय घन ;
—पार्थना (आ० क० पृ० ४५)
(मधु=जीवन की मरम अनुभूति)
अपने सजल-स्वर्ण से पावन,
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,
—गु० पृ० ११

नील नभ-अन्तःपुर में, तन्वि !
दूज की कला सदृश नवजात,
मधुरता, मृदुता-सी तुम, प्राण !
न जिसका स्वाद-स्पर्श कुछ ज्ञात ;
कल्पना हो, जाने परिमाण ?
प्रिये, प्राणों की प्राण !

सुख सुषमा के मधुर स्वर्ण से
सूने जग गृह द्वार भरो हे !

——साध्य वदना (आ० क० पृ० ८६)

(स्वर्ण = संवेदनशील पवित्र भाव-तत्त्व)

प्रात का सोने का संसार,
जला देती संध्या की ज्वाल !

——अनित्य जग (आ० क० पृ० ३३)

(सोने का = आनन्द का, संध्या = अवसाद)

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन,
गन्ध-हीन तू गन्ध-युक्त बन,

——नग (आ० क० पृ० ४१)

(गन्ध = गुण)

आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी साँस ;

——अनित्य जग (आ० क० पृ० ३३)

(सौरभ = सौंदर्य, मधुमास = यौवन या संयोग-काल, शिशिर = विरह-घड़ी या वृद्धापा)

यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का ;

——सुख दुःख (आ० क० पृ० ५०

(साँझ = वेदना, उषा = उल्लास)

देखूं सबके उर की डाली——
किसने रे क्या क्या चुने फूल
जग के छवि-उपवन से अकूल ?
इसमें कलि, किसलय, कुसुम, शूल !

——उर की डाली (आ० क० पृ० ५२)

(कलि = आशा, किसलय = प्रेम, कुसुम = सुख, शूल = दुःख)

शिशिर सा भर नयनों का नीर
झुलस देता गालों के फूल !

—अनित्य जग (आ० क० पृ० ३४)

(फूल = सुख)

जीवन की लहर-लहर से
हँस खेल-खेल रे नाविक !

—गु० पृ० १८

(लहर = उपभोग की इच्छा, नाविक = सुखाकांक्षी व्यक्ति)

प्रतीकात्मकता की दृष्टि से 'अप्सरा', 'चाँदनी', 'प्रथम रश्मि', 'वायु के प्रति', 'विहग के प्रति' और 'एक तारा' विशेष द्रष्टव्य हैं । 'अप्सरा' उस अनिर्वच सौंदर्य-भावना की प्रतीक है जो प्रतियुग में एक नवीन परिभाषा लेकर आती है—'प्रतियुग में आती हो रंगिणी ! रच-रच रूप नवीन !' 'विहग' उस अनन्त-अमर सत्ता (ब्रह्म) का प्रतीक है जो जन-जीवन को सदा प्रसन्न रखता है । 'एकतारा' एक स्थित-प्रज्ञ, आत्मदर्शी व्यक्ति का प्रतिरूप है । यहाँ उसके आत्मविकास के सम्पूर्ण इतिहास को संध्या के नील तट पर साध्यतारा की ज्योति से लिखा गया है।

रही बात चित्रमयता, संगीतात्मकता और अलङ्कृति की । सो, उनपर विचार करने के पूर्व पंत जी की वर्ण और शब्द-साधना पर विचार कर लेना आवश्यक है क्योंकि, चित्र, संगीत और अलंकार शैली के प्रसाधन हैं और शब्द उसका मूलाधार । पर, शब्द भी अक्षरों के योग से बना है अतः अक्षर ही अंतिम इकाई है । तो पंत जी की भाषा में कोमल वर्णों की

पंत जी की वर्ण-साधना

प्रधानता है । निराला जी ने पंत जी की भाषा को 'श-ण-ल-व' स्कूल की भाषा कहा है जिसके आदि गुरु कालिदास हैं । वैसे 'गुञ्जन'-काल की भाषा में 'न-र-ल-व-स' भाषा में अन्य वर्णों की अपेक्षा अधिक बोलते हैं ।

तप रे मधुर मधुर मन !

——तप (आ० क० पृ० ५१)

('र' का बाहुल्य)

अरे अब जल-जल नवल प्रवाल
लगाति रोम रोम में ज्वाल,

——गु० पृ० ५०

('ल' का प्रधान्य)

कान से मिले अजान नयन

——'उच्छ्वास' की बालिका (आ० क० पृ० ६)

रे गूंज उठा मधुवन में
नव गुंजन अभिनव गुंजन,

——गु० पृ० २७

('व' और 'न' का बाहुल्य)

सहज था सजा सजीला तन

——उच्छ्वास' की बालिका (आ० क० पृ० ६)

('स' का बाहुल्य)

इस वर्ण-बाहुल्य का कारण पंत जी की संगीत-सौंदर्य-प्रियता है । इन वर्णों के उच्चारण से मधुर संगीत-सा निःसृत होता है ।

वर्ण-संगीत पंत जी ने श्रुति-मधुरता के लिए जहाँ शब्दों का लिंग-विपर्यय किया है वहाँ अत्यानुप्रास के संगीत के लिए कहीं-कहीं वर्ण-विपर्यय भी ।

'गुन्जन' में 'रे' की पुनरुक्ति का कारण भी वर्ण-संगीत है । पंत जी ने स्वयं कहा है कि "पल्लव की कविताओं मे मुझे 'स' के बाहुल्य ने लुभाया था, यथा——

अर्ध-निद्रित-सा, विस्तृत-सा,
न जागृत-सा, न विमूर्छित-सा ——इत्यादि ।

'गुञ्जन' मे 'रे' की पुनरुक्ति का मोह नही छोड सका।
यथा---'तप रे मधुर-मधुर मन'---इत्यादि।
'सा' से, जो मेरी वाणी का सम्वादी स्वर एकदम 'रे' हो गया, यह उन्नति का क्रम-सगीत प्रेमी पाठको को खटकेगा नही, ऐसा मुझे विश्वास है।"
---पत ('गुञ्जन' का 'विज्ञापन')

छायावादी कविता युवको की सृष्टि थी। उसमे शब्द, चित्र और कल्पना का विशेष मोह था। पत जी मे यह मोह शायद सबसे अधिक है। 'अरथ अमित अरु आखर थोरे' वाला सिद्धात पत जी का नही है। शब्दो के प्रयोग मे पत जी ने कही कजूसी नही की है। पत जी के काव्य मे एक भाव के अनेक पर्याय-वाची शब्द और एक शब्द के अनेक विशेषण एक ही स्थान पर मिलेगे। वस्तुत पत जी मे विषय की वैसी विशदता नही है, जैसा शब्द-शिल्प। उनमे अर्थ-सगीत उतना नही है, जितना शब्द-सगीत। हिन्दी की शब्द-सम्पत्ति और शक्ति बढाने का श्रेय बहुत कुछ पत और निराला को है।

शब्द-साधना

उनके काव्य मे ऐसे स्थल भी मिलेगे जहाँ शब्दो का जमघट-सा लगा होगा।

एक वीणा की मृदु झंकार!
कहाँ है सुन्दरता का पार!
....
अपरिचित चितवन में था प्रात,
सुधामय साँसों में उपचार,
तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आभार!
....
कपोलों में उर के मृदु भाव,
श्रवण नयनों में प्रिय बर्ताव,

सरल संकेतों में संकोच,
मृदुल अधरों में मधुर दुराव !
उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास;
चाँदनी का स्वभाव में भास,
विचारों में बच्चों की साँस !

——'आँसू' की बालिका (आ० क० पृ० ११)

——आदि ऐसे ही स्थल है जहाँ पंत जी के वाणी-विलास अथवा शब्द-मोह को आसानी से देखा जा सकता है ।

वैसे शब्द पंत जी के तत्सम्बन्धी चिन्तन और साधना के द्योतक है।[१] पंत जी ने शब्दों के सम्बन्ध में पर्याप्त चिन्तन किया है । पंत जी शब्दों की अन्तरात्मा का ज्ञान रखते हैं और उनके पारस्परिक भेद से सुपरिचित हैं ।[२] फिर पंत जी ने शब्दों की साधना की है । कविता

१. 'प्रत्येक शब्द एक संकेतमात्र, इस विश्वव्यापी संगीत की अस्फुट झंकार-मात्र है । जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक दूसरे पर अवलम्बित है, ऋणानुबन्ध है, उसी प्रकार शब्द भी; ये सब एक ही विराट् परिवार के प्राणी हैं । इनका आपस का सम्बन्ध, सहानुभूति, अनुराग-विराग जान लेना, कहाँ कब एक की साड़ी का छोर उड़कर दूसरे का हृदय रोमाञ्चित कर देता, कैसे एक की ईर्ष्या अथवा क्रोध दूसरे का विनाश करता, कैसे फिर दूसरा बदला लेता ; कैसे ये भले लगते, बिछुड़ते; कैसे जन्मोत्सव मनाते तथा एक दूसरे की मृत्यु से शोकाकुल होते,——इनकी पारस्परिक प्रीति-मैत्री, शत्रुता तथा वैमनस्य का पता लगा लेना क्या आसान है ? प्रत्येक शब्द एक-एक कविता है; लक्ष और मल-द्वीप की तरह कविता भी अपने बनानेवाले शब्दों की कविता को खा खाकर बनती है ।'——पंत, 'पल्लव' की भूमिका, पृ० १८ ।

२. 'भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द, प्रायः, सङ्गीत-भेद के कारण, एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रगट करते हैं । जैसे 'भ्रू' से क्रोध

शब्द-चयन और शब्द-स्थापना

रचते समय पत जी एक भाव की अनेक पंक्तियाँ लिख जाते हे और फिर उनमे मर्वोत्तम पंक्ति को अलग रखकर शेप को काट देते है। अत पत जी का शब्द-चयन उपयुक्त और उनका शब्द-स्थापन प्राय: मार्मिक हैं ।

अपने मधु में लिपटा पर
कर सकता मधुप न गुंजन,
—गु० पृ० २०

यहाँ मधुप शब्द का योग द्रष्टव्य हे । मधुप एक भोगी अथव विलासी व्यक्ति का प्रतीक बनकर आया हे । यदि मधुप की जगह मधुकर शब्द प्रयुक्त होता तो उतनी व्यजना नही आती क्योकि मधुप मे भोग की, मधुपायी होने की भावना अनजान मे छिपी हैं और मधुकर मे संग्रही बनन की, मधु-सचय करने की । यह बात तब और स्पष्ट हो जाती है जब हम नीचे के उद्धरण मे मधुकर शब्द को दाता की संगति में प्रयुक्त पाते है—

कोयल का वह कोमल बोल,
मधुकर की वीणा अनमोल,
कह, तब तेरे ही प्रिय स्वर से कैसे भर लूँ, सजनी श्रवण !
भूल अभी से इस जग को !
—मोह (आ० क० पृ० १)

की वक्रता, 'भृकुटि' से कटाक्ष की चंचलता, 'भौंहों' से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय में अनुभव होता है । ऐसे ही 'हिलोर' में उठान, 'लहर' में सलिल के वक्षःस्थल की कोमल-कम्पन, 'तरङ्ग' में लहरों के समूह का एक दूसरे को धकेलना, उठकर गिर पड़ना, 'बढ़ो-बढ़ो' कहने का शब्द मिलता है; 'वीचि' से जैसे किरणों में चमकती, हवा के पलने में हौले-हौले झूलती हुई हँसमुख लहरियों का, 'ऊर्म्मि' से मधुर मुखरित हिलोरों का, हिल्लोल-कल्लोल से ऊँची-ऊँची बाहें उठाती हुई उत्पातपूर्ण तरगों का आभास मिलता है ।' —पंत, 'पल्लव' की भूमिका, पृ० १६।

शब्द-स्थापन भी कम कलापूर्ण नहीं है।

आते कैसे सूने पल
जीवन में ये सूने पल?
जब लगता सब विशृंखल
तृण, तरु, पृथ्वी, नभ-मण्डल।

——गु० पृ० १३

अंतिम पंक्ति में शब्दों के क्रम की ऐसी व्यवस्था है कि भाव छोटे पदार्थ (तृण) से क्रमशः बड़े पदार्थ (तरु→पृथ्वी→नभ-मंडल) की ओर बढ़ता हुआ अतिव्यापक होकर मन पर छा जाता है। इसी प्रकार—

देखूं सबके उर की डाली—
किसने रे क्या क्या चुने फूल
जग के छबि-उपवन से अकूल?
इसमें कलि, किसलय, कुसुम, शूल!

——उर की डाली (आ० क० पृ० ५२)

यहाँ भी अंतिम पंक्ति में शब्दों के व्यवस्थित क्रम के कारण फूल के आदि-अंत (कली—शूल) के साथ मानव-जीवन के क्रमिक विकास का [कली (शैशव का आशाभरा दुलार)→किसलय (तरुणाई का पूर्वराग)→कुसुम (यौवन का सुख-पराग)→शूल (जरा की निराशा)] सम्पूर्ण इतिहास उतर आया है।

रूढ़ि-प्रयोग वैसे, जिस तरह 'रे' केवल संगीत के लिए आया है उसी तरह 'चिर' और 'नव' शब्द भी श्रुति-मधुरता के हेतु ही बहुप्रयुक्त हुए हैं। पंत जी की भाषा में इनका प्रयोग रूढ़ि-सा हो गया है और प्रत्येक स्थान पर इनसे विशिष्ट अर्थ निकालना कठिन है।

पंत जी की पद-योजना में बड़ा बल है। शब्दों की पारस्परिक मैत्री और द्वेष का उन्हें पर्याप्त ज्ञान है, अतः शब्दों के संयोग मात्र से वे इच्छित वातावरण सृजित कर लेते हैं।

पद-योजना

खग-कूजन भी हो रहा लीन,
निर्जन गोपथ अब धूलि-हीन,

—एक तारा (आ० क० पृ० ५३)

यहाँ 'खग-कूजन' और 'निर्जन गोपथ' के प्रयोगद्वारा संध्या के नीरव-निर्जन वातावरण को बड़े लाघव के साथ उपस्थित किया गया है।

यदि पंत जी के वर्ण-चयन में कालिदास की और शब्द एवं चित्र में शैली की अनुरूपता है तो पद-योजना में रवीन्द्र की। कहीं-कहीं तो उनके पद अर्थ अथवा भाव की ऐसी चरमाभिव्यक्ति करते हैं कि उनकी सृष्टि-प्रतिमा पर मुग्ध-मौन रह जाना पड़ता है।

पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।

—एक तारा (आ० क० पृ० ५३)

रेखांकित पदों में अपेक्षित भाव की कैसी व्याप्ति है!

चित्र-साधना

पंत जी की भाषा चित्र-भाषा है। चित्रमयता और संगीत उनकी भाषा के सबसे बड़े गुण हैं। सिद्धांत में भी वे कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता स्वीकार करते हैं।[1] अतः पंत जी में शब्द के साथ चित्र का भी मोह है।

१. कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिए; जो बोलते हों; सेब की तरह जिनके रस की मधुर-लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े; जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हों।

—पंत, 'पल्लव' की भूमिका, पृ० २०।

शब्द-चित्र

वस्तुत प्रत्येक शब्द उनके लिए एक चित्र है और प्रत्येक भाव एक आकार। पंत जी के शब्द-चित्र उनके पूर्ण चित्रों की अपेक्षा अधिक सुन्दर बन पड़े हैं।

अरे वह प्रथम-मिलन अज्ञात!
विकम्पित मृदु-उर, पुलकित-गात,
सशंकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप
जड़ित पद, नमित-पलक-दृग-पात;
पास जब आ न सकोगी, प्राण!
——गु० पृ० ४३

रेखांकित शब्द-चित्र 'भावी पत्नी' के प्रथम-मिलन की प्रत्येक भाव-भंगिमा, गति, मुद्रा, सिहरन-पुलकन को सफल मूर्त आकार दे रहे हैं। इसी प्रकार निम्नलिखित शब्द-चित्रों में वायु के किस 'नभ के निकुंज' (सौंदर्य-धाम) से आनेवाली 'लघु-लघु गात', 'निखिल छवि की छवि' और 'अप्सरी-सी अज्ञात' सौंदर्य-भावना वाली अपेक्षिता का रूपाभास एक साथ ही निर्दोष और रूमानी बनकर एक धूपछाँही वातावरण का आकर्षण बिखेर रहा है——

हरित-द्युति चपल अंचल-छोर
सजल छवि, नील कंचु, तन गौर,
चूर्ण कच, साँस सुगंध झकोर
परों में सायं-प्रात !
——वायु के प्रति (आ० का० ४६)

चित्रमय विशेषण

इन शब्द-चित्रों के आधार हैं चित्र-ध्वनिमय विशेषण। पंत की भाषा में ऐसे चित्र-ध्वनिमय विशेषणों की संख्या अनगिनत है।

अधर मर्मरयुत, पुलकित-अंग,
चूमती चल-पद चपल-तरंग,
चटकती कलियाँ पा भ्रू-भंग,
——वायु के प्रति (आ० का० पृ० ४६)

अधर के लिए 'मर्मरयुत', अंग के लिए 'पुलकित', पद के लिए 'चल' और भ्रू के लिए 'भग' जैसे उपयुक्त विशेषणो के प्रयोग न ही ऊपर की पंक्तियो मे अपेक्षित चित्र और गति की छवि लाई है।

चित्र तथा भाव-स्वर-साम्य के लिए पंत जी ने व्याकरण की कड़ियाँ तोड़ी है और पुल्लिग शब्दों का स्त्रीलिंग प्रयोग किया है क्योंकि उन्हें कोमल चित्र और मधुर स्वर ही अधिक भाते है।

लिंग-परिवर्त्तन उनकी भाषा मे प्रभात, क्षण, वन, मधु, बाल, हार, सौरभ, गर्जन, गुञ्जन इत्यादि अनेकानेक स्थानों मे स्त्रीलिंग बनकर आए है क्योकि पुल्लिग रूपो मे इन शब्दो के अपेक्षित चित्र उनके सामने नही आते।[१] जैसे--

---

१. मैंने अपनी रचनाओं में, कारणवश व्याकरण की लोहे की कड़ियाँ तोड़ी हैं, यहाँ कुछ उसके विषय में भी लिख देना उचित समझता हूँ। मुझ अर्थ के अनुसार ही शब्दों को स्त्रीलिङ्ग मानना अधिक उपयुक्त लगता है। जो शब्द केवल अकारान्त-इकारान्त के अनुसार ही पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग हो गए है, और उनमें लिंग के अर्थ के साथ सामञ्जस्य नहीं मिलता, उन शब्दों का ठीक ठीक चित्र ही आँखों के सामने नहीं उतरता और कविता में उनका प्रयोग करते समय कल्पना कुण्ठित-सी हो जाती है। वास्तव में जो शब्द स्वस्थ तथा परिपूर्ण-क्षणों में बने हुए है उनमें भाव और स्वर का सामञ्जस्य मिलता है, और कविता में ऐसे ही शब्दों की आवश्यकता भी पड़ती है।.....'प्रभात' और प्रभात के पर्यायवाची शब्दों का चित्र मेरे सामने स्त्रीलिङ्ग में ही आता है, चेष्टा करने पर भी मैं कविता में उनका प्रयोग पुल्लिंग में नहीं कर सकता। 'प्रभात' आदि को पुल्लिंग मान लेने पर मेरे सामने प्रभात का सारा जादू, स्वर्ण, श्री, सौरभ, सुकुमारता आदि नष्ट हो जाते हैं, उसका चित्र नहीं उतरता।

---पंत, 'पल्लव' का विज्ञापन पृ० ख-ग।

आज सोये खग को अज्ञात
स्वप्न से चौंका गई प्रभात

जीवन की अश्रु-नयन भग

कुसुमों की ही मधु प्रियतर,

नवेली बेला उर की हार

अँगुलियाँ मदन बान की वान

अपने उर की सौरभ से

वह फूली बेला की वन
—चाँदनी (आ० क० पृ० ५६)

करुणार्द्र विश्व की गर्जन

खोलती नव जीवन की प्रात
—नित्यजग (आ० क० पृ० ४१)

विधि की गोपन-सम्भाषण
—चाँदनी (आ० क० पृ० ६१)

यह ठीक है कि हिन्दी में लिंग का निर्धारण अभी तक पूर्ण व्यवस्थित नहीं है, पर जबतक इसकी कोई सर्वमान्य व्यवस्था नहीं होती तब तक इस प्रकार के व्याकरण-स्वातन्त्र्य को श्लाघ्य नहीं कहा जा सकता। हमारा व्याकरण अपवादों की भरमार के कारण योंही पेचीदा और भयावह है; इस प्रकार की अराजकता से तो उसकी कठिनाई और बढ़ जायेगी। फिर इस प्रकार के प्रयोग से कहीं-कहीं अर्थ में अनर्थ के उतर आने का भी डर बना रहता है। पंत जी की ही एक पंक्ति को लीजिए—

नवेली वेला उर की हार

यहाँ 'हार' का अपेक्षित अर्थ माला है, पर उसका प्रयोग स्त्रीलिंग में हुआ है जिसका अर्थ पराजय है। ये दोनों अर्थ मिलकर पाठक के मन के भाव को छिन्न-भिन्न कर देते है।

पंत जी के लिए चित्र और संगीत परस्पर सापेक्ष है। उनके लिए 'भाषा संसार का नादमय-चित्र है, ध्वनिमय—स्वरूप है';

संगीत-साधना और शब्द-निर्माण वह 'झंकार में चित्र' और 'चित्र में झंकार' है। अतः पंत जी में संगीत की बड़ी ममता है। संगीत के लिए कुछेक वर्णो (श-स, ण-न, ल, व) का बहुलता के साथ प्रयोग और 'रे' की पुनरुक्ति तो की ही है, उच्चारण-सौंदर्य और श्रुतिसुगमता के लिए कुछेक शब्दों का स्वतंत्र निर्माण भी किया है, जैसे 'प्रि' (प्रिय), 'अनिवर्च' (अनिर्वचनीय), 'सिंगार' (हरसिंगार) इत्यादि।

वह है, वह नही, अनिर्वच,
—चाँदनी (आ० क० पृ० ६१)

कुसुमित सुभग, सिंगार
—गु० पृ० ६७

प्रिय प्रिय विषाद रे इसका,
प्रिय प्रि' आह्लाद रे इसका।
—गु० पृ० १८

द्विरुक्तियों का प्रयोग संगीत के स्वर-साम्य के हेतु पंत जी की भाषा में द्विरुक्तियों का प्रयोग भी खूब हुआ है—

तप रे विधुर विधुर मन!
. . . .
तप रे मधुर-मधुर मन!
—तप (आ० क० पृ० ५१)

——आदि पक्तियों मे 'मृदु मन्द मन्द' मन्थर मन्थर' जैसे गतिविषयक शब्दों से मधुर वीचियों पर तिरनेवाली छोटी चपला की सम्पूर्ण तसवीर खिच आती है। पर अनेक स्थलों पर शब्द महज रुढ़ि भर होते है, जैसे——

रे फेल-फेल फेनिल हिलोल
उठती हिलोल पर लोल-लोल
. . . .
जीवन का जलनिधि डोल-डोल
कल-कल छल-छल करता विलोल!

—गु० पृ० ६६

——आदि वाक्यों मे कतिपय अनुकरणात्मक पुनरुक्त शब्दो (फेल-फेल, कल-कल, छल-छल) के सयोग से जल की प्रवाह-क्षिप्रता और वात्या-चक्र को ध्वनित और मूर्त्त करने के प्रयास मे शब्दों का अपव्यय ही हुआ है।

अनुप्रास-मोह

पत जी की भाषा मे अनुप्रास का भी मोह है। अन्त्यानुप्रास के लिए उन्होंने कहीं-कहीं णकारान्त शब्दों को नकारान्त कर दिया है।[1] उनकी इस अनुप्रास-प्रियता का कारण भी सगीतप्रियता ही है। पत जी ने सादी, इकहरी निराभरण भाषा भी लिखी है——

मेरे आँगन में, (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे-से लड़के आ जाते है अकसर!

——दो लड़के (आ० वा० पृ० ७८)

---

१. कहीं-कहीं अन्त्यानुप्रास मिलाने के लिए आवश्यकतानुसार 'कण', 'गण', 'मरण' आदि णकारात्मक शब्दों को नकारात्मक कर दिया है। यथा——एक छवि के असंख्य उड़गन।

—पंत, 'पल्लव' का विज्ञापन, पृ० घ।

पर ये छायावादी पंत की भाषा के अपवाद-स्थल हैं। छायायुगीन पंत की भाषा प्रायः विशेषरूप से अलंकृत रही है। वह पर्वतीय कवि की नागरिक भाषा है—पौर्वात्य-पाश्चात्य प्रसाधनालंकारों में विन्यस्त। उस भाषा में शायद ही कोई संज्ञा विशेषण रहित और कोई रूप अलंकारविहीन हो।

अलंकृति

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार

—यह प्रगतिवादी पंत की वाणी है, छायावादी पंत की नहीं। छायाकाल में तो वे अलंकार को भाषा की पुष्टि और राग की पूर्णता के आवश्यक उपादान मानते रहे हैं।[1] 'पल्लव से गुंजन तक मेरी भाषा में एक प्रकार के अलंकार रहे हैं और वे अलंकार भाषा-संगीत की प्रेरणा देनेवाले तथा भाव सौंदर्य की पुष्टि करनेवाले रहे हैं। बाद की रचनाओं में भाषा के अधिक बुद्धिगर्भित (एब्सट्रैक्ट) हो जाने के कारण मेरी अलंकारिता अभिव्यक्तिजनित हो गई है।'[2] अब रूप-चित्र में विचार-चित्र अधिक प्रधान हो उठे हैं। अब रूपपूजन का स्थान भावपूजन ने ले लिया है—'रूप रूप बन जायें भाव स्वर, चित्र गीत झंकार मनोहर'। अब विचार ही अलंकार बन गये हैं, युग का भाव-तत्त्व अभिव्यंजना में अधिक आग्रह-गौरव रखने लगा है।

१. (अलंकार) भाषा की पुष्टि के लिए, राग की पूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति हैं; पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं। जैसे वाणी की झंकारें विशेष घटना से टकराकर फेनाकार हो गई हों, विशेष भावों के झोंके खाकर बाल-लहरियों, तरुण-तरंगों में फूट गई हों; कल्पना के विषम बहाशेव में पड़ आवर्त्तों में नृत्य करने लगी हों। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव-भाव हैं।

—पंत, 'पल्लव' की भूमिका, पृ० २२।

२. पंत, 'आधुनिक कवि' का पर्यालोचन, पृ० ८—९।

वैसे 'पंत' में गिनाने को अनेकानेक अलंकार मिलेंगे। जैसे—

छेकानुप्रास—

तज कर तरल तरंगों को

—मोह (आ० क० पृ० ११)

रज-रंजित कर तन

—नीरव तार (आ० क० पृ० ६)

है यह वैदिक वाद

—स्नेह (आ० क० पृ० ७)

(अनेक व्यंजनों 'त ज', 'र ज', अथवा 'व द' की एकबार स्वरूपतः एवं क्रमतः आवृत्ति)

वृत्यानुप्रास—तुम्हारा कर नित नव शृंगार

—'आँसू' की बालिका (आ० क० पृ० १२)

(एक व्यंजन 'न' की एकबार आवृत्ति)

उसका उर था उकसाया

—'उच्छ्वास' की बालिका (आ० क० पृ० १०)

(एक व्यंजन 'उ' की अनेक बार आवृत्ति)

हम कूल विलोक न पावें।

—गु० पृ० ३१

(अनेक व्यंजनों 'क ल' की एक बार स्वरूपतः आवृत्ति)

यमक—तुम्हारे परस-परस के साथ

—गु० पृ० १०८

(यहाँ १ परस=पारस, २ परस=स्पर्श)

श्रवण तक आ जाता है मन

स्वयं मन करता बात श्रवण

—स्नेह (आ० क० पृ० ७)

(१ श्रवण=कान। २ श्रवण=सुनना)

था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल

—पर्वत प्रदेश मे पावस (आ० का० पृ० १४)

इन्दु पर, उस इन्दु-मुख पर, साथ ही

—ग्रंथि से (आ० का० पृ० २०)

पूर्व था पर वह अद्वितीय अ-पूर्व था

—ग्रंथि से (आ० का० पृ० २०)

श्लेष——समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना में
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार

——बादल (आ० का० पृ० २४)

(कर=१ हाथ, २ किरण)

वीप्सा——अरे क्षण क्षण सौ सौ निःश्वास
छा रहे जगती का आकाश !
चतुर्दिक् घहर-घहर आक्रांति
ग्रस्त करती सुख-शान्ति !

——निष्ठुर परिवर्तन (आ० का० पृ० ३८)

घिर-घिर होते मेघ निछावर,
झर-झर सर में मिलते निर्झर,

——मछुए का गीत (आ० का० पृ० ६४)

पूर्णोपमा——गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर
चंचल-अंचल-सा नीलाम्बर

. . . .

दो बाँहों से दूरस्थ तीर धारा का कृश कोमल शरीर
आलिंगन करने को अधीर
अति दूर क्षितिज पर विटप माल लगती भ्रू-रेखा सी अराल,

——नौका विहार (आ० का० पृ० ५६—५७)

लुप्तोपमा——मृगेक्षिणि ! इसमें खग अनजान ।

——गु० पृ० ४४

(वाचकोपमेयलुप्ता)

अपलक नभ नील नयन विशाल

—नौका विहार (आ० क० पृ० ५७)

(वाचकलुप्ता)

मालोपमा—वह छवि की छुई-मुई- सी

....

वह लघु परिमल के घन सी

....

वह स्वप्निल शयन-मुकुल-सी

—चाँदनी (आ० क० पृ० ५९—६०)

छपी-सी पी-सी मृदु मुस्कान
छिपी-सी, खिंची सखी-सी साथ
उसी की उपमा-सी बन, मान
गिरा का धरती थी, धर हाथ।

—'उच्छ्वास' की बालिका (आ० क० पृ० ९)

प्रतीप (प्रथम)—विधुर उर के-से मृदु उद्‌गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास

—मौन निमंत्रण (आ० क० पृ० ३०)

रूपक (निरंग)—मेरी जीवन-स्वप्न !

रूपक (साङ्ग)—नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद-हासिनि,
मृदु-करतल पर शशि—मुख धर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि !

—चाँदनी (आ० क० पृ० ५९)

तरु-शिखरों से वह स्वर्ण-विहग उड़ गया; खोल निज पंख सुभग,
किस गुहा-नीड में रे किस मग !

—एक तारा (आ० क० पृ० ५३)

रूपक (परस्परित)--सोई थी तू स्वप्न-नीड में
पंखों के सुख में छिपकर,
झूम रहे थे, घूम द्वार पर,
प्रहरी-से जुगनू नाना;
--प्रथम रश्मि (आ० क० पृ० ३)

उल्लेख--वही उर-उर में प्रेमोच्छ्वास
काव्य में रस, कुसुमों में वास;
अचल तारक पलकों में हास,
लोल लहरों में लास !
--नित्य जग (आ० क० पृ० ४१)

स्मरण--इन्द्रधनु सा आशा का सेतु
अनिल में अटका कभी अछोर,
कभी कुहरे सी धूमिल, घोर,
दीखती भावी चारों ओर !
तड़ित सा सुमुखि ! तुम्हारा ध्यान
--'आँसू' से (आ० क० पृ० १६)

देखता हूँ, जब पतरा
इन्द्रधनुषी हलका
रेशमी घूँघट बादल का
खोलती है कुमुद-कला
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता तब अन्तर्धान;
--'आँसू' से (आ० क० पृ० १७)

सन्देह--कल्पना हो, जाने परिमाण ?
प्रिय, प्राणों की प्राण !
--गुं० पृ० ४०

उत्प्रेक्षा---लहरों पर स्वर्ण-रेख सुन्दर पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर-शिशिर से डर ।
--एक तारा (आ० क० पृ० ५३)

रूपकातिशयोक्ति---कर दिए पलक-प्राण गतिहीन,
लाज के जल की मीन !
--गुं० पृ० ६४

समासोक्ति---विजन-वन के ओ विहग-कुमार !
आज घर-घर रे तेरे गान ;
मधुर-मुखरित हो उठा अपार
जीर्ण-जग का विषण्ण-उद्यान !
--गुं० पृ० ८१

बिन्दु में थी तुम सिन्धु अनन्त ;
एक स्वर में समस्त संगीत ;
एक कलिका में अखिल वसन्त ;
धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत !
--'आँसू' की बालिका (आ० क० पृ० १२)

अन्योक्ति---चिर जन्म-मरण को हँस-हँस कर
हम आलिंगन करतीं पल पल
फिर फिर असीम से उठ उठ कर
फिर फिर उसमें हो हो ओझल
--लहरों का गीत (आ० क० पृ० ४७)

रिक्त होते जब-जब तरु-वास
रूप धर तू नव नव तत्काल,
नित्य-निनादित रखता सोल्लास
विश्व के अक्षय-वट की डाल ।
--गुं० पृ० ८३

विरोधाभास—निखिल छवि की छवि ! तुम छवि-हीन
—वायु के प्रति (आ० क० पृ० ४६)

अन्योन्य—वह है, वह नहीं अनिर्वच,
जग उसमें वह जग में लय,
—चाँदनी (आ० क० पृ० ५१)

नभ में अवनि, अवनि में अम्बर
—बादल (आ० क० पृ० ४७)

अश्रुओं में रहता है हास,
हास में अश्रुकणों का भास ;
श्वास में छिपा हुआ उच्छ्वास !
और उच्छ्वासों ही में श्वास !
—स्नेह (आ० क० पृ० ७)

कल्पना तुममें एकाकार
कल्पना में तुम आठो याम
तुम्हारी छवि में प्रेम-अपार
प्रेम में छवि अभिराम ;
—गुं० पृ० ६५

एकावली—आज वन में पिक, पिक में गान,
विपट में कलि, कलि में सुविकास
कुसुम में रज, रज में मधु प्राण !
सलिल में लहर, लहर में लास !
—गुं० पृ० ६०

यथासंख्य—बरसो कुसुमों में मधु बन,
प्राणों में अमर प्रणय-घन ;
स्मिति-स्वप्न अधर-पलकों में
उर-अंगों में सुख - यौवन
—प्रार्थना (आ० क० पृ० ४५)

(अधर में स्मिति, पलकों में स्वप्न, उर में सुख और अंगों में यौवन)

परिसख्या—देह मे पुलक, उरों में भार,
भ्रुवों में भग, दृगों में बान,
अधर में अमृत, हृदय में प्यार
गिरा में लाज, प्रणय में मान ।
—गु० पृ० ६०

तुम्हारे छूने में था प्राण,
सग में पावन गगा स्नान ;
तुम्हारी वाणी में, कल्याणि !
त्रिवेणी की लहरों का गान !
अपरचित चितवन में था प्रात,
सुधामय सांसों में उपचार,
तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आभार !
—'अ.सू' की बालिका (आ० क० पृ० ११)

काव्यलिग—आत्मा है सरिता के भी
जिससे सरिता है सरिता
जल-जल है लहर-लहर रे
गति-गति, सृति-सृति चिरभरिता
—गु० पृ० १४

भाविक—सुमुखि, वह मधु-क्षण ! वह मधु-बार।
धरोगी कर में कर सुकुमार !
निखिल जब नर-नारी ससार
मिलेगा नव-सुख से नव-बार ;
अधर-उर से उर-अधर समान,
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण,
कहेंगे नीरव प्रणयाख्यान,
प्रिय, प्राणों की प्राण !
—गु० पृ० ४४

मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को,
थाम ले अब, हृदय ! इस आह्वान को !
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य पावन स्थान को !
तेरे उज्ज्वल आँसू सुमनों में सदा
वास करेंगे, भग्न हृदय ! उनकी व्यथा
अनिल पोंछेगी ; करुण उनकी कथा
मधुप बालिकाएं गाएंगी सर्वदा !

—'आँसू' की बालिका (आ० क० पृ० १७)

संसृष्टि—वितरती गृह-वन मलय-समीर
साँस, सुधि, स्वप्न, सुरभि, सुख, गान,
मार केशर-शर मलय-समीर
हृदय हुलसित कर, पुलकित प्राण।

—गु० पृ० ५६

(वृत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, यमक)

गंगा के चल-जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूंद चुका अपने मृदु-दल ।
लहरों पर स्वर्ण-रेख सुन्दर पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिखर से डर ।

—एकतारा (आ० क० पृ० ५३)

(रूपक और उत्प्रेक्षा)

उपमा और वीप्सा की प्रधानता

पंत जी को शब्द-चित्र (Pen pictures) और संगीत विशेष प्रिय है, इसलिए उनकी भाषा में शृंखला और विरोध-मूलक अलंकारों की अपेक्षा सादृश्य, संकेत और ध्वनि-मूलक अलंकारों, विशेषतः उपमा और वीप्सा की

मानता है।[1] पर अलंकारों की गणना और भारतीय अलंकार-शास्त्र के आधार पर उनका मूल्यांकन विशेष महत्त्व नहीं रखते क्योंकि छायावादी काव्य का अभिप्रेत रूप-चित्रण था न कि अलंकार-योजना। भारतीय अलंकार-शास्त्र की पूर्णता के विश्वासी छायावाद के तथाकथित नवीन अलंकारों—मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय और ध्वनि-अलंकारों को रूपक या लक्षणा के भेद मात्र मान लेंगे, पर फिर भी छायावादी अभिव्यंजना के अनेक उपादान शेष रह जाएँगे जिन्हें अलंकार-शास्त्र तक लाने में पर्याप्त कठिनाई होगी। महत्त्व की बात तो इतनी है कि पंत जी की भाषा चित्रित तथा अलंकृत है और उन्होंने अलंकारों का प्रयोग भाषा की पुष्टि, चित्र की अनुरूपता और राग की पूर्णता के लिए किया है, रूढ़ि-अनुशीलन के हेतु नहीं। उन्होंने अलंकारों को नवीन दृष्टि से देखा है और अभिव्यंजना की आधुनिक अलंकारों का सरणी में उतार कर उन्हें नवीन भावगरिमा और अति नवीन सौंदर्य दी है। यहाँ उपमा ने गुण के सहारे रूप की सृष्टि की है—

सरल शैशव की सुखद सुधि-सी वही
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।
—पर्वत प्रदेश में पावस (आ० का० पृ० १४)

मधुरता, मृदुला-सी तुम प्राण !
....
सरल शैशव-सी तुम साकार।

उत्प्रेक्षा के क्रम-विपर्यय से चित्र मनोरम, लाक्षणिक और अनुभूतिपूर्ण हो उठा है और उसमें एक विशेष प्रकार की स्पर्शशीलता आ गई है—

---

१. 'भावी पत्नी के प्रति—' और 'रूपतारा तुम पूर्ण प्रकाम' आदि कविताओं में उपमा की झड़ी-सी लगी है। द्विरुक्तियों के रूप में वीप्सा अलंकार तो प्रायः सर्वत्र मिलेगा।

आज उन्मद मधु-प्रात
गगन के इन्दीवर से नील
झर रही स्वर्ण-मरन्द समान,
तुम्हारे शयन शिथिल सरसिज उन्मील
छलकता ज्यों मदिरालस, प्राण !

—गु० पृ० ८४

प्रतीक (यहां स्वर्ण) के सयोग से रूपक बाह्य सौंदर्य के साथ ही अन्तसौंदर्य (आध्यात्मिक प्रकाश) का अभिव्यंजक हो उठा है—

अपने सजल-स्वर्ण से पावन,
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,

—प्रार्थना (आ० क० पृ० ५१)

इस रूप में अलकार पत जी की भाषा का बोझ नही, बल है। उनके चित्र और सगीत बहुत कुछ इन अलंकारो पर आधृत है।

रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम ;
मृगेक्षिणि ! सार्थक नाम !

—गु० पृ० ६२

यहाँ कवि की नारी-भावना की व्यापकता, उसके रूप-विस्तार और समन्वित कला का श्रेय उस श्लेष (तारा) को है जो अपने भीतर धरती और स्वर्ग के तत्त्वो को लिए बैठा है।

एक दुर्बल स्थल

हाँ, कही-कही चित्रो की ऐसी भीड़ लगी रहती है जिसमें कविता का केन्द्रस्थित भाव अपने विकास का मार्ग खो बैठता है और कही-कही अलंकारो का ऐसा मेला लगा होता है जिसमें पारस्परिक प्रदर्शन और प्रतियोगिता में प्रधान अलंकार की प्रभविष्णुता नष्ट होने लगती है तथा कोई भाव मन पर ठीक-ठीक अंकित नही होता (देखिए 'कला' शीर्षक संदर्भ)।

कोमल वर्णों, अनुकरणात्मक शब्दों, ध्वनि-संकेत और सादृश्यमूलक अलंकारों के अतिरिक्त पंत जी ने शैली-सौन्दर्य के जिन अन्य साधनों का उपयोग किया है उनमें मुख्य हैं आश्चर्यवाक्य (Epigrams), संतुलित वाक्य (Balanced sentences) और प्रसंग-गर्भित अवतरण।

शैली-सौंदर्य के अन्य साधन

आश्चर्य वाक्य—तेरी मधुर मुक्ति बंधन

—प्रार्थना (आ० क० पृ० ५१)

जग पीड़ित है अति-दुख से,
जग पीड़ित रे अति-सुख से,

—सुख-दुख (आ० क० पृ ५०)

बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार;

—नित्य जग (आ० क० पृ० ४३)

गवाँ कर पाते स्वीय स्वरूप!

—नित्य जग (आ० क० पृ० ४३)

दुख के तम को खा-खाकर
भरती प्रकाश से वह मन।

—गुं० पृ २०

जाता जीवन से जीवन

—गुं० पृ० १४

संतुलित वाक्य—मूंदती नयन मृत्यु की रात
खोलती नव जीवन की प्रात

—नित्य जग (आ० क० पृ० ४१)

तरल जलनिधि में हरित विलास,
शान्त अम्बर में नील विकास;

—नित्य जग (आ० क० पृ० ४१)

आज का दुख कल का आह्लाद,
और कल का सुख आज विषाद;
....
जगत्-जीवन का अर्थ विकास,
मृत्यु, गति क्रम का ह्रास !

—नित्य जग (आ० क० पृ० ४३)

प्रसंग-गर्भित अवतरण—लहरों के घूंघट से झुक झुक
दशमी का शशि निज तिर्यक्-मुख
दिखलाता, मुग्धा-सा रुक-रुक ।

—नौका विहार (आ० क० पृ० ५७)

पटक रवि को बलि सा पाताल
एक ही वामन-पग में—
लपकता है तमिस्र तत्काल,
—धुएँ का विश्व विशाल !

—'आँसू' से (आ० क० पृ० १६)

चमक-झमक-मय मंत्र वशीकर,
छहर-घहर-मय विष-सीकर,
स्वर्ग-सेतु-से इन्द्रधनुषधर,
कामरूप घनश्याम अमर ।

—बादल (आ० क० पृ० २८)

दमयन्ती-सी कुमुद-कला के
रजत-करों में फिर अभिराम
स्वर्ण-हंस-से हम मृदु ध्वनि कर,
कहते प्रिय-सन्देश ललाम ।

—बादल (आ० क० पृ० २३)

विश्व के अक्षय-वट की डाल

लगा अंक से तड़ित-भीत शशि—
मृग-शिशु को सुकुमार,
. . . .
नाग-दन्त-नत इन्द्रधनुष-पुल
करती तुम नित पार
. . . .
डाल अँगूठा शिशु के मुंह में
देती मधुस्तन-दान

—गुं० पृ० ६३-६५

पंत जी ने कविता को 'परिपूर्ण क्षणों की वाणी' कहा है जिसमें भाव और भाषा का स्वरैक्य होता है। पंत जी के भाव सुकुमार हैं, अत. उनकी भाषा कोमल है। उसमें लाक्षणिकता, मूर्तिमत्ता और संगीत है। यह काव्य-भाषा अलंकृत है और कहीं-कहीं बोझिल भी। पर प्राय मुहावरों के अभाव में भी वह साफ है—

सिंहावलोकन

चल-सरित-पुलिन पर वह विकसी,
उर के सौरभ से सहज-बसी
सरला प्रातः ही तो विहँसी,
रे कूद सलिल में गई चली !

—गु० पृ० ३७

आज रहने दो यह गृह-काज,
प्राण ! रहने दो यह गृह-काज !

—गु० पृ० ५१

मुहावरे

वैसे ढूंढने पर कुछेक मुहावरे भी मिल जायँगे और प्रायः बड़े साफ—

बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन ?

—मोह (आ० क० पृ० १)

आत बात मे, तूल तोम सा
व्योम विटप से झटक, झकोर,

—बादल (आ० क० पृ० २४)

कभी हवा में महल बना कर,
सेतु बांध कर कभी अपार

—बादल (आ० क० पृ० २६)

अरे, वे अपलक चार नयन
आठ आँसू रोते निरुपाय

—अनित्य जग (आ० क० पृ० ३४)

भग्न उर पर भूधर सा हाय !
सुमुखि, धर देती है साकार !

—'आसू' मे (आ० क० १९)

वह छवि की छुई मुई-सी
मृदु मधुर लाज से मर-मर !

—चादनी (आ० क० पृ० ५९)

आई लहरी चुम्बन करने,
अधरों पर मधुर अधर धरने,
फेनिल मोती मे मुह भरने

—गु० पृ० ३८

न गुरु से सीखे वेद-पुराण

—गु० पृ० १०५

न पिक-प्रतिमा पर कर अभिमान

—गु० पृ० १०५

हँसते है विद्वान्
गीत खग तुझ पर सब विद्वान् !

—गु० पृ० १०५

कहीं २ तो उन्होंने अलंकारों की तरह मुहावरों को भी सुसंस्कृतकर ऐसा 'चमका दिया है कि उनके सामने पुराने मुहावरे हतप्रभ-से दीखने लगते हैं।

फूटता नभ में स्वर्ण-विहान

सुरुचिपूर्ण ढंग से संशोधित उपर्युक्त मुहावरे के सामने उसका पुराना रूप 'पौ-फटना' कितना हीन और ग्राम्य लगता है।

पर मुहावरे पंत जी की भाषा में विशेष महत्त्व नहीं रखते। यह भाव और भाषा का स्वरैक्य, उपयुक्त शब्दों का चयन तथा उनकी उचित स्थापनापन्नता है जिसके कारण पंत जी की भाषा में सफाई, व्यापकता और गति आती है।

अब उथला सरिता का प्रवाह, लग्गी से ले-ले सहज थाह
हम बढ़े घाट को सहोत्साह।

—नौका विहार (आ० क० पृ० ५८)

यहाँ उथला, लग्गी, थाह, घाट जैसे उपयुक्त शब्दों का यथास्थान प्रयोग हुआ है। इसीसे यह चित्र इतना साफ है। 'लग्गी' का प्रयोग ऐसे स्थान पर हुआ है कि स्वर उसपर एक क्षण के लिए रुक जाता है और ऐसा लगता है मानो सचमुच लग्गी पानी में सरक रही है।

सूक्तियाँ

फिर कुछ सुक्तियाँ भी हैं जो मुहावरों के अभाव को पूरा करने की चेष्टा करती है—

शाश्वत है गति, शाश्वत संगम

—नौका विहार (आ० क० पृ० ५८)

विज्ञान ज्ञान का अन्वेषण

....

क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में
यदि बने रह सको तुम मानव!

—मानव (आ० क० पृ० ७०)

मृतकों के हैं मृतक, जीवितों का है ईश्वर

—ताज (आ० का० पृ० ७१)

पूर्ण तन्त्र मानव, वह ईश्वर
मानव का विधि उसके भीतर

—चींटी (आ० का० पृ० ७७)

निष्ठुर है जड़ प्रकृति, सहज भगुर जीवित जन,
मानव को चाहिए यहाँ मनुजोचित साधन।

—दो लड़के (आ० का० पृ० ७८)

मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें—मानव ईश्वर।

—दो लड़के (आ० का० पृ० ७६)

सुख-दुःख न कोई सका भूल

—उर की डाली (आ० क० पृ० ५२)

हैं लेन-देन ही जग-जीवन

—गुं० पृ० ३८

सागर-संगम में है सुख,
जीवन की गति में भी लय

—गुं० पृ० १४

जग-जीवन में है सुख-दुख
सुख-दुख में है जग-जीवन

—गुं० पृ० १८

हाँ, पंत जी की सुक्तियाँ उतनी पैनी नहीं है जितनी प्रेमचंद और प्रसाद जी की।१

पंत जी की भाषा में कहीं-कहीं चलचित्र की त्वरा भरनेवाली तथा

नाटकीयता

आकस्मिक परिवर्तन का तत्क्षण चित्रण करनेवाली नाटकीयता भी मिलती है। 'नौका विहार', 'एक तारा' और 'चाँदनी' इसके प्रमाण हैं।

---

१. देखिए—'प्रसाद और उनके नाटक' (प्रो० केसरी कुमार)

सिकता की सस्मित-सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो पालें चढ़ीं, उठा लंगर ।
मृदु मन्द-मन्द, मन्थर मन्थर, लघुतरिणी, हंसिनी-सी सुन्दर
तिर रही, खोल पालों के पर

नौका-विहार (आ० क० पृ० ५६)

पुंजित अलि-सा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन-अंधकार,
हल्का एकाकी व्यथा-भार !
जगमग-जगमग नभ का आँगन, लद गया कुन्द कलियों से घन,
वह आत्मा और यह जग-दर्शन !

—एक तारा (आ० क० पृ० ५५)

पंत जी की भाषा में दोष है, पर कम। अलंकार पंत जी की भाषा
की शक्ति है किन्तु जहाँ इनका आधिक्य हो जाता है वहाँ
दोष अलंकृति गुण न होकर दोष बन जाती है क्योंकि इसके
कारण केन्द्रस्थित भाव गतिहीन हो जाता है और चित्र
अपनी रूपात्मकता खोने लगता है।

व्याकरण सम्बन्धी स्वातन्त्र्य के कारण एक-आध जगह भाव-सम्बन्धी अस्तव्यस्तता भी आ गई है——नवेली बेला उर की हार।

कहीं-कहीं अस्थान प्रयोग दोष भी आ गया है——

तेरी मधुर मुक्ति वही बंधन।

—तप (आ० क० पृ० ५१)

यहाँ 'ही' का प्रयोग बंधन के बाद होना चाहिए था, न कि मुक्ति के बाद क्योंकि कवि का उद्देश्य यह कहना है कि बंधन ही तेरी मुक्ति है, न कि मुक्ति ही तेरा बंधन है जैसा कि ऊपर के शब्द-क्रम से ध्वनित होता है।

कहीं-कहीं भाषा किञ्चित शिथिल पड़ गई है——

कितने प्राणों के गाने
ठहरे हैं तुमको मन में !

——गु० पृ० ४५

कई जगह 'चिर', 'नव' और 'रे' का प्रयोग निरर्थक हुआ है। इन शब्दों के बार-बार प्रयोग के अतिरिक्त कुछ पदों, विशेषणों, वाक्यो-उपचारों आदि की पुनरुक्तियाँ भी पंत की भाषा में एकरसता (monotony) उत्पन्न करती हैं।

पुनरुक्तियाँ

वैसे पुनरुक्ति कवियों की एक सीमा है और बल भी। बल इसलिए कि कुछेक प्रयोग प्रत्येक कवि के लिए अत्यंत विश्वस्त होते हैं और वह अभिव्यक्ति के संकट-काल में उन पर टिक जाता है। संसार के महान् से महान् कवियों ने भी पुनरुक्तियाँ की हैं। किन्तु प्रत्यक्ष ही यह एक सीमा (limitation) है क्योंकि इससे प्रमाणित होता है कि कवि प्रत्येक नई आसंगति और स्थिति (Association and situation) के मौलिक स्थापत्य में अपने को अक्षम पा रहा है। वह पुरानी अभिव्यक्तियों से आगे जाने का मार्ग नहीं पा रहा है। अत कवियों की महानता की एक कसौटी यह भी होगी कि किसने अपने को कितना कम पुनरभिव्यक्त किया है, कौन कवि-कर्म के संकट काल में अधिक से अधिक मौलिक और ताजा रह सका है। पंत के काव्य में संकट-स्थल पर्याप्त हैं और प्रत्येक स्थल में उनकी पुनरभिव्यक्ति जैसे नग्न हो जाती है। नीचे के उद्धरणों में प्रत्येक दो पद्य-पंक्तियों की तुलना से बात स्पष्ट हो जाएगी। जैसे--

(क) गिरा हो जाती है सनयन

——स्नेह (आ० का० पृ० ७)

और

श्रवण नयनों में प्रिय बर्ताव

——'आँसू' की बालिका (आ० का० पृ० ११)

(ख) खोल कलियों ने उर के द्वार

——गुं० पृ० ७३

और

खोलती कलियाँ उर के द्वार

—मौन निमन्त्रण (आ० क० पृ० २१)

(ग) खोलता उधर जन्म लोचन,
मूंदती इधर मृत्यु क्षण, क्षण;

—अनित्य जग (आ० क० पृ० ३५)

मूंदती नयन मृत्यु की रात
खोलती नव जीवन की प्रात

—नित्य जग (आ० क० पृ० ८१)

पंत जी ने द्विवेदी-युग के शेष-काल मे काव्यारम्भ किया। तभी उनके पास शब्दो का एक अच्छा-खासा भडार था और शब्दो की पहचान की चाह भी। उनके काव्य मे भाव-शिल्प से शब्द-शिल्प ज्यादा प्रधान था। कुछ लोग (तत्कालीन सरस्वती—सम्पादक श्री बरशी जी आदि) उनके काव्य को शब्द-जाल कहते थे। वस्तुत. उनके काव्य मे शब्दों का मेला लगा होता था, ऐसा कि भाव या शब्दार्थ को राह पाना कठिन हो जाता था। पर बाद में शब्द भाव का स्थापत्य बनने की चेष्टा करने लगे और भाषा में उपचार-वक्र लाक्षणिकता आने लगी। छाया-काल के शब्द-शिल्पी पंत की भाषा लाक्षणिकता, सगीत[1], चित्र आदि के लिए प्रसिद्ध रही और हिन्दी भाषा को कोमल ऐश्वर्य देने का उन्हे श्रेय मिला। लाक्षणिकता के लिए निम्नलिखित उक्तियाँ देखी जा सकती हैं हाँला कि इनमे भी अभिव्यक्ति के सूक्ष्म अनुसंधान से अधिक शब्द-कौशल की मांसलता ही दिखाई पडेगी—

भाषा-विकास का सिंहावलोकन

लाक्षणिकता

गिरा हो जाती है सनयन,
नयन करते नीरव भाषण,

---

१. पंत जी ने सगीत का अभ्यास भी किया था और कुछेक गीतों का राग-लिपि-संकेत भी लिखा था।

श्रवण तक आ जाता है मन,
स्वयं मन करता बात श्रवण।[1]

——स्नेह (आ० क० पृ० ७)

चढ़ाता भी तो है गुण से,
डोर कर में है, मन आकाश ;
पटकता भी तो है. गुण से,
खींचने को चकई सा पास ।

——स्नेह (आ० क० पृ० ८)

छायाकालीन पंत के भाषा-शोकर्य के साधन रहे हैं अलंकार और संगीत। वैसे उन्होंने सादी इकहरी भाषा का प्रयोग भी किया है और

सहज सादी भाषा,

तत्समता से अलग अपनी भाषा को लोक-प्राण बनाने की चेष्टा भी की है। और, सादगी में पंतजी की 'शब्द-लालित्यवाली भाषा' खुलती भी है

धूम-धुँआरे, काजर कारे,
हम ही बिकरारे बादर,
मदन-राज के वीर बहादर,
पावस के उड़ते फणिधर;

——बादल (आ० क० पृ० २८)

अधिक अरुण है आज सकाल——
चहक उठे जग-जग खग-बाल ;
चाहो तो सुन लो जी खोल
कुछ भी आज न लूंगी मोल।

——गु० पृ० ७६

१. तुलना कीजिए——गिरा अनयन नयन बिनु बानी।

——तुलसी

कृपा-कान मधि नैन ज्यौं त्यो पुकार मधि मौन।

——आनन्दघन

प्रत्यक्षतः पंत की उक्ति मौलिक नहीं है।

पर जैसा कहा गया ये छायावादी पंत की भाषा के अपवाद-स्थल हैं। छायायुगीन पंत की भाषा प्रायः विशेष रूप में अलंकृत रही है।[1] वह पार्वतीय कवि की नागरिक भाषा है—पौर्वात्य और पाश्चात्य प्रसाधनालंकारों से विन्यस्त। हाँ, प्रगति-काल में एक प्रतिक्रिया हुई, छायावाद की अलंकृत वाणी के प्रति।[1] यह प्रतिक्रिया 'पल्लव'—'गुंजन'[2] के बाद की रचनाओं में प्रत्यक्ष हुई।[3] यहाँ पहुँचकर रूप-चित्र

१. छायावाद इसलिए नहीं रहा कि उसके पास....नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था।

—पंत (पर्यालोचन आ० क० पृ० १७)

२. गुंजन के भाषा-संगीत में एक सुघरता, मधुरता और श्लक्षणता आ गई है, जो पल्लव में नहीं मिलती। गुंजन के संगीत में एकता है, पल्लव के स्वरों में बहुलता। पल्लव की भाषा दृश्यजगत के रूप-रंग से मांसल और पल्लवित है। गुंजन की भाषा भाव और कल्पना के सूक्ष्म सौंदर्य से गुंजित।

—पंत (पर्यालोचन, आ० क० पृ० १२)

३. 'पल्लव' से 'गुंजन' तक मेरी भाषा में एक प्रकार के अलंकार रहे हैं, और वे अलंकार भाषा-संगीत को प्रेरणा देनेवाले तथा भाव सौंदर्य को पुष्ट करने वाले रहे हैं। बाद की रचनाओं में भाषा के अधिक गर्भित (एब्सट्रैक्ट) हो जाने के कारण मेरी अलंकारिता अभिव्यक्तिजनित हो गई है।

'नयन नीलिमा के लघु नभ में किस नव सुषमा का संसार
विरल इन्द्रधनुषी बादल सा बदल रहा है रूप अपार?'

की अलंकृत भाषा जिस प्रकार 'स्वप्न' का रूप-चित्र सामने रखती है उसी प्रकार गीत-गद्य 'युगवाणी' की 'युग उपकरण,' 'नव संस्कृति' आदि रचनाएँ मनोरम विचार-चित्र उपस्थित करती हैं।

—पंत (पर्यालोचन,) आ० क० पृ० १५–१६

में और भाषा-संगीत विचार-संगीत में परिणत होने लगे हैं। तभी उसने अपनी वाणी को संबोधित करके कहा था——

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार

इस कथन से कवि का यही अभिप्राय था कि 'संक्रांति-युग की वाणी के विचार ही उसके अलंकार हैं।'१ पर तभी उसे यह भय भी हुआ था कि 'इस ह्रास और विश्लेषण युग के स्वल्पप्राण लेखक की सृजनशील कल्पना अधिकतर जीवन के नवीन मानों की खोज ही में व्यय हो जाती है, उसका कलाकार स्वभावतः पीछे पड़ जाता है।२ और वस्तुतः पंत का व्यक्तित्व इन रचनाओं में नहीं है। प्रगति-काल के बाद उनके काव्य का स्वर्ण-काल आता है और भाषा एक बार फिर प्रगतिकाल की खादी साड़ी उतार कर रेशमी परिधान ग्रहण कर लेती है।

---

१. वही, पृ० १७.
२. वही, पृ० १९.

कला

व्यवहार में कला कलाकार की एक सृष्टि है जो उसकी दृष्टि में वस्तु-जगत् से श्रेष्ठ है । स्वभावतः कलाकार कल्पक होता है । कल्पना उसकी प्रतिभा का वाहन है जो उसे सात से अनन्त, मर्त्य से 'रसोवैस' के लोक तक ले जाता है । कल्पना उसके मनोलोक की दीप्ति है जिसके प्रकाश में वह सत्य का आकलन करता है । कल्पना उसकी मौलिकता है जो ब्रह्म और विश्वामित्र की सृष्टियों से भव्यतर संसार का निर्माण करती है---एक ऐसे लोक की, जिसका सत्य, विज्ञान के सत्य से भी बृहत्तर होता है क्योंकि वहाँ काल के वाद का प्रतिवाद नहीं है; जिसका शिव शिवशम्भू से भी महत्तर है क्योंकि वह विरूपाक्ष नहीं है और जिसका सौन्दर्य रतिरानी से भी मोहक है क्योंकि उसकी दहली पर पञ्चशर के प्रहरी नहीं हैं । कल्पना के अभाव में वह परकटे पंछी की भाँति मालिक के दानों पर पलनेवाला---जूठन की जूठन का अधिकारी बन जाता है---पथभ्रष्ट, अभिशप्त, गन्धर्व-लोक से छूटा हुआ किन्नर । कल्पना कला का पाञ्चजन्य है जो वस्तु-स्थिति के शृंग पर उसकी विजय का उद्घोष करता है । मैथ्यू आर्नल्ड के शब्दों में कल्पना ही कविता का सर्वस्व है; कल्पना को छोड़कर जो कुछ है वह भ्रममात्र है ।

कला एक सृष्टि

पर महज कल्पना का कोई अर्थ नहीं। करतार की सापेक्ष सृष्टि की कल्पना भी निरपेक्ष नहीं होती । और, मनीषी-स्वयंभू की कल्पना तो निरपेक्ष ही नहीं, निरुद्देश्य भी नहीं होती । निष्प्रयोजन वह नहीं बोलता। वैसे कल्पना तो पागल भी करता है और उसके बिगड़े दिमाग की कल्पनाओं में भी उसके लिए खुशियाँ होती हैं । पर उसकी कल्पना भ्रांति है---निराधार और कोरी वैयक्तिक । कलाकार की

कला में कल्पना और अनुभूति

कल्पना भ्रांति नहीं, प्रज्ञा है । वह माया नहीं, योगमाया है । 'विज्ञान में जो बुद्धि है, दर्शन में जो दृष्टि है, वही कविता में कल्पना है ।' शेक्सपियर ने पागल, प्रेमी और कवि को एक ही कोटि में बैठा दिया था । पर भ्रांत की कल्पना निराधार होती है । वह अमर-बेलि की तरह शून्य में उगती है और जीवन तक आते-आते सूख जाती है । कल्पक की कल्पना उद्भिज की भाँति धरती में उगती है और ऊपर के आलोक एवं वायु में फैलती है । मनुष्य के भीतर परम्परा से प्राप्त असंख्य संस्कार उपनिविष्ट होते हैं जो उसकी मनोदशाओं पर अज्ञात रूप से शासन करते रहते हैं, उसके मनोवेगों का नियन्त्रण करते हैं और उसकी भावनाओं-कल्पनाओं को एक विशेष दिशा की ओर प्रेरित करते हैं । मनोविज्ञान के आचार्य फ्रायड ने शायद इसे ही उपचेतन का राज्य कहा है । हमारा अभाव उपचेतन में अपना अभिप्रेत-अभीप्सित माँगता है । उपचेतन कल्पना के पास जाता है । कल्पना कला को बुलाती है । कला अशोक की छाया तले खड़ी होकर पिपासुओं, मुमुक्षुओं को उपकृत करती है । कला लोप की पूर्ति है । इसलिए जब अरस्तू ने कला को अनुकरण कहा तो मीमांसकों ने उसका अर्थ अनुकृति लगाया ।

कवि को पूर्वोत्तर क्षितिज-प्रदेश का अधिवासी कहा गया है । उसे पूर्ववर्ती कवियों का फल और उत्तरवर्ती कवियों का फूल-स्वरूप कहा गया है । वह स्रष्टाओं की सृष्टि और सृष्टियों का स्रष्टा है । काल उसकी कला के स्वरूप का निर्धारण करता है और उसकी कला-सृष्टि से विकीर्ण होनेवाले आलोक में युग नयी राह देखता है । धरती का पानी आकाश में बादल बनकर छाता है और फिर बरस पड़ता है धरती को उर्वर करने के लिए । इसलिए उसकी कल्पना निराधार तो होती ही नहीं, सर्वथा नवीन भी नहीं होती । इलियट ने कोरी नवीनता की बुराई में जो तर्क उपस्थित किये हैं उनमें पर्याप्त बल है । कला में मौलिकता का अर्थ सर्वथा नवीनता नहीं, विकास है । फिर

विराट् की अवतारणा करना कठिन नहीं उसे ाणवान् बनाना दुष्कर है। प्राण-प्रतिष्ठा के बिना देवता और पत्थर में क्या अन्तर है ? और वह अनुभूति ही है जो कल्पना को प्राणवती बनाती है। यह अनुभूति ही है जो कल्पना को सत्य का परिधान देती है। यह हृदय का 'आरजरस' है जो कल्पना को अमरता का घूट पिलाता है।

कला और परम्परा

यह कल्पना अपने आप में पूरी भी नही होती। वास्तुकलाविद भवन-निर्माण के पूर्व भवन की रूप-रेखा अपनी कल्पना के द्वारा प्रस्तुत करता है, पर निर्माण तो उसे प्राप्त उपादानो से ही—ईंट, चूने, लोहे, लकड़ी आदि से ही—करना पडता है। जिस इमारत मे परीक्षित सामग्रियो का उपयोग नही होता उसमे लोगों की ृढ निष्ठा नही होती, उसके ठहराव में विश्वास नही होता। कला भी एक सृष्टि है। कालगत अभाव उसकी रचना की प्रेरणा है। कल्पना उसकी रूपाकृति गढती है, अनुभूति नीव डालती है और परम्परा उसे निर्माण के उपादान देती है। ससार के सर्वश्रेष्ठ ग्रथों, चित्रों एव मूर्तियो मे अतीत की सामग्रियों का सर्वाधिक उपयोग हुआ है।

कला का स्वरूप

अवतार कला का अपूर्व उदाहरण है। अवतार के रूप-सौंदर्य की कल्पना की कोई इयत्ता है ? अवतार के सत्य से बडा सत्य भी क्या होगा ? फिर अवतार निष्प्रोजन नही होता। उसका उद्देश्य 'स्व' के कलन के साथ मंगल का विधान है।

पंत जी की सौंदर्य-दर्शन कला

पत जी को कविता करने की आदि प्रेरणा प्रकृति से मिली जिसका श्रेय उसकी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश और कालिदास के अमर प्रकृति-काव्य 'मेघदूत' को है। तब प्रकृति के आकर्षण ने उनके भीतर, 'एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर उनकी चेतना को तन्मय' कर दिया था[1] और अपने प्रति एक

---

१. (पर्यालोचन 'आधुनिक कवि' पृ० १-२)

नीरव संमोहन का आश्चर्य उत्पन्न करके उन्हे सौदर्य-सृष्टि की प्रेरणा दी थी। फिर पंत जी ने काव्य की स्वरसाधना एक ऐसे रोमांटिक प्रभाव में की जब सौदर्यभावना सौदर्योपासना बन रही थी। अतः पंत जी की कला आरम्भ से ही 'सौंदर्य-दर्शन-कला' रही है। उनके काव्य के दो मुख्य आलम्बन है—प्रकृति और नारी। उनके कलाकार के उपचेतन ने काव्य के इन दो आलम्बनों मे अपनी सौंदर्य-बुभुक्षा की परितृप्ति ढूढी है। प्रकृति के सुन्दर पक्ष ने ही उन्हे अधिक लुभाया है, 'वह्नि, वाढ, उल्का, झझा' के उग्र-भीषण रूपो ने नही। पंत जी की नारी भी रवीन्द्रनाथ की प्रेम-साधना करनेवाली कुरूपा अथवा 'नारीर उक्ति' वाली शीर्णा नही, 'अध-खिले अंगो का मधुमास' लुटानेवाली, अकलुष दीपशिखा-सी बलनेवाली 'निखिल-छवि' है। पंत जी के काव्य के समग्र उपादान सुन्दर हैं—उनमे वर्णसौदर्य, शब्द-लालित्य, चित्र-झंकार, और छद-अलंकार-सौष्ठव का मोह है। और, पंत जी की इस 'सौंदर्य-दर्शन-कला' मे सूक्ष्म-दर्शिता और सक्रिय चेतना है जिसे हम वर्णो के उच्चारण-सौंदर्य, शब्दो के संस्थापन, चित्रों की वर्णविपुलता, संगीत के अन्तःराग और छन्दों की यति-गति में देखते हैं।

वह नभ के स्नेह-श्रवण मे
विशि की गोपन-सम्भाषण,
नयनों के मौन-मिलन में
प्राणों की मधुर समर्पण।

—चांदनी (आ० क० पृ० ६०)

इन पंक्तियों का उच्चारण-सौदर्य अथवा सगीत 'ण' वर्ण पर टिका है और खूब टिका है। इसी प्रकार—

धूम-धुंआरे, काजर कारे,
हम ही विकरारे बादर,

मदन-राज के वीर बहादर,
पावस के उड़ते फणिधर ;
——बादल (आ० क० पृ० २८)

श्राज रहन तो यह गृह-काज,
प्राण रहने दो यह गृह-काज !
——गु० पृ० ५१

—यहाँ प्रथम उद्धरण में जो अपूर्व चित्र-झकार है उसका राज 'धुआँरे', 'कारे', 'बादर', 'फणिधर', जेसे शब्दो मे छिपा हे जिनमे रग और ध्वनि एक आसग मे एकाकार हो गए हे । दूसरे उद्धरण के मधुर वातावरण के निर्दोष आकर्षण का श्रेय कवि के 'काज' और 'प्राण' जैसे शब्दो के प्रयोग को है। यदि इनकी जगह इनके पर्यायवाची रूप लिख दिये जाएं तो नवदम्पत्ति की सारी भावप्रवणता नष्ट हो जाएगी। 'काज' मे शब्द-माधुरी ही नही, अर्थ-माधुरी भी है । यह स्थिति पंत जी की श्रेष्ठ कविताओ अथवा काव्यखंडो में ही है। पत जी की दृष्टि सौंदर्य-दृष्टि है । उनके लिए सृष्टि की हर चोज सुन्दर है ——

-सुन्दर मृदु-मृदु रज का तन,
चिर सुन्दर सुख-दुख का मन
....
चिर सुन्दर जन्म-मरण रे
....
सुन्दर पुराण-नूतन रे
....
सुन्दर से नित सुन्दरतर,
सुन्दरतर से सुन्दरतम
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर सुन्दर जग जीवन

यही सौंदर्य-दृष्टि पंत जी की प्रसन्नता, आशा और विश्व-प्रेम का आधार है। वैसे तो शेली की काव्य-प्रेरणा भी सौंदर्य था, पर शेली और पंत में अंतर है। शेली की सौंदर्यलिप्सा अतृप्त है, पंत की, कीट्स की तरह, तृप्त। इसलिए पंत की कला पर मादकता के साथ तृप्ति की शांति भी छायी रहती है और यही शांति उनके काव्य की वासना का परिमार्जितकर उसे स्वाभाविक शृंगार का मोहक रूप दे देती है।

पंत जी की कला और कल्पना

प्रकृति के साहचर्य ने पंत जी को सौंदर्यजीवी के साथ स्वप्नऔर कल्पजीवी भी बनाया है। पंत जी कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य और ईश्वरीय प्रतिमा का अंश मानते हैं। 'वीणा' से लेकर सद्य:प्रकाशित रचनाओं तक में वे अपनी कल्पना को ही वाणी देते रहे हैं। 'शेष सब विचार, भाव, शैली आदि उसकी पुष्टि के लिए गौण रूप से काम करते रहे हैं।'[१] कला कलाकार की एक सृष्टि है जो उसकी दृष्टि में वस्तुजगत् से श्रेष्ठ होती है। दूसरे शब्दों में कलाकार वस्तुजगत् में जो अभाव देखता है उसकी पूर्ति कला में करता है।

कला शेष की पूर्ति है, पंतजी के लिए भी और पंत जी के इस 'शेष' की पूर्ति कल्पना में होती है। पंतजी के 'मानव', नारी, और प्रकृति सभी कल्पना में ही सम्पूर्णता पाते हैं। पंत जी का मानव उनके मन का मानव है—उनकी चरम आकांक्षाओं का प्रतीक—

तुम मेरे मन के मानव,
मेरे गानों के गाने ;

——गु० पृ० ३५

पंत जी के लिए मनुष्य की दो आँखें सौंदर्य की दो सम्पूर्ण दुनियाँ हैं, मनुष्य के स्वर में स्वर्ग की रागिनी है। उसके यौवन में

---

१. पंत, 'आधुनिक कवि' का पर्यालोचन, पृ० ३९।

अपार आह्लाद, अपार सौंदर्य है, उसके प्रेम में स्वर्ग की चरम मधु-रिमा है—

आँखें हैं दो लावण्य-लोक,
स्वर में निसर्ग-संगीत-सार !
....
आह्लाद अखिल, सौंदर्य अखिल,
आः प्रथम-प्रेम का मधुर स्वर्ग !

—मानव (आ० क० पृ० ६६)

पंत जी की नारी एक सौंदर्य-कल्पना है । वह वीणा की झंकार-सी शब्दातीत है । उसकी छबि असीम है । उसके स्पर्श में गंगा और वाणी में त्रिवेणी लहराती है । उसके भावों में ऊषा और आचरण में चाँदनी है । स्वप्न-लोक की राजकुमारी होने के कारण वह परी-सी अपार रूप धरती है—

एक वीणा की मृदु झंकार !
कहाँ है सुन्दरता का पार !
....
तुम्हारे छूने में था प्राण,
सङ्ग में पावन गंगा-स्नान ;
तुम्हारी वाणी में कल्याणि !
त्रिवेणी की लहरों का गान !
....
उषा का था उर में आवास,
....
चाँदनी का स्वभाव में भास

—'आँसू' की बालिका (आ० क० पृ० ११)

हृदय के पलकों में गति-हीन
स्वप्न-संसृति-सी सुखमाकार;
बाल-भावुकता बीच नवीन
परी-सी धरती रूप अपार ;

——गु० पृ० ४०

कवि की 'मृगेक्षिणि !' कल्पना का पर्याय है—'कल्पना तुम से एकाकार, कल्पना में तुम आठों याम'। प्रकृति भी पंत जी के लिए दृष्टि का विषय न होकर, अनुभूति और कल्पना का विषय है। प्रकृति की शोभा निहारते ही उनके लोचन मुग्ध होकर बन्द हो जाते हैं और मुँदे नयनों के पलकों पर प्राकृतिक सुषमा स्वप्न के चल-चित्र खींचने लगती है।१ इस प्रकार पंत जी की कला प्रत्येक वस्तु को कल्पना के रेशमी धागे में बाँधकर आत्मा तक खींच लाती है, यह उसका एक गुण है। इसी के कारण पंतजी का नारी-चित्र मोहक हुआ है और संयोग-गीत सफल।२

हिन्दी में पंतजी की कल्पना-शक्ति विरल है। उनकी कल्पना में सृष्टि रचने की अजेय क्षमता है। उनमें बड़ी ऊँची उड़ान है——शेली जैसी। शेली की तरह पंत जी ने भी अपने वर्ण्य विषयों——'बादल', 'चाँदनी', 'अप्सरा', 'एक तारा' आदि को विविध भावों और कल्पनाओं से अलंकृतकर सृष्टि-प्रतिभा का परिचय दिया है। 'बादल' शीर्षक कविता तो प्रत्येक चरण में एक नया कल्पना-चित्र उपस्थित करती है। उनकी प्रेयसी की 'नील-नलिन-सी' आँख भी तो असाधारण है, जाने किन-किन तत्त्वों से उनका निर्माण हुआ है——

मुग्ध स्वर्ण-किरणों ने प्रात
प्रथम खिलाए वे जल जात ;

---

१. देखिए 'प्रकृति-चित्रण' शीर्षक संदर्भ
२. देखिए 'प्रणय-गीत' शीर्षक संदर्भ

नील व्योम ने ढल अज्ञात ;
उन्हें नीलिमा दी नवजात ;
जीवन की सरसी उस प्रात
लहरा उठी चूम मधु-वात,
आकुल लहरों ने तत्काल
उनमें चंचलता दी ढाल ;

——गु० पृ० ८७

पंत जी की कल्पना में ऐसी ही सक्रियता है। उनके पास कल्पना का अक्षय वैभव है। उनकी कल्पना के वैभव, उदात्तता और नवनवोन्मेषी प्रतिभा को उनके शब्द-चित्रों की विविधता और अलंकारों की विपुलता में सरलता से देखा जा सकता है।

पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।

——एक तारा (आ० क० पृ० ५३)

ऐसी उत्प्रेक्षा और ऐसा चित्र उदात्त कल्पना के बल पर ही खड़ा किया जा सकता है। कल्पना ही पंत जी के शब्द-चित्रों और अलंकारों——नहीं, नहीं, उनकी सम्पूर्ण कविता के 'आकर्षण का रहस्य' है। नौका-'विहार' आदि कुछेक कविताएँ ही ऐसी हैं जिनका आकर्षण कल्पना से नहीं बल्कि वर्णन में आता है।

स्वप्निल कला

पंत जी ने अपनी कविता में 'स्वप्न' शब्द और उसके विशेषण 'स्वप्निल' शब्द का प्रयोग बार-बार किया है।

विचर रहे थे स्वप्न-अवनि में
तम ने था मण्डप ताना ;

——प्रथम-रश्मि (आ० क० पृ० १३)

विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
——मौन-निमंत्रण (आ० क० पृ० २०)

जग के अस्फुट स्वप्नों का
वह हार गूंथती प्रतिपल,
——चाँदनी (आ० क० पृ० ६०)

वह स्वप्निल शयन-मुकुल-सी
——चाँदनी (आ० क० पृ० ६०)

स्वप्न-सा, विस्मय-सा अम्लान,
प्रिय, प्राणों की प्राण !
——गु० पृ० ८३

स्वप्न आते उड़-उड़ कर पास ।
इन्हीं में छिपा कहीं अनजान
मिला कवि को निज गान !
——गु० पृ० ७४

निम्नलिखित पंक्तियाँ विशेष द्रष्टव्य है——

विचर रहे थे स्वप्न-अवनि में

और

न जाने मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया-जग मे मौन !
——मौन-निमंत्रण (आ० क० पृ० २२)

वस्तुतः पंत जी एक छाया की दुनियाँ (छाया-जग) अथवा सपने की धरती (स्वप्न-अवनि) मे काव्यश्री खोजते रहे हैं । 'स्वप्न के अवगुण्ठन' से जब हम पंत जी के काव्य को देखते है तब उनकी एक विशेष मनोदशा का परिचय मिलता है । स्वप्न कल्पना का बोधक है । अतः पंत जी स्वप्न अर्थात् कल्पना के चिर प्रेमी हैं ।

उनका आदर्शवादी मन स्वप्न अर्थात् कल्पना-लोक में सुख-शांति का अनुभव करता है । पंत जी की कला स्वप्निल है ।

'स्वप्न' शब्द उनकी कला के अन्य पक्षों का भी उद्घाटन करता है । 'स्वप्न' का प्रयोग कल्पना के अतिरिक्त सुन्दरता, कोमलता, क्षणिकता इत्यादि के अर्थों में भी होता है ।

पंत जी की स्वप्नदर्शिनी कला कोमल है, विराट् नहीं। कला का विराट् बृहत् रूप प्रसाद और निराला में विकसित हुआ है । पंत जी की कला नारी कला है---कोमलांगी, कोकिलकंठी और इन्द्रधनुषी परिधान और प्रसाधनवाली । उनके वर्ण, शब्द, संगीत, चित्र आदि सभी कोमल हैं । उनके पुल्लिंग शब्दों के स्त्रीलिंग प्रयोग में भी कोमलता और नारीत्व का मोह निर्गत होता है । उनके विचारों में भी एक प्रकार का सौकुमार्य मिलेगा । उन्होंने 'कोमल मनुज कलेवर' की कल्पना की है और 'अविराम प्रेम की बाँहों में' मुक्ति पाई है । उन्होंने प्रकृति के कोमल रूप को ग्रहण किया है---प्रकृति की कल्पना नारी-रूप में की है और निसर्ग से एकाकार होते स्वयं अपने को भी नारी मान लिया है ।[१] उनके काव्य में विराट् का संघर्ष नहीं, कोमल का समन्वय है क्योंकि उनकी कल्पना ने विभिन्न काल-पुरुषों के विचार-सूत्रों का आशय ग्रहणकर एक समन्वयवादी आदर्शवाद को अवतरित किया है।[२] इसके कारण उनके काव्य में कहीं-कहीं विषमवादी सुर भी सुनाई पड़ता है[३], पर इसे हम उनकी प्रगतिशीलता का प्रमाण भी मान सकते हैं ।

कोमल नारी कला

---

१. देखिए 'प्रकृति-चित्रण' शीर्षक संदर्भ

२. देखिए 'जीवन-दर्शन' शीर्षक संदर्भ

३. देखिए वही

च

'स्वप्न' शब्द की प्रयोग-बहुलता से पंत जी की कला की एक और विशेषता प्रगट होती है। पंतजी का काव्य 'चित्र-वाक्य काव्य' का उदाहरण है। उनके लिए प्रत्येक शब्द एक

स्वप्न-चित्र चित्र है और उनकी मूर्त्तिविधायिनी कल्पना प्रत्येक भाव को आकार देती है, इस पर हम विचार कर चुके हैं।[१] यहाँ यह कहना अभीष्ट है कि पंत जी के चित्र मुख्यतः स्वप्न-चित्र हैं। स्वप्न के चित्र क्षणिक होते हैं। सपने में चित्र बनते और मिटते जाते हैं—चित्र पर चित्र खड़ा होता जाता है। पंतजी के काव्य में भी चित्रों का हुजूम उमड़ा रहता है—एक को ठेलकर दूसरा चित्र सामने आता जाता है, चल-चित्रों की रील की तरह। मानो, कवि स्वप्न देख रहा है। उसके स्वप्नाकाश में जैसे बादल की टुकड़ियाँ चित्र बनकर आ रही हैं और हवा के झोंकों में उड़ती जा रही हैं। इधर उसकी लेखनी उन सभी चित्रों को शब्दों में बाँधने के लिये यत्न कर रही है। इसलिए पंत जी में चित्रों की समग्रता की अपेक्षा खण्डता ही दर्शनीय है। वैसे कुछ कविताओं में वसन्त और भाव का एक हद तक एकतान विकास हुआ है और 'चाँदनी' ('जग के दुःख-दैन्य-शयन'····वाली) आदि रचनाओं में बाह्य और अन्तस की अखंड गतिशीलता अच्छी बन पड़ी है, पर सामूहिक रूप में पंत जी को शब्द और खण्डचित्रों में पूर्णचित्रों की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है। पंत जी में कल्पना की वह एकतानता नहीं है, जो प्रसाद और निराला में है। हाँ शब्दचित्र और खण्डचित्र का क्षेत्र पंतजी का है और उसपर उनका अधिकार है।

प्रथम यौवन मेरा मधुमास,
मुग्ध-उर मधुकर, तुम मधु, प्राण !
शयन लोचन, सुधि स्वप्न-विलास,
मधुर-तंद्रा प्रिय-ध्यान ;

१. देखिए 'भाषा-शैली' शीर्षक संदर्भ

शून्य जीवन निसङ्ग आकाश,
इन्दु-मुख इन्दु समान ;
हृदय सरसी, छवि पद्म-विकास,
स्पृहाएँ, ऊर्मिल-गान !
——गु० पृ० ६४

यहाँ चार चित्र है, चार रूपक हैं—एक मधुमास का, दूसरा स्वप्न का, तीसरा आकाश का और चौथा सरसी का। सर्वप्रथम कवि यौवन के मधुमास मे प्रिया का मधु पाकर मुग्ध हो जाता है। तब उसकी आँखे बन्द हो जाती है और प्रियतमा की सुखद स्मृतियाँ स्वप्न बनकर छाने लगती है। स्वप्न मे उसकी कल्पना जाग्रत हो उठती है और वह आकाश मे जा पहुँचता है जहाँ चन्द्रमुखी इन्दु बनकर उसके शून्य जीवन को प्रकाशित करती है। अंत मे उस प्रकाश को पाकर वह फिर हृदय-सरोवर मे उतर आता है जहाँ उसकी प्रेमिका की छवि पद्म को विकसित कर रही है।

किस तरह एक चित्र क्षणभर प्रकाशित होकर मिट रहा है और उसकी जगह दूसरा प्रतिबिम्बित हो रहा है इसे बताने की विशेष आवश्यकता नही। ये चित्र स्वप्न-चित्र है। चारो चित्र, चारो रूपक अपनी सीमा मे बहुत सुन्दर और सुगठित हैं। उनमे एक प्रकार की समग्रता और भाव-विकास भी है। पर इस समग्रता और विकास तक पहुँचने के लिए पाठक को कसरत करनी पडती है—पहले तो वह कमल को देखता है पर तुरत ही उसे आँखे मूद लेनी पड़ती है, फिर वह झट से आकाश मे जा पहुचता है पर दूसरे ही क्षण उसे सरोवर मे कूदना पडता है। हाँ, स्वप्न की स्थिति मे पहुँचने पर इस परिस्थिति का समाधान हो जाता है।

पंत जी के चित्रो की असम्बद्धता को ध्यान मे रखकर निराला ने उनकी 'चाँदनी' ('नीले नभ के शतदल····' वाली) शीर्षक कविता

की बड़ी कटु आलोचना की है और पंत जी की कला से अपनी कला को श्रेष्ठ बतलाया है। विषय के स्पष्टीकरण के लिए हम उसे समग्रता में उद्धृत करते हैं।

"कविता काफी लम्बी है। थोड़े उद्धरण से इसके ढंग का विवेचन करूँगा। इस कविता में यह ढंग सर्वत्र है। पाठक पुस्तक में पूरी कविता पढ़कर मिला लेंगे।

चाँदनी

'नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद-हासिनी,
मृदु-करतल पर शशि-मुख धर, नीरव, अनिमिष, एकाकिनि !
वह सोई सरित-पुलिन पर साँसों में स्तब्ध समीरण,
केवल लघु-लघु लहरों पर मिलता मृदु-मृदु उर-स्पन्दन।
अपनी छाया में छिपकर वह खड़ी शिखर पर सुन्दर,
है नाच रही शत-प्रति[1] छवि सागर की लहर-लहर पर।
वह शशि-किरणों से उतरी चुपके मेरे आँगन पर,
उर की आभा में खोई अपनी ही छवि से सुन्दर।
वह है, वह नहीं, अनिर्वच, जग उसमें, वह जग में लय,
साकार चेतना-सी वह, जिसमें अचेत जीवाशय।'[2]

पहले बन्द का मतलब—'नीले आकाश के शत-दल (कमल) पर शुभ्र या शरद हँसी हँसनेवाली (शरद चाँदनी), अपनी कोमल हथेली पर शशिमुख रखकर, चुपचाप, एकटक देखती हुई अकेली बैठती है।'

बीच में दो बन्द छोड़कर चौथे का मैंने उद्धरण दिया है। वे दोनों बन्द पहलेवाले की ही तारीफ में आये हैं। चौथा बन्द यह है—

'वह नदी के तट पर सोई हुई है। साँसों में हवा स्तब्ध है (रुकी

---

१. 'गुंजन' के नये संस्करण में 'शत-शत' पाठ है। 'आधुनिक कवि' में भी 'शत-शत' पाठ है। (लेखक)

२. 'आधुनिक कवि' पृ० ५९–६१।

है जैसे), केवल लघु-लघु लहरों पर उसके हृदय का मृदु-मृदु स्पन्दन मिलता है ।'

पहले देखिए कि पहले बन्द में या पहले भाव से दूसरे भाव का सम्बन्ध क्या है। कुछ न मिलेगा । वहाँ बैठी है, यहाँ सोई है । पहले में एक आलंकारिक वर्णन है, दूसरे में एक है । उद्धृत तीसरे बन्द में देखिए (दूसरा और तीसरा सिलसिलेवार है), वह सुन्दर, अपनी छाया में छिपकर, शिखर पर खड़ी है--कैसा सम्बन्ध परस्पर मिलता जा रहा है ! उद्धृत चौथे में, वह कवि के आँगन पर शशि-किरणों से उतरी हुई है । अन्त में वह है और वह है भी नही, याने उपदेशात्मक दर्शन-शास्त्र । पहले कला का विवेचन लिख चुका हूँ ।१ उसके अनुसार यह कविता नही आती । फूल का कलावाला रूप मिलाइए । तने से डाले, भिन्न होकर भी जुड़ी है, इसी तरह डाल या पत्ते, पत्तों से फूल, फूलों से खुशबू । खुशबू अपने तत्त्व में सारे पेड को ढके हुए है। तने का

---

१. वह यह कि 'कला केवल वर्ण, शब्द, छन्द, अनुप्रास, रस, अलंकार या ध्वनि की सुन्दरता नहीं, किन्तु इन सभी से संबद्ध सौंदर्य की पूर्ण सीमा है, पूरे अंगों की सत्रह साल की सुन्दरी की आँखों की पहचान की तरह---देह की क्षीणता-पीनता में तरंग-सी उतरती-चढ़ती हुई, भिन्न वर्णों की बनी वाणी में खुलकर क्रमशः मन्द-मधुरतर होकर लीन होती हुई---जैसे केवल बीज से पुष्प की पूरी कला विकसित नही होती, न अंकुर से, न डाल से, न पौधे से; जड़ से लेकर तना, डाल, पल्लव, और फूल के रंग-रेणु-गंध तक फूल की पूरी कला के लिए जरूरी है, वैसे ही काव्य की कला के लिए काव्य के सभी लक्षण; और जिस तरह फूलों की सुगन्ध पेड़ के दृश्य समस्त भाग को ढके हुए अपने सौंदर्यतत्त्व के भीतर रखती है---पेड़ की काष्ठ निष्ठुरता दिखती हुई भी छिपी रहती है, उसी तरह काव्य कला आवश्यक अशोभन वर्ण-सम्प्रदाय को अपनी मनोज्ञता के भीतर डाले रहती है ।'

रूखापन, डालों की थोडी-थोडी हरियाली, पत्रों की पूरी, फूलों का एक या अनेक रंगों—केशर, पराग आदि से विकसित रूप, सुगन्ध सारे पेड़ के उच्चतम विकास को स्पष्ट करती हुई, उसीमे उसे ढके हुए—यह कला है। यह बात पंतजी की इस कविता मे नहीं। हर बन्द अपना राग अलग अलाप रहा है। इनकी अधिकांश रचनाएँ ऐसी ही है। सब जगह एक-एक उपमा, रूपक या उत्प्रेक्षा काव्य को कला मे परिगणित कराने के लिए है, और इसे ही आलोचकों ने अपूर्व कला समझ लिया है। उनकी दो-एक रचनाएं सम्बद्ध है पर वे भी उत्तम श्रेणी की नही बन सकी, उनमे विषय की विशदता वैसी नही जैसी अलकारो की चमक-दमक है। मै लिख चुका हूं, केवल रस, अलंकार या ध्वनि कला नही। अगर है तो कला के खण्डार्थ मे है, पूर्णार्थ मे नही। खण्डार्थ मे पंतजी की कला बहुत ही बन पड़ी है। उनके प्रशंसकों की दृष्टि इन्ही खण्डरूपों मे बंध गई है। वह विस्तृत होकर बृहत् विवेचन मे नही जा सकी। वे प्रशंसक इस प्रकार की कला के देखने के आदी भी न थे। पहले से छन्द, दोहे, चौपाइयों की जो परिपाटी थी, वह इस कला के अनुरूप न थी।

पन्त के उद्धृत बन्दों के सम्बद्ध भाव को छोडकर एक-एक की आलोचना करके देखा गया, उनका रूप कहाँ तक ठीक है। इससे उनकी सौंदर्य-दर्शन-कला का कुछ हद तक भेद मालूम होगा। पहले बन्द का मतलब है—'नीले आकाश-शतदल पर शरदहासिनी मृदु कर-तल पर शशि-मुख धारणकर, नीरव, अनिमिष, एकाकिनी बैठी है।'—इसके लिए पहले तो यहाँ के साहित्यिक एतराज करेंगे कि रात को शतदल-कमल का ऐसा उल्लेख शास्त्र-विरुद्ध है, दूसरे, अच्छी तरह देखने पर यह शरदहासिनी का नीले नभ के शतदल पर बैठना नही जचता, कोई कल्पना ऐसी भले ही करे और इसे सच भी माने, पर अस्लियत कुछ और है, मालूम होता है—शशि-मुखवाली शरदहासिनी

के सर पर नीला शतदल उलट दिया गया है, क्योंकि आकाश की नीलिमा चाँद और चाँदनी के ऊपर मालूम देती है, पाठक साहित्यिक किसी चाँदनी-रात में चाहे तो यह सत्य प्रत्यक्ष कर लें। इस तरह का एक भाव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का याद आ रहा है—

'हेरो गगनेर नील शतदल खानि मेलिल नीरव बाणी, अरुण पक्ष प्रसारि सकौतुके सोनार भ्रमर आसिल ताहार बुके कोथा होते नाहीं जानी !'

अर्थ—'देखो, आकाश के नीले शतदल ने अपनी नीरव भाषा फैला दी, अरुण पंख फैलाकर, सकौतुक, न जाने कहाँ से सोने का भौंरा उसके हृदय पर आ गया !'—

इस पद्य के अन्यान्य उच्चतर सम्बन्धों की चर्चा यहाँ न करूँगा। उतनी जगह नहीं। केवल प्रतिपाद्य विषय पर विचार करना है। यहाँ नभ का नील शतदल अपनी नीरव भाषा खोलता यानी खुलता है, प्रातःकाल, रात्रि के समय नहीं; पुनः, ऊपर दूसरा कोई चित्र न रहने के कारण आकाश केवल खुला हुआ शतदल मालूम देता है, इसके बाद सोने का भौंरा—सूर्य उसके हृदय पर कहीं से उड़कर आ जाता है। सूर्य भौंरे की तरह आकाश-शतदल के एक बगल बैठता है, फिर धीरे-धीरे बीच हृदय पर आ जाता है। इससे पंत जी की जैसी अस्वाभाविकता नहीं मालूम देती। कारण, आकाश का कमल पहले स्थित दिखलाया गया है।—केवल नील-नील मालूम देता है, फिर सूर्य भौंरे की तरह कहीं से उड़कर आ जाता है। पुनः सूर्य चन्द्र से बहुत ऊँचे भी है। उसका नभ-शतदल पर बैठना सार्थक मालूम देता है दिन का समय तो है ही।

पन्त जी के उद्धृत दूसरे बन्द का मतलब—'वह सरित-पुलिन (नदी के तट) पर सोई है। साँसों में स्तब्ध समीरण है। केवल लघु-लघु लहरों पर मृदु-मृदु उर-स्पन्दन मिलता है।' बिना अर्थ की खींच-तान किये 'सरित-पुलिन पर' का अर्थ है 'नदी के तट पर'। स्वभावतः

शंका होती है कि वह नदी के तट पर सोई है तो उसके 'शशि मुख' का अब क्या हाल है, वह तो आकाश पर ही है। पुनः, सोई तो वह नदी के तट पर है, पर उसकी हृदय की धड़कन है लहरों में!——यह पन्त जी की बिगड़ी कला। यह किसी लक्षणा या व्यञ्जना से सार्थक नहीं हो सकती। कहीं-कहीं उनके चित्र सुन्दर हैं। पर इस उद्धरण में सर्वत्र ऐसा ही तमाशा है।"[1]

निराला जी के इस कथन को हम परिमार्जन के साथ ही स्वीकार करेंगे। चाँदनी पहले बन्द में बैठी है और दूसरे में अलसायी है—'वह स्वप्न-जड़ित नत-चितवन'। अतः चौथे बन्द में उसका सो जाना अस्वाभाविक नहीं है। फिर चाँदनी कछार की रेत पर सोई है और धार रेत से मिली हुई है। अतः उसके हृदय की धड़कन का लहरों पर प्रतिबिम्बित होना भी सिद्ध किया जा सकता है। पर इतना सही है कि इस प्रकार की सिद्धि सहज सिद्धि नहीं, कष्टप्राय है। यह भी ठीक है कि पंत जी की कला खण्डता में जितनी निखरी है उतनी समग्रता में नहीं। अनेक कविताओं में कल्पना एकतान नहीं है। इस प्रकार की असबद्धता की ऊपर चर्चा हो चुकी है और कहा जा चुका है कि पंत जी के चित्र स्वप्न-चित्र हैं। स्वप्न के भीतर से देखने पर इस प्रकार की असम्बद्धता पर आश्चर्य नहीं होता।

कविता में कल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान है, पर कोरी कल्पना का नहीं। पंत जी की आरम्भिक रचनाओं में कल्पना जितनी सजग है उतनी अनुभूति नहीं, पर बाद की कृतियों में कल्पना और अनुभूति एकतान होने लगी है। यह उनकी कला के विकास का सूचक है। कल्पना और अनुभूति के संयोग के कारण ही प्रणय-गीतों की निर्मिति में पंत जी को इतनी सफलता मिली है। हिन्दी के शृंगारिक कवियों पर

अनुभूति

१. प्रबन्ध प्रतिमा (निराला), पृ० २९१–२९५।

अस्वाभाविकता का लाछन लगाया गया है। बात यह है कि जब वे विरह-वर्णन करने लगते है तब तो कल्पना के कगूरे पर चढ जाते है और जब सयोग-शृगार की अवतारणा करते है तब कल्पना और अनुभूति को झटककर अत्यत स्थूल और निम्न-चित्र उपस्थित कर देते है। अनुभूति उनका साथ नही देती। इस विशृखलता का अभाव पत जी को रीतिकालीन शृगारी कवियो से अलग एक उच्चतर भावजगत् मे प्रतिष्ठित करता है। उर्वर कल्पना और मार्मिक अनुभूति उनकी प्रेमवर्णना के सुपरिचित उपकरण है। इनके संयोग से जहाँ 'परिवर्त्तन' आदि कविताओ मे वियोग का सुन्दर विकास हुआ है वहाँ 'मधुवन', 'आज रहने दो यह गृह-काज', 'लाई हूँ फूलों का हास' आदि रचनाओ मे सयोग का।[१]

आरम्भ मे कला की तुलना अवतार से की गई थी। राम अवतारादर्श है। समर्थ आलोचक स्वर्गीय शुक्ल जी के अनुसार तुलसी के राम मे शील, शक्ति और सौदर्य है। तुलसी के राम की

सत्य, शिव, और सुन्दर

भांति कला मे भी ये तीनो तत्त्व है, पर यहाँ इनके नाम शिव, सत्य और सुन्दर है। पत जी मुख्यत सुन्दरम् के कवि है। वे स्वप्नदर्शी है, इसलिए आदर्शवादी है। उनमें शिवत्व है। वे कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानते है और सत्य के वास्तविक रूप से उसके आदर्श रूप को अधिक महत्त्व देते है।

पंतजी की कला मे शिव और सुन्दर की उपस्थिति है, इस सम्बन्ध मे मतभेद नही है। पर प्राय यह कहा जाता है कि पत जी की रचनाओ से सुन्दरम् और शिवम् से भी बडे लक्ष्य सत्यम् का बोध नही होता है और न उनमे वह अनुभूति की तीव्रता मिलती है जो सत्य की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है। पत जी ने इसका उत्तर

---

१. देखिए 'प्रणय-गीत' शीर्षक संदर्भ

इस प्रकार दिया है---'यह सच है कि व्यक्तिगत सुख-दुख के सत्य को, अपने मानसिक संघर्ष को मैंने अपनी रचनाओं में वाणी नही दी है, क्योंकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। मैंने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है। 'तप रे मधुर-मधुर मन', 'मैं सीख न पाया अबतक सुख से दुख को अपनाना' आदि अनेक रचनाएं मेरी इस · चि की द्योतक हैं। मुझे लगता है कि सत्य शिव मे स्वयं निहित है। जिस प्रकार फूल में रूप रंग है, फल मे जीवनोपयोगी रस; और फूल की परिणति फल मे सत्य के नियमो द्वारा होती है, उसी प्रकार सुन्दरम् की परिणति शिवम् में सत्य के द्वारा हो सकती है। यदि कोई वस्तु उपयोगी (शिव) है तो उसके आधारभूत कारण उस उपयोगिता से संबंध रखनेवाले सत्य में अवश्य होने चाहिए, नही तो वह उपयोगी नही हो सकती। इसी प्रकार अनुभूति की तीव्रता भी सापेक्ष है, और मेरी रचनाओं में उसका संबंध मेरे स्वभाव से है। सत्य के दोनों रूप है,---शराबी शराब पीता है यह सत्य है, उसे शराब नही पीना चाहिए, यह भी सत्य है। एक उसका वास्तविक (फैक्चुवल) रूप है, दूसरा परिणाम से सम्बन्ध रखनेवाला। मेरी रचनाओं में सत्य के दूसरे पक्ष के प्रति मोह मिलता है; वह मेरा संस्कार है, आत्मविकास (सब्लिमेशन) की ओर जाना। अनुभूति की तीव्रता का बोध बहिर्मुखी (एक्स्ट्रोवर्ट) स्वभाव अधिक करवा सकता है, मंगल का बोध अन्तर्मुखी (इट्रोवर्ट) क्योंकि दूसरा कारण रूप अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त न कर उसके फलस्वरूप कल्याणमयी अनुभूति को वाणी देता है। मेरे पल्लव काल की रचनाओं मे, तुलनात्मक दृष्टि से मानसिक संघर्ष और हार्दिकता मिलती है और बाद की रचनाओं में आत्मोत्कर्ष और सामाजिक अभ्युदय की इच्छा।१

---

१. आधुनिक कवि (पंत)---पृ० १२-१३.

'पल्लव' से 'गुंजन' की ओर आते हुए पंत जी सुन्दरम् से शिवम् के क्षेत्र में आते हुए दीखते हैं। अतः पूर्व रचनाओं से 'गुंजन' में शिवत्व ने अधिक प्राधान्य पाया है। 'गुंजन' और उसके बाद की रचनाओं की कला मांगलिक है और कला का मांगलिक रूप वरेण्य है। पर 'गुंजन' में पंत जी की भावधारा के आकस्मिक दिशा-परिवर्त्तन के कारण शिवम् और सुन्दरम् का एकांत समाहार प्रायः नहीं हो सका है। स्थान-स्थान पर कोरी दार्शनिकता और बौद्धिक विवेचन के कारण शुष्कता और एकरसता आ गई है। पंत जी की भावुक कोमल कला ज्ञानोपदेश के एक अप्रत्याशित भार का वहन करने में सर्वत्र सफल नहीं हुई है।

पंत में शिव-तत्त्व और कला

'नौका-विहार' पंत जी की एक अनूठी प्रकृति-गीतिका है और इसमें पंत जी की कला का एक नया विकास हुआ है क्योंकि इसमें कल्पना का सौंदर्य नहीं, यथार्थ चित्रण का सौंदर्य है। किन्तु अंत में जल-प्रवाह से एक दार्शनिक निष्कर्ष निकाल कर कि—

इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम।
शाश्वत नभ का नीला-विकास, शाश्वत शशि का यह रजत-हास,

—नौका-विहार (आ० क० पृ० ५८)

—उसके सहज सौंदर्य को बिगाड़ दिया गया है। कविता का सहज सुन्दर प्रवाह इस निष्कर्षपूर्ण उपसंहार के लिये तैयार न था। इसी प्रकार

झर गई कली, झर गई कली।
चल-सरित-पुलिन पर वह विकसी,
उर के सौरभ से सहज-बसी,
सरला प्रातः ही तो विहँसी,
रे कूद सलिल में गई चली!
आईं लहरी चुम्बन करने,
अधरों पर मधुर अधर धरने,

फेनिल मोती से मुंह भरने,
वह चंचल सुख से गई छली !

....

निज वृन्त पर उसे खिलना था,
नव नव लहरो में मिलना था,
निज सुख-दुख सहज बदलना था,
रे गेह छोड़ वह बह निकली।

यह कविता एक सुन्दर अन्योक्ति हो सकती है। इसका आरम्भिक विकास अति प्रशस्त है। पर अब आगे के बन्द मे जब हम पढते है 'निज वृंत पर उसे खिलना था' इत्यादि——तो लगता है जैसे कविता की कमर टूट गई। कविता की भावुकता एव कल्पना चली गई और काव्य की जगह वेदान्त बैठ गया।

पत जी की यह मागलिक कला आगे कल्पना और अनुभूति के सयोग से विकसित हुई है। पर जहा इनदोनो मे से किसी एक का अभाव हुआ है वहाँ कविता कविता नही रह गई है। १

१ प्रगति-काल के पत की कला के लिए देखिए 'प्रगतिवाद और पंत' शीर्षक संदर्भ।

प्रकृति-चित्रण

खोल कलियों ने उर के द्वार
दे दिया उसको छवि का देश;
बजा भौंरों ने मधु के तार
कह दिये भेद भरे संदेश ।
—पंत

पंत के काव्य का सबसे अधिक स्पष्ट तत्त्व है—प्रकृति । वैसे पंत जी ने प्रकृति और मानव के सम्बन्ध को चिरन्तन माना है—

—यह लौकिक औ' प्राकृतिक कला,
यह काव्य अलौकिक सदा चला
आ रहा,—सृष्टि के साथ चला !
—कलरव (आ० क० पृ० ६७)

और सही है कि प्रकृति काव्य के लिए कच्चे माल की एक बड़ी खान रही है । मगर यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या मनुष्य का आज प्रकृति से वही संबंध है जो आदिम मानव का था और इस बात में भी सन्देह किया जा सकता है कि पंत का प्रकृति-प्रेम वैसा ही है जैसा आदिम मनुष्य का था । पर इतना अवश्य है कि पंत के काव्य में प्रकृति-प्रेम सर्वोपरि संबंध है और प्रकृति का सम्मोहन (Hypnotism) उनकी रचनाओं में आरम्भ से अन्त तक ('वीणा' से 'उत्तरा' तक) एकरस बना रहा है । पंत के भाव-विचार-दर्शन बदलते रहे हैं, 'यह लौकिक औ' प्राकृतिक कला' नहीं ।

मानव, प्रकृति और पंत

पंत जी की कविता की आदि प्रेरणा प्रकृति से मिली जिसका श्रेय उनकी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश अल्मोड़ा (जिसे गांधी जी ने भारत का स्विट्जरलैंड कहा था) के अन्तर्गत कौसानी को है जिसे पंत ने 'प्रकृति का रम्य शृंगार-गृह' कहा है।[१] मातृहीन बालक के मन में प्रकृति ने एक मुग्ध कुतूहल का जन्म दिया था। इस कुतूहल ने अनेक बाल कल्पनाएँ जगायी थीं। प्रकृति-प्रेरणा के दो और स्रोत थे—कालिदास का अमर

कविता की आदि प्रेरणा

---

१. (क) कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था; और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।—पंत (पर्यालोचन, आधुनिक कवि, पृ० १)

१. (ख) मेरे कवि-जीवन के विकास-क्रम को समझने के लिए पहिले मेरे साथ हिमालय की प्यारी तलहटी में चलिए। आपने अल्मोड़े का नाम सुना होगा। वहाँ से बत्तीस मील और उत्तर की ओर चलकर मेरी जन्म-भूमि कौसानी में पहुँच गये। वह जैसे प्रकृति का रम्य शृंगार-गृह है, जहाँ कूर्मांचल की पर्वत-श्री एकान्त में बैठकर अपना पल-पल परिवर्तित साज सँवारती है।····तब मैं छोटा-सा चंचल भावुक किशोर था। मेरा काव्य-कंठ अभी फूटा नहीं था। पर प्रकृति मुझ मातृहीन बालक को कवि-जीवन के लिए मेरे बिना जाने ही जैसे तैयार करने लगी थी। मेरे हृदय में वह अपनी मीठी, स्वप्नों से भरी हुई चुप्पी अंकित कर चुकी थी जो पीछे मेरे भीतर अस्फुट तुतले स्वरों में बज उठी।·····पर्वत-प्रदेश के निर्मल चंचल सौन्दर्य ने मेरे जीवन के चारों ओर अपने नीरव सौंदर्य का जाल बुनना शुरू कर दिया था।····मैं छुटपन से ही जनभीरु और

प्रकृति-काव्य 'मेघदूत' जिसका पाठ वे घर मे सुना करते थे[२] और अंग्रेजी की स्वच्छदतावादी काव्य-धारा जिसके प्रमुख तत्व थे प्रेम और प्रकृति और जिसके सम्पर्क एव प्रभाव मे पंत जी कुछ ही काल बाद आए। 'वीणा' के रचना-काल मे पत जी कीट्स और विशेषत

प्रेम-प्रकृति-द्वद्व

शेली से प्रभावित हुए थे पर उनके प्रकृति-चित्रण से ही, उनकी प्रेम-भावना से नही। उन्होने प्रकृति की छाया को काया की माया से विशेष महत्व दिया था। प्रेम और प्रकृति के आकर्षण-द्वद्व की तत्कालीन समस्या को पत ने इन पक्तियो मे उपस्थित किया है--

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन ?
भूल अभी से इस जग को !
तज कर तरल तरङ्गों को,
तेरे भ्रू भङ्गों से कैसे बिंधवा दूं निज मृग-सा मन ?
भूल अभी से इस जग को !
--मोह (आ० क० पृ० २)

इस प्रकार प्रकृति ने सर्वप्रथम पत मे एक मूक कुतूहल और नीरव-अव्यक्त सौंदर्य उत्पन्न किया। अंग्रेजी के रोमांटिक कवियो के

शर्मीला था। उधर हिम-प्रदेश की प्राकृतिक सुन्दरता मुझपर जादू चला चुकी थी, इधर घर में मुझ 'मेघदूत', 'शकुन्तला' और 'सरस्वती' मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं का मधुर पाठ सुनने को मिलता था, जो मेरे मन में भरे हुए अवाक् सौंदर्य को वाणी की झकारों में झनझना उठने के लिए अज्ञात रूप से प्रेरणा देता था।---
---पंत (मेरा रचना-काल)

२. पत जी के बड़े भाई अपनी नयी पत्नी को हिन्दी 'मेघदूत' आदि का सस्वर पाठ सुनाया करते थे।

प्रकृति-दर्शन का क्रम-विकास

प्रभाव ने उसमें प्रेम का आसव ढालकर एक द्वंद्व उत्पन्न किया। किन्तु यह द्वंद्व क्षणिक था। यह जैसे जनभीरु कवि का एक बचाव (Escape) था। देखते ही देखते प्रेम और प्रकृति एकाकार हो गए तथा इस एकाकारिता मे द्विविधा खो गयी, जैसे गंगा और यमुना के संगम मे सरस्वती की धारा। प्रेम ने प्रकृति का रूप लिया और प्रकृति ने रूमानी (Romantic) छबि ग्रहण की। 'वीणा' की काव्य-धारा का एक अच्छा विकास 'पल्लव' मे हुआ। 'पल्लव' पंत के काव्य का एक सुषमा-लोक है। प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में भी किञ्चित परिवर्त्तन हुआ। 'परिवर्त्तन' शीर्षक कविता मे प्रकृति, जो अबतक कोमल रूप मे आई थी, एक निष्ठुर वेग धारण कर उतरी-

अाधि, व्याधि, बहु वृष्टि, वात, उत्पात अमङ्गल,
वह्नि बाढ़, भूकम्प, तुम्हारे विपुल सैन्य दल ;

——निष्ठुर परिवर्त्तन (आ० क० पृ ३७)

एक बात और हुई और वह है प्रकृति के छायावादी-रहस्यवादी रूप का आवर्त्तन। पंत ने प्रकृति को एक चेतन सत्ता के रूप मे देखा और देखा उसमें एक अनन्त-अज्ञात सत्ता की झांकी। 'मौन निमंत्रण' शीर्षक कविता मे प्रकृति जैसे अपने प्रत्येक रूप और व्यापार मे एक अलौकिक-अज्ञात सर्वशक्तिमान का दर्शन करने के लिए कवि को आमंत्रित करती है---

न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण मुझको देता मौन !

——मौन-निमंत्रण (आ० क० पृ० ३०)

'पल्लव' के बाद 'गुंजन'-काल आता है और 'पल्लव' से 'गुंजन' की ओर आते हुए पंत सुन्दरम् से शिवम् की ओर आते हुए अपने को पाते हैं। किन्तु 'गुंजन' के चिन्तन-लोक में उतरते समय भी वे 'पल्लव' के सुषमा-लोक से अञ्जलि-भर निसर्ग का पराग लेते आए हैं।

'गुजन' में पंत जी की दो सर्वश्रेष्ठ प्रकृति-गीतिकाएं संगृहीत हैं--'नौका-विहार' और 'एक तारा' (ये दोनों 'आधुनिक कवि' में भी सकलित है)। 'नौका-विहार' में पत के प्रकृति-चित्रण का एक नया विकास हुआ है। अबतक पत की प्रकृति-गीतिकाओं के आकर्षण का आधार था कल्पना। पर 'नौका-विहार' का सौंदर्य वर्णन का सौन्दर्य है। 'गुजन' में एक और बात हुई है। यहाँ पंत जी प्रकृति से मानव की ओर आए है। अबतक प्रकृति से पत का मानव प्रभावित था अब वह स्वयं प्रकृति को प्रभावित करने लगा है। अब पत को मानव सर्वश्रेष्ठ वस्तु लगता है---**मानव तुम सबसे सुन्दरतम।** लेकिन 'गुजन' में मनुष्य का दर्शन ले-देकर प्रकृति-दर्शन ही रहा है और वह प्रकृति की सुषमा से अपनी संस्कृति और जीवन को सुन्दर बनाने की योजना बनाता रहा है। 'गुजन' के बाद प्रगति-काल आता है। 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' इस काल की रचनाएं है। इस काल के प्रकृति-चित्रण की विशेषता यह है कि इस काल के पूर्व पत की प्रकृति नागरी थी, रेशमी परिधान और अलंकारोवाली थी। अब प्रकृति ग्रामीण हो गई है। वह कृत्रिम अलंकार और नपी-तुली दृष्टि-भगिमा छोड़कर खेतो की उन्मुक्तता मे खिलखिला पडी है। इसके बाद पत के काव्य का स्वर्ण-काल आता है। स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्ण-धूलि' इस काल की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ है। इस काल मे प्रकृति आध्यात्मिक छबि मे रंग गई है। प्रकृति के प्रतीकों से कवि दर्शन और अध्यात्म की गुत्थियों को स्पष्ट करने चला है। ऐसी परिस्थिति में प्रकृति के सबल का दृढ हो जाना स्वाभाविक है।

दूसरे शब्दों मे पत के काव्य ने प्रकृति का सबल कही छोड़ा नहीं है, जैसे वह प्रकृति की सजीव डाली मे खिलनेवाला फूल हो, या उस पर पलनेवाली लता।

प्रकृति के अनवरत निरीक्षण से काव्य मे चित्रोपमता आनी चाहिए। फिर पत जी ने शब्द-चयन मे भी चित्र और नाद-सौंदर्य

का ध्यान रखा है । उनके अनुसार 'कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता होती है । उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों, जो भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें । जो झंकारों में चित्र और चित्र में झंकार हो ।' और जहाँ काव्य में चित्र के साथ नाद मिल जाता है, वहाँ अनायास वातावरण की सृष्टि हो जाती है । स्वभावतः प्रकृति के दीर्घ साहचर्य और चित्र-नादमय शब्द के लिए प्रसिद्ध पंत जी के काव्य में प्रकृति के रूप एवं ध्वनि-चित्र तथा प्रकृति के आनायास वातावरण की सृष्टि, जो उत्कृष्ट प्रकृति-चित्रण की कसौटी है, की आशा करना उनके पाठकों के लिए स्वाभाविक है । और, पंत जी की कुछ कविताएँ ऐसे पाठकों को अवश्य संतुष्ट करेंगी ।

रूप-चित्रण

रूप और ध्वनि-चित्र की दृष्टि से 'नौका विहार' और 'एकतारा' पंत जी की सर्व-श्रेष्ठ प्रकृति-गीतिकाओं में हैं । 'ग्राम-श्री', 'झंझा में नीम' और 'कलरव' की भी अपनी विशेषताएँ हैं । निदाघ की चाँदभरी रात में कवि काला काँकर की गंगा में चपला पर वीचि-विहार करने निकला है । गंगा क्षीणधार होकर रेत में पड़ी है, जैसे कोई कृशकाय ऋषि-कन्या । बिम्बित चन्द्रमा उसका देदीप्यमान मुखमंडल है और लहराती लहरें उसकी बिखरी केश-राशि । नीलाम्बर उसका धानी आंचल है और भँवर रेशमी साड़ी की सिकुड़न ।

तापस-बाला गंगा निर्मल शशिमुख से दीपित मृदु-करतल,
लहरें उर पर कोमल कुंतल ।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर ।
चंचल अंचल सा नीलाम्बर ।
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी-विभा से भर;
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल लहर ।

—नौका-विहार (आ० क० पृ० ५६)

यहाँ शब्दों की अनुकूल ध्वनि के कारण सम्पूर्ण चित्र स्पदनशील हो उठा है ।

नाद और चित्र के सयोग से काव्य मे वह स्थल आता है जहाँ कवि की लेखनी चित्रकार की तूलिका बन जाती है और चित्रकार की तस्वीर बोलने लगती है । शब्द पिघलकर रेखाएँ बन जाते है और रेखाएँ शब्द बनकर मुखरित हो उठती है । रूप के साथ गति का सयोग नीचे की इन पक्तियों को देखिए जिनमे शब्द, चित्र और गति एकरस हो रहे है और जिनका सारा चमत्कार 'र, , म' ध्वनि की दोहरी योजना मे है ।

रूपात्मकता और गत्यात्मकता का सयोग

लो, पालें उठीं, उठा लगर ।
मृदु मद मद, मन्थर-मन्थर, लघु तरणि, हसिनी-सी सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर ।

——नौका-विहार (आ० क० पृ० ५६)

कही-कही चित्र की सटीकता और वातावरण की लाघव सृष्टि पत जी के उन विशेषणों के कारण हुई है जो अपने में रंग-गति-ग का जादू लिए हुए है । जैसे——

लहलह पालक महमह धनिया
लौकी औ' सेम फली फैली,
मखमली टमाटर हुए लाल,
मिरचों की बड़ी हरी थैली ।

——ग्राम-श्री (आ० क० पृ० ९३)

प्रकृति के साहचर्य ने कवि को सौंदर्य, स्वप्न और कल्पनाजीवी बनाया, ऐसा पत स्वीकार करते है । इसीसे सिद्ध है कि प्रकृति से वे आदिम मनुष्य की तरह नही बल्कि आधुनिक काल के एक भावुक और काव्य-प्राण व्यक्ति के रूप

सौंदर्य, स्वप्न और कल्पना

भावित हुए जो अपनी कोमल भावनाओं का मेल जीवन के चारों ओर छाये हुए कठोरता और त्रास से स्थापित न कर प्रकृति से अपने सपनों और आकांक्षाओं को संतुष्ट कर रहा था। एक बात मुझे और दीखती है। पंत जी कविताएँ रचते समय जन्मभूमि से दूर रहे। वे उसकी प्राकृतिक सुन्दरता को सपनों और कल्पनाओं में देखते रहे। अतः उनके प्रकृति-चित्रण मे इन तीन तत्त्वों---सौंदर्य, स्वप्न और कल्पना---की प्रधानता है।

प्रकृति का सुन्दर, कोमल मृदुल रूप

प्रकृति के सुन्दर रूप ने ही पंत जी को अधिक लुभाया है।[1] सुन्दर जीवन और 'कोमल मनुज कलेवर' की कल्पना करनेवाले तथा संघर्ष और जन-रव से बचकर चलनेवाले निसर्गप्रिय कवि में स्वभावतः प्रकृति का वह उग्र रूप नहीं मिलता जो संघर्षप्रिय, निराशा और असंतोषवादी कवि को आज अधिक खींचता है। पंत जी की प्रकृति में 'वह्नि, उल्का और झंझा' के दर्शन नहीं होते। पार्वत्य प्रदेश का अधिवासी होकर भी पंत जी 'मधुवन' के कवि रहे हैं और उनके मधुवन मे 'लालस लालसा वातास' डोलती है, 'फूलों का हास' और 'तरल तुहिन-वन का उल्लास' बेमोल बिकते हैं। उनके आसमान में 'शारद-हासिनी' बैठी है।

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद-हासिनी,

---चाँदनी (आ० क० पृ० ५६)

---

१. साधारणतर, प्रकृति के सुन्दर रूप ने ही मुझे अधिक लुभाया है... प्रकृति का उग्र रूप मुझे कम रुचता है, यदि मैं संघर्षप्रिय अथवा निराशावादी होता तो 'Nature red in tooth and claw' वाला कठोर रूप, जो जीव विज्ञान का सत्य है, अपनी ओर खींचता।

--पंत (पर्यालोचन, आ० क० पृ० ६)

उनकी धरती की वायु अप्सरी-सी, तरगे चपल और पत्ते नृत्यशील है—

अप्सरी-सी अज्ञात ।
अधर मर्मरयुत, पुलकित अँग
चूमती चलपद चपल तरँग,
चटकती कलियाँ पा भ्रू-भँग
थिरकते तृण ; तरु-पात !

—वायु के प्रति (आ० क० पृ० ८६)

केवल 'परिवर्तन' शीर्षक कविता प्रकृति के भयकर रूप को उपस्थित करती है—

शतशत फेनोच्छ्वसित, रफीत फूत्कार भयंकर,
घुमा रहे है घनाकार जगती का अम्बर !
....
आधि, व्याधि, बहु वृष्टि, वात, उत्पात, अमगल,
वह्नि बाढ़, भूकम्प, तुम्हारे विपुल सैन्य दल !

—निष्ठुर परिवर्तन (आ० क० पृ० ३६-३७)

शेष कविताओ मे प्रकृति का रूप कोमल या मोहक है । 'बादल' शीर्षक कविता शेली की 'क्लाउड' कविता से प्रभावित है किन्तु यहा भी प्रकृति मोहक है, शेली की-सी कठोर नही । वस्तुत पत का समस्त दृष्टिकोण ही सुन्दर का है । उन्हे सुख भी सुन्दर लगता है और दु.ख भी । स्वभावत: प्रकृति का रमणीय रूप उन्हे अधिक भाता है ।[१]

पंत जी मे वर्डसवर्थ के समान प्रकृति का कोमल-मृदुल, शान्त-सुन्दर स्वरूप देखेंगे, कॉलरिज की प्रकृति का खूनी पजा नही।

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि 'प्रकृति के रमणीय खंड के बीच ही इनके हृदय ने रूप रंग पकडा है ।'

पंत जी के प्रकृति-चित्रण मे कोमलता के साथ वर्ण-विपुलता (Colourfulness) भी है। वर्ण-परिज्ञान

कोमलता के साथ वर्णविपुलता

(Sense of colour) मे पंत और महादेवी समकक्ष हैं यद्यपि पंत जी मे कल्पना की मात्रा अधिक है और महादेवी मे कारीगरी की।

पंत प्रत्येक वस्तु और भाव को जैसे रूप-रंग-गंध मे देखते हैं। वायु अनेक-रंग-मिश्रित (Multi-colour) रूप लेकर उनके सामने आती है—

हरित-द्युति चंचल अंचल-छोर
सजल छवि, नील कंचु, तन गौर,
चूर्ण कच, साँस सुगंध झकोर,
परों में सायँ-प्रात!

—वायु के प्रति (आ० क० पृ० ४६)

वसन्त का बहुरंगीपन तो प्रसिद्ध ही है—

पल्लव पल्लव में नवल रुधिर
पत्रों में मांसल रंग खिला,
आया नीली-पीली लौ से
पुष्पों के चित्रित दीप जला!

—वसन्त (आ० क० पृ० ६३)

प्रकृति-निरीक्षण की नारी कला

पंत जी स्वभाव से सुन्दरम के कवि है। पंत जी के प्राण सौंदर्यवादी है। कवि के सौंदर्यजीवी मन ने अपनी सौंदर्य-बुभुक्षा की परितृप्ति के लिए एक ओर प्रकृति के मधुवन की ओर देखा है और दूसरी ओर नारी की ओर। एक ओर 'फूलो का हास' उन्हें अनुरक्त करता है और दूसरी ओर 'कपोलों की मदिरा'। पंत जी जब प्रकृति को निहारते हैं तो उनके दृगों में 'विश्व सुखमा का संसार' लिए नारी छा जाती है और जब वे नारी

का ध्यान करते है तब उनके सामने प्रकृति की राशि-राशि सुन्दरता बिखर जाती है । जब शरद की झिलमिल चाँदनी को देखते हैं तब एक शर्मीली छुई-मुई-सी दुलहिन सामने खडी हो जाती है—

दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
——चाँदनी (आ० क० पृ० ५६)

इन्द्रधनुष को देखते ही उन्हे किसी के रेशमी घुघट का ध्यान हो जाता है——

देखता हूं, जब पतला
इन्द्रधनुषी हलका
रेशमी घुंघट बादल का
खोलती है कुमुद-कला ;
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता तब अन्तर्धान ;
——'आँसू' से (आ० क० पृ० १७)

पत जी के लिए 'चाँदनी' दुलहिन है तो गंगा एक ऋषि कन्या——

तापस-बाला गंगा निर्मल
——नौका-विहार (आ० क० पृ० ५६)

और जब वे 'भावी-पत्नी' का ध्यान करते हैं तब उनकी आखो में 'व्योम बाला का शरदाकाश' छा जाता है । पत जी की प्रकृति नारी-मयी है और नारी प्रकृतिमयी । पत की निम्नलिखित स्वीकारोक्ति ध्यान देने योग्य है——

इन्दु पर, उस इन्दुमुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन,
——ग्रथि से (आ० क० पृ० २०)

कही उन्होने प्रकृति को स्वतत्र सजीव सत्ता रखनेवाली नारी——देवी, मां, सहचरी——के रूप में चित्रित किया है और कही प्रकृति से

तादात्म्य अनुभव करते हुए स्वयं अपने को भी नारी के रूप में चित्रित किया है ।[१]

पंतजी ने प्रकृति में पाये हुए सौंदर्य को बारबार अज्ञात, अव्यक्त नीरव या अवाक् सौंदर्य कहा है । यानी जैसे आरम्भ से ही प्रकृति के भीतरी लावण्य के प्रति उनमें एक जिज्ञासा रही है और यही जिज्ञासा या कुतूहल छायावाद और रहस्यवाद का प्रस्थान-बिंदु है । छायावाद प्रकृति को एक चेतन मानवीकृत (Personified) रूप में देखता है और विभिन्न प्राकृतिक पदार्थों को परस्पर एक प्रेम-संबंध में आबद्ध देखता है । रहस्यवाद भी प्रकृति में चेतना और प्रेम का बोध पाता है किन्तु यहाँ समस्त प्राकृतिक पदार्थ एक महान् अलौकिक सत्ता के प्रेम में बंधे होते हैं। पंत जी के प्रकृति-चित्रण में छायावाद और रहस्यवाद दोनों की थोड़ी बहुत प्रवृत्तियाँ मिलेंगी ।

मानवीकृत चेतन प्रकृति

छायावाद के प्रजापतियों में मानवीकृत चेतन प्रकृति के अभिनव रूप, सबसे अधिक मात्रा में, पंत जी ने ही उपस्थित किए हैं । 'चाँदनी' का एक दृश्य ही उदाहरण के लिए अलम् होगा । नदी के कछार पर पड़ी चांदनी जैसे

---

१ (क) प्रकृति को मैंने अपने से अलग, सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में देखा है ।··· कभी जब मैंने प्रकृति से तादात्म्य अनुभव किया है तब मैंने अपने को भी नारी के रूप में अंकित किया है ।—पंत (पर्यालोचन, आ० क० पृ० ६)

१ (ख) प्रकृति मालकिन बनकर गजरे बेचने आई है—

लाई हूँ फूलों का हास
लोगी मोल, लोगी मोल ?

—गु०-पृ० ७५

उससे 'लोगी मोल, लोगी मोल' कहलाकर कवि ने क्रयी (कवि या साधक) को भी जैसे नारी मान लिया है ।

निश्चेष्ट होकर सो रही है। मंद मलयानिल उसकी साँस है, लहरें उसकी छाती की धड़कन।

वह सोई सरित पुलिन पर
साँसों में स्तब्ध समीरण,
केवल लघु-लघु लहरों पर
मिलता मृदु-मृदु उर-स्पन्दन।

—चाँदनी (आ० क० पृ० ५६)

लीजिए, उसकी नींद उचट गई। तथकथित जड़ प्रकृति कितनी प्राणवती है! झिलमिलाती चाँदनी जैसे आँखें मींच रही है। अरे, वह लजवन्ती तो संसार के नयन-तीरों से घिरकर, शर्म से अपने-आप में गड़ी-सी जा रही है—

दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
वह छबि की छुई-मुई-सी
मृदु मधुर-लाज से मर-मर।

—चाँदनी (आ० क० पृ० ५६)

प्रकृतिपरक रहस्यवाद पंत जी आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रकृति-रहस्यवाद के प्रवर्तक कहे जाते हैं। जिस तरह शैली ने 'सौन्दर्य लक्ष्मीरतव' में प्रकृति के भीतर एक महती शक्ति की चंचल, मधुर और रहस्यमय छाया देखी है उसी तरह पंतजी ने भी प्रकृति में लोकोत्तर सत्ता का 'मौन निमन्त्रण' सुना है।

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;

न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन !

---मौन निमत्रण (आ० क० ‌ृ० ३०)

पंत जी के हृदय-नयन सागर के हृदय मे उठनेवाली लहरों मे अनन्त अभिलाषाओं का उन्मेष देखते हैं और उसकी शांति में अनन्त का प्रशान्त सकेत---

चिर आकांक्षा से ही थर्-थर्, उद्वेलित रे अहरह सागर,
नाचती लहर पर हहर लहर !
अविरत-इच्छा ही में नर्तन, करते अबाध रवि, शशि, उड़ुगण,
दुस्तर आकांक्षा का बन्धन !

---एकतारा (आ० क० पृ० ५४)

और इन सभी आकाक्षाओ के मूल मे एक अलौकिक असीम सत्ता का आकर्षण है। सभी इच्छाएँ उसी की ओर उन्मुख है। जैसे समस्त प्रकृति एक परम पुरुष के प्रेम से बंधी है। लहरे उसी असीम से मिलने को उठती है और उसी की लीला के लिए जन्म-मृत्यु को स्वीकार करती है---

चिर जन्म-मरण को हँस हँस कर
हम आलिंगन करतीं पल पल,
फिर फिर असीम उसे उठ-उठ कर
फिर फिर उसमें हो हो ओझल !

---लहरों का गीत (आ० क० पृ० ४७)

प्रकृति के अणु-अणु मे व्याप्त इस अनन्त अनिर्वचनीय सत्ता ने कवि को विस्मय-विमुग्ध किया है। यह विस्मय-भावना रहस्यवाद का प्रस्थान-बिन्दु है। प्रकृति ने कवि को अनन्त का जो सकेत-दर्शन

कराया है उसे पाकर कवि के प्राण नाच उठे है और उसके प्राणों का आनन्द गीति में फूट पडा है——

न जाने कौन, अये छबिमान
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों मे गान ;

——मौन निमन्त्रण (आ० क० पृ० ३२)

"विहग के प्रति' कविता मे कवि ने अव्यक्त प्रकृति के बीच, चैतन्य के सान्निध्य से, शब्द-ब्रह्म के सचार या स्पन्दन (Vibration) से सृष्टि के अनेक रूपात्मक विकास का बडा ही सजीव चित्रण किया है"१——

मुक्त पखों में उड़ दिनरात
सहज स्पन्दित कर जग के प्राण ;
शून्य नभ में भर दी अज्ञात,
मधुर जीवन की मादक तान।

पत और वर्ड्सवर्थ

पत जी ने वर्ड्सवर्थ की तरह प्रकृति के बीच बैठकर मर्म की वाणी कही है। पर पतजी और वर्ड्सवर्थ के प्रकृति-चित्रणों में एक मौलिक अंतर है। वर्ड्सवर्थ प्रकृति के आन्तरिक सौंदर्य के साथ उसके बाह्य रूपो का वर्णन भी मनोयोग से करते हैं। पंत जी के लिए प्रकृति दृष्टि से अधिक अनुभूति का विषय है। उनके लिए——

वह खडी दृगों के सम्मुख
सब रूप, रेख, रँग ओझल,
अनुभूति मात्र-सी उर मे
आभास शान्त, शुचि, उज्ज्वल।

——चाँदनी (आ० क० पृ० ६१)

---

१. श्री रामचन्द्र शुक्ल

पंतजी ने स्वयं स्वीकार किया है कि प्रकृति ने उन्हें **सौंदर्य, स्वप्न और कल्पना-जीवी** बनाया है। स्वप्न में चर्मचक्षु तो देखते नहीं, देखते हैं उपचेतन के कल्पना-नयन।

अनुभूति-वेष्ठित प्रकृति-चित्रण

'सान्ध्यतारा' को लीजिए। उसमें गाँव उसी प्रकार शांत है जिस प्रकार वर्ड्सवर्थ का लंदन।

नीरव संध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम प्रान्त
पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल बन का मर्मर
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।

—एक तारा (आ० क० पृ० ५३)

इन पंक्तियों में कवि आँखों की धरती से उठकर अनुभूति के सौंदर्य-लोक में आ गया है जहाँ उसके चर्मचक्षु विभोर होकर बन्द हो गए हैं और अनुभूति सजग एवं कल्पना उद्दाम हो उठी है क्योंकि वृक्ष के पत्तों पर सोनेवाले 'निखिल मन के मर्मर' को वीणा के तारों में सोनेवाले स्वर में रूपायित किया गया है। इस साम्य में कल्पना का दुर्लभ विकास हुआ है। पंत जी के प्रकृति-चित्रण में शेली की भाँति कल्पना की पर्याप्त मात्रा है। शेली की 'लावा' चिड़िया की तरह पंत की चाँदनी भी अनेक भावनाओं और कल्पनाओं से विभूषित है—

कल्पना-रंजित प्रकृति-छबि

पंत और शेली

जग के अस्फुट स्वप्नों का
वह हार गूँथती प्रतिपल
चिर सजल-सजल करुणा से
उसके ओसों का अंचल।

—चाँदनी (आ० क० पृ० ६०)

'बादल' शीर्षक कविता (आ० क० पृ० २३) भी कल्पनाओं से ओतप्रोत है। स्वप्न और कल्पना की यह प्रधानता पंत के प्रकृति-चित्रण के एक अभाव की ओर संकेत करती है।

असम्बद्ध खण्ड-चित्र स्वप्न में चित्र असम्बद्ध और खंड-खंड होकर आते हैं। पंत का प्रकृति-चित्रण भी खंड-चित्रों से भरा है। उसमें निराला, प्रसाद, शेली या कीट्स के एकतान संश्लिष्ट चित्रण (Sustained imagery) का अभाव है। बादल खंड-चित्रों को ही उपस्थित करता है। कहीं वह जलाशय का कमल है, कहीं मृग, कहीं भूत, कहीं दमयन्ती का स्वर्ण-हंस, कहीं सागर का बड़वानल। परिणाम यह होता है कि बादल का कोई समग्र प्रभाव नहीं पड़ता। असम्बद्ध चित्र का एक और उदाहरण है—'चाँदनी'। चाँदनी सोई है नदी के कछार पर, उसका मुख-चन्द्र है आसमान पर और उसके हृदय की धड़कन हो रही है लहरों पर। ऐसा अबौद्धिक चित्र स्वप्न में ही सम्भव है।[1]

पंत की प्रकृति; कीट्स की मादकता छायावादी कवियों पर अंग्रेजी के स्वच्छंदवादी कवियों की मादकता की भी छाप पड़ी है। पंतजी की प्रकृति में हम कीट्स की-सी मादकता पाते हैं—

देखता हूँ, जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिय भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को
नवोढ़ा बाल-लहर
अचानक उपकूलों के

---

१. इस पुस्तक में 'काव्य-कला' शीर्षक अध्याय में इस बात पर विशेषरूप से विचार किया गया है।

प्रसूनों के ढिग रुक कर,
सरकती हूं सत्वर ;
—आँसू से (आ० क० पृ० १७)

चंचल पग दीप-शिखा के धर
गृह, मग, वन में आया बसन्त !
सुलगा फाल्गुन का सूनापन
सौंदर्य-शिखाओं में अनन्त !
—बसन्त (आ० क० पृ० ६३)

प्रकृति और उद्दीपन विभाव

प्रकृति का यह मादक रूप प्रायः वहा मिलता है जहाँ प्रकृति का प्रयोग उद्दीपन विभाव के रूप में किया गया है, अथवा जहाँ कवि अपनी भावनाओं को प्रकृति के ऐन्द्रिक चित्रों में रूपायित करना चाहता है। छायावादी कवि प्रायः अपने प्रेम और उसकी वेदना को ही प्रकृति के माध्यम से प्रगट कर रहे थे। अतः उनके काव्य में प्रकृति के ऐन्द्रिक (Sensuous) चित्रों की प्रधानता है।

काली कोकिल ! सुलगा उर में
स्वरमयी वेदना का अगार
आया बसन्त, घोषित दिगन्त
करती, भर पावक की पुकार !
आः, प्रिय ! निखिल ये रूप-रंग
रिल-मिल अन्तर में स्वर अनन्त
रचते सजीव जो प्रणय-मूर्त्ति
उसकी छाया, आया बसन्त !
—बसन्त (आ० क० पृ० ६४)

देखता हूँ, जब पतला
इन्द्रधनुषी हलका

रेशमी घूंघट बादल का
खोलती है कुमुद-कला ;
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता है अन्तर्धान ;
——"आसू" से (आ० क० पृ० १७)

और पतजी की यह प्रकृति शायद ही कही निराभरण हो। वह प्राय अलकृत रहती है। कही कही तो अलकारप्रियता के नीचे प्रकृति-वर्णन की सहज सरसता दब-सी गई है और एक-आध स्थान पर रीतिपद्धति का भी ध्यान आने लगता है ।

अलकृत प्रकृतिः रीति-पद्धति

आज बन मे पिक, पिक मे गान
विटप मे कलि, कलि मे सुविकास
कुसुम मे रज, रज मे मधु, प्राण !
सलिल मे लहर, लहर मे लास !
अथवा
अवनि औ' अम्बर के वे खेल
शैल मे जलद, जलद मे शैल !
——'आसू' से (आ० क० पृ० १८)

'बादल' आदि कविताओ मे उपमाओ-उत्प्रेक्षाओ की वैसी ही बाढ़ है जैसी पहले के युग मे रहा करती थी । प्राचीनता का यह सस्कार पत जी मे भी बना है । पर यही-कही नयी उपमा ऐसे चित्रो मे बडी ताजगी भी लाती है, जैसे——

मेमनों-से मेघों के बाल
कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर
——'आसू' (आ० क० पृ० १८)

'प्रगतिवादी काल' मे पत ने प्रकृति के सरल-सहज रूप भी उपस्थित किए थे । पत की कला अपनी सहजता मे ही खिलती है ।

पंत. 'ग्राम-श्री' आदि कविताओं में प्रकृति का सरल रूप आयासमुक्त (Effortless) होकर बड़ा आह्लादकर हो गया है—

गंजी को मार गया पाला,
अरहर के फूलों को झुलसा,
हाँका करती दिनभर बन्दर
अब मालिन की लड़की तुलसा।
छायातप के हिलकोरों में
चौड़ी हरीतिमा लहराती,
ईखों के खेतों पर सुफेद
काँसों की झण्डी फहराती।

—ग्राम-श्री (ग्रा० क० पृ० ९५)

अलंकारों के लिए प्रकृति का प्रयोग सदा से होता रहा है। बल्कि अप्रस्तुत-विधान के लिए ही इसका प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। नायक-नायिकाओं के सूक्ष्म सौंदर्य और भाव को अप्रस्तुत-विधान प्रकृति के दृश्य पदार्थों और प्रगट सम्बन्धों से व्यक्त और प्रकृति करना सरल है। पंत जी के लिए तो एकमात्र प्रकृति ही अलंकारों का कोष है। पर अप्रस्तुत-विधान यानी अलंकार-योजना के लिए उन्होंने प्रकृति का जो उपयोग किया है वह परम्परागत होकर भी शायद किञ्चित नवीन है।

रंगीले, गीले फूलों—से
अधखिले भावों से प्रमुदित
बाल्य-सरिता के कूलों से
खेलती थी तरंग-सी नित।

—'उच्छ्वास' की बालिका (आ० क० पृ० ९)

तुम्हारे छूने में था प्राण,
सङ्ग में पावन गङ्गा स्नान;

तुम्हारी वाणी में, कल्याणि !
त्रिवेणी की लहरों का गान !

——'आँसू' की बालिका (आ० क० पृ० ११)

किन्तु पंत जी ने प्रकृति से केवल सौंदर्य ही नहीं पाया विचारों की प्रेरणा भी पाई। बात यह है कि पंतजी ने सर्वप्रथम प्रकृति में सौंदर्य देखा था और उससे वे पराभूत हुए थे। आगे उस सौंदर्य ने एक भावलोक की ओर प्रवेश किया। कवि ने प्रकृति को एक अनन्त चेतना की प्रेयसी के रूप मे देखा और स्वयं भी उसमें अपने प्रेम की प्रतिच्छाया देखने लगा। इस तरह कवि का सौंदर्य-प्रधान प्रकृति-प्रेम भाव-प्रधान होने लगा। पर देखते ही देखते जीवन की कठोर घटनाओं से टकराकर उनका 'किशोर भावना का स्वप्न' भी टूट गया। वे आत्मा के लोक से समाज की व्यक्त धरती मे उतरे। उनका प्रकृति-प्रेम भी अब विचार-प्रधान हो उठा। प्रकृति के माध्यम से कवि अपने विचारो की अभि-व्यक्ति करने लगा 'उर की डाली' शीर्षक कविता

प्रकृति : आत्माभिव्यजना का साधन

मे कवि उपवन की एक डाली का रूपक खडा करके यह सिद्ध करता है कि जिस तरह डाली में फूल और कांटे एक साथ ही रहते हैं उसी तरह जीवन में सुख और दुःख साथ-साथ ही रहते हैं। सुख और दुःख में किसी एक को भी भूल जाना मनुष्य के लिए सम्भव नही है—

देखूं सब के उर की डाली—
सब में कुछ सुख के तरुण-फूल
सब में कुछ दुःख के करुण शूल;
सुख-दुःख न कोई सका भूल !

——उर की डाली (आ० क० पृ० ५२)

इसी प्रकार सुख-दुःख के परिवर्त्तन-चक्र को वह ऋतु-परिवर्तन के माध्यम से प्रगट करता है——

आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी सांस

——अनित्य जग (आ० क० पृ० ३३)

इसी भांति दावाग्नि और बादल के उदाहरणों के द्वारा उन्होंने बड़ी सफाई के साथ यह सिद्ध किया है कि दुःख आरम्भ में कष्टकर है किन्तु अन्तत: कल्याणकार है——

दुख-दावा से नव-अंकुर
पाता जग जीवन का बन
करुणार्द्र विश्व की गर्जन
बरसाती नव जीवन-कण !

——गु० पृ० २२

प्रकृति से विचार-प्रेरणा

कहीं प्रकृति से विचारों की प्रेरणा भी मिली है । कवि जीवन के सुख-दुःख पर विचार करता है । कहीं प्रकृति की परिवर्त्तनशीलता को देखकर उसे लगता है कि सृष्टि अनित्य है ('अनित्य जग' कविता में) । कहीं उसे लगता है कि परिवर्तन केवल ऊपरी है और इस परिवर्त्तन के घाटों में प्रवाहित जीवन-धारा अमर है । नौका-विहार करते समय यह विचार सहसा उसके मन में चमक उठता है——

ज्यों ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार ।
इस धारा सा ही, जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्‌गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम ।

——नौका-विहार (आ० क० पृ० ५८)

कहीं प्रकृति की चिर प्रसन्नता और मनुष्य के चिर विषाद को देखकर उसके मन में यह विचार उठता है कि प्रकृति सुखी है, केवल मनुष्य दुःखी है क्योंकि उसने अपने को प्रकृति से अलग कर लिया है, अपने जीवन को कृत्रिम बना लिया है——

प्रकृति धाम यह, तृण तृण, कण कण जहाँ प्रफुल्लित जीवित,
जहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत !

—ग्राम चित्र (आ० क० पृ० ६०)

कहीं वह मनुष्य को प्रकृति में जीवन की प्रेरणा लेने की सलाह देता है। कवि को लगता है कि प्रकृति मानव की समस्याओं का निदान, दुख-दर्द का उपचार लिए खड़ी है और वह प्रकृति की पाठशाला में जीवन की कला की सीख ग्रहण करने का आग्रह-सा करता है—

गा सके खगों से मेरा कवि
फिर हो प्रभात, फिर आवे रवि !

—कलरव (आ० क० पृ० ६८)

बन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुस्काना
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना ।

——गु० पृ० २२

हसमुख प्रसून सिखलाते
पल भर भी तो हँस पाओ
अपने उर की सौरभ से
जग आँगन को भर जाओ ।

——गु० पृ० ३१

कहीं-कहीं प्रकृति चित्रों में कवि ने अपनी भावनाओं का सौंदर्य मिला दिया है और कहीं-कहीं निजी भावनाओं को ही प्राकृतिक सौंदर्य का परिधान दे दिया है।[1] ऐसे स्थलों पर भी 'पंत जी की प्रतिभा बहुत ही व्यंजक और रमणीय साम्य' उपस्थित करती है—

गिरिवर के उर से उठ-उठ कर
उच्चाकांक्षाओं-से तरुवर

१ पंत (पर्यालोचन, आधुनिक कवि, पृ० ८)

है झांक रहे नीरव नभ पर,
अनिमेष; अटल, कुछ चिन्ता पर !

——पर्वत प्रदेश मे पावस (आ० क० पृ० १३)

कहीं-कहीं वे प्रकृति को दार्शनिक भावो से युक्त कर देते है। 'चाँदनी' शीर्षक कविता की——

वह है, वह नहीं अनिर्वच
जग उसमें, वह जग में लय,
साकार–चेतना सी वह
जिसमें अचेत जीवाशय ।

——चाँदनी (आ० क० पृ० ६१)

——आदि पक्तियों मे दर्शन ने चादनी के सहज सौंदर्य को अभिभूत कर लिया है ।

प्रकृति के व्याज से अपने ही भावों को प्रगट करने में प्रायः दो पद्धति काम में आती है, एक समासोक्ति पद्धति और दूसरी अन्योक्ति पद्धति । समासोक्ति वहाँ होती है जहाँ कविता का अर्थ प्रकृति और मानव दोनो के पक्षों में घटता है । अन्योक्ति वहाँ होती है जहाँ प्रकृति एक प्रतीक भर होती है, और इसलिए जहाँ कविता का अर्थ केवल मानव-पक्ष में ही घटता है । पत जी मे इन दोनों पद्धतियों का समावेश है । 'वायु के प्रति' और 'चाँदनी' शीर्षक कविता की निम्नलिखित अंतिम पंक्तियों में——

प्रकृति-चित्रण : समासोक्ति-पद्धति

साकार चेतना-सी वह
जिसमें अचेत जीवाशय

समासोक्ति मिलेगी । 'एक तारा' शीर्षक कविता भी समासोक्ति ।

पद्धति पर लिखी गई एक प्रकृति-गीतिका है जिसमें 'सांध्यतारा' के वर्णन के भीतर एक स्थित-प्रज्ञ व्यक्ति का वर्णन अन्तर्निहित है--

निष्कम्प-शिखा-सा वह निरुपम, भेदता जगत-जीवन का तम,
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र, वह सम !

---एक तारा (आ० क० पृ० ५५)

'उर की डाली' भी इसी पद्धति में आनेवाली कविता है।

अन्योक्ति-पद्धति

पंत में समासोक्ति की ही प्रधानता है क्योंकि उनके काव्य मे प्रकृति का सौंदर्य कवि को पराभूत किए रहता है। हाँ, एकाध स्थल पर अन्योक्ति की-सी चीज भी मिल जाएगी। उदाहरण के लिए 'लहरों का गीत' शीर्षक कविता ले सकते है। इस कविता की अंतिम पंक्तियाँ द्रष्टव्य है--

चिर- जन्म-मरण को हँस हँसकर
हम आलिंगन करतीं पल पल,
फिर फिर असीम से उठ उठ कर
फिर फिर उसमें हो हो ओझल।

(आ० क० पृ० ४७)

यहाँ लहरों का वह रूप प्रधान नही है जो इस कविता की आरंभिक पंक्तियों मे था। यहाँ लहरों के स्वाभाविक रूप-रंग-व्यापार नही रह गए है। चिन्ता और चेतना की अतिशय प्रधानता ने उनके स्वाभाविक रूप को अलगकर उनकी जगह पर एक सिद्ध मनुष्य को प्रतिष्ठित कर दिया है। लहर महज एक प्रतीक भर रह गई है।

इस प्रकार पंतजी की प्रकृति-निरीक्षण की प्रतिभा सौंदर्य से भाव की ओर और भाव से ज्ञान-दर्शन की ओर बढ आई है।

पंत और छायावाद

छायावाद की विशिष्टताएँ

छायावाद विश्व के प्रत्येक पदार्थ मे एक अज्ञात सचेतन-सप्राण सौदर्य-सत्ता की अनुभूति है। छायावाद न तो केवल 'प्रतीकवाद' है, न 'चित्रभाषावाद' और न एक 'अभिव्यजन-पद्धति' मात्र पर अवश्य वह इन सब का एक समन्वयात्मक नाम है। उसकी काया ध्वन्यात्मक प्रतीक शैली, चित्रमयी भाषा, लाक्षणिक अलकार, सौंदर्यमय सगीत और उदार छंद जैसे काव्य के 'पचतत्त्व' की बनी है। व्यापक सप्राण सौंदर्यानुभूति, प्रेमोपासना, आत्माभिव्यजन, विरह-निवेदन और सश्लिष्ट जीवन-दर्शन उसकी अन्तर्मुखी आत्मा की विशेषताएँ हैं।

छायावाद और रहस्यवाद

छायावाद पदार्थ मे चेतन सौंदर्य सत्ता का दर्शन है और रहस्यवाद घट में ब्रह्म का। छायावाद में आत्मा आत्मा की अनुभूति करती है और रहस्यवाद में विश्वात्मा की। छायावाद सर्वचेतनवादी काव्य है, रहस्यवाद ब्रह्मवादी। छायावाद संसार के प्रत्येक पदार्थ मे (तथाकथित जड पदार्थों में भी) आत्मा को देखता है और उसके प्रति संवेदनशील होता है, रहस्यवाद विश्वव्याप्त ब्रह्म के महास्तित्व के साथ एकात्मकता का अनुभव करता है। महादेवी वर्मा के शब्दो मे 'छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपो मे प्रगट एक महाप्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है', और 'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शात और निश्छल सम्बन्ध जोडना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ जाता है कि दोनों मे कोई भी अन्तर नही रह जाता'। इस प्रकार छायावाद रहस्यवाद का एक सोपान मात्र है। वह वस्तुवाद और रहस्य-

वाद का मध्यवर्ती है। वस्तुवाद में किसी पदार्थ का यथातथ्य चित्रण होता है, छायावाद उस पदार्थ के वाह्यावरण को भेदकर उसके भीतर एक आत्मा ढूँढ लेता है और रहस्यवाद उस आत्मा में ब्रह्म का विस्तार पा लेता है। इस अवतरण का अर्थ केवल इतना ही है कि छायावाद रहस्यवाद का स्वाभाविक सोपान बन सकता है और उसमें रहस्यवाद की अध्यात्मिकता की किञ्चित मात्रा भी है। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि हिन्दी के नवीन छायावाद का मूल उद्देश्य रहस्यवाद के शृंग पर चढ़ना था। विषय की दृष्टि से छायावाद प्रकृति और प्रेम-काव्य है। उसका आध्यात्मिक पक्ष दुर्बल है। वस्तुत वह पश्चिम से आने वाली रोमांटिक काव्य-धारा का भारतीय स्वरूप है।

छायावाद का रोमान्टिक रूप

छायावाद में प्रेम और नारी

छायावाद घोर आचारवादी, सुधार और नैतिकता से शंकित द्विवेदी काल की शुष्कता और रूक्षता के प्रति हृदय की रसिकता की प्रतिक्रिया था।[१] द्विवेदी काल के आदर्शवाद ने रतिशास्त्र को अग्निसात किया था और प्रेम तथा शृंगार को वर्जित प्रदेश मान लिया था। छायावाद की चिंता के केन्द्र में नारी बैठी है। प्रकृति के समस्त सौंदर्य-विस्तार में उसी नारी का रूप-लावण्य देखा गया है।

शरद के निर्मल तिमिर की ओट में
नव मिलन के पलक दल-सा झूमता
कौन मादक कर मुझे है छू रहा
प्रिय ! तुम्हारी मूकता की आड़ से ?

—'ग्रंथि' से (आ० क० पृ० २२)

पंत जी की तो समस्त कला नारी कला है। पंत जी ने 'कोमल मनुज कलेवर' की कल्पना की है और 'अविराम प्रेम की बाहों

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए 'छायावाद की रास' शीर्षक संदर्भ पृ० ९–१७

में, मुक्ति पायी है। उन्होंने प्रकृति को नारी के रूप में देखा है और निसर्ग से तादात्म्य अनुभव करते समय स्वयं अपने को भी नारी मान लिया है।[1] उन्होंने पुल्लिंग शब्दों का स्त्रीलिंग प्रयोग किया है। नारी पंत जी के 'प्राणों की प्राण' है। जब वह मुस-कुराती है, तब प्रभात विहँस पड़ता है।[2] नारी वह सौंदर्य-चेतना है जो संसार के उल्लास का कारण है और जिसके अभाव में मनुष्य क्या देवता का जीवन भी जड़ हो जाय। सूरज उसे ही देखने के हेतु प्राची के वातायन से हर भोर को झांकता है। सांझ उसे न पा उदास लौट जाती है। वह आयेगी, इसी आशा में आकाश के सितारे, आशा का दीप जलाये, निर्निमेष दृष्टि से उसका पथ हेरते रहते हैं।

कब से विलोकती तुम को
ऊषा आ वातायन से ?
सन्ध्या उदास फिर जाती
सूने गृह के आंगन से !
. . . .
तुम आओगी-आशा में
अपलक हैं निशि के उडगण !

---

१. प्रकृति को मैंने अपने से अलग, सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में देखा है। कभी जब मैंने प्रकृति से तादात्म्य का अनुभव किया है तब मैंने अपने को भी नारी रूप में अंकित किया है।
---पंत (पर्यालोचन, आधुनिक कवि, पृ० ६)

२, मुस्कुरा दी थी क्या तुम प्राण !
मुसकुरा दी थी आज विहान ?
---गुं० पृ० ४६

आओगी, अभिलाषा से
चंचल, चिर-नव जीवन-क्षण !

—गु० पृ० ४५

रवीन्द्र नाथ के हृदय मे एक विरहिणी बैठी थी, पर हिन्दी के छायावादी कवियों के मन में 'मदिर नयना'। रवीन्द्र देश और काल से ऊपर उठकर क्षणिक को अपनी करुणा के स्पर्श से शाश्वत कर चुके थे। काल और व्यक्ति की सीमाओं के बीच छायावादी कवियों ने यौवन के क्षणिक प्रकाश को ही अमर मान लिया था। प्रसाद ने नारी के यौवन-विलास को, पंत ने उसकी वय:संधि के धूपछाही रंग को, निराला ने उसकी रति-क्रीडा और शक्ति को तथा महादेवी ने उसकी वेदना को वाणी दी है। इस नारी के लिए तत्कालीन काव्य को स्वयं अपना रूप सवाँरना पड़ा था। आचारवाद से आक्रांत द्विवेदी-कालीन साहित्य में शिव की प्रतिष्ठा हुई थी और सुन्दर का तिरोभाव। छायावाद ने सुन्दर का आवाहन किया था। छायावाद सौंदर्यवाद के पुनर्निर्माण (Aesthetic Revival) को लेकर उपस्थित हुआ था। छायावादी कवियो मे सौंदर्य-की बुभुक्षा सी थी। असुन्दर के लिए उनके काव्य मे स्थान न था पर यह सौदर्य रीति-कालीन दरबारी संस्कृति मे पले सौंदर्य से भिन्न था। छायावाद ने रीतिकाल की पुनरावृत्ति नही, उसकी सौंदर्य-भावना का पुनर्मूल्यांकन किया था। रीतिकाल का सौंदर्य संकीर्ण था, छायावाद का व्यापक। रीतिकाल में चन्द्र, पनघट, कमल, कदली आदि की रूढ़ियाँ सौंदर्य की सीमा बनकर खड़ी थी। छायावाद ने प्रकृति में सौंदर्य-विस्तार के अनेक लीला-क्षेत्र निर्मित किये थे। रीतिकाल की नारी जड़ और निर्जीव थी, छायावाद की नारी जीवित और सप्राण। रीतिकाल की नारी के पास शरीर मात्र था, छायायुग की नारी के पास प्राण भी।

छायावाद की सौंदर्यानुभूति

रीतिकालीन नारी का मापदंड रीतिशास्त्र था, छायायुग की नारी का मनोविज्ञान और कामशास्त्र । अतः रीतिकाल की नायिका एक देशीय थी, छायायुग की प्रेयसी सार्वदेशिक ।

पंत जी में छायावाद के इस 'सुन्दर'-तत्त्व का अच्छा विकास हुआ है। उनके प्राण सौंदर्यवादी हैं। उनकी कविता में सर्वत्र सौंदर्य की आत्मा का दर्शन होता है । छन्द, शब्द, ध्वनि, अलंकार सब में सौंदर्यान्वेषण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। वैसे उन्होंने सम्पूर्ण मानव-जीवन को ही एक सौंदर्यान्वेषी की दृष्टि से देखा है।

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम,
—मानव (आ० क० पृ० ६६)

सुन्दर मृदु-मृदु रज का तन,
चिर सुन्दर सुख-दुख का मन,
सुन्दर शैशव यौवन रे
सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन ।
—गु० पृ० २६

उनके लिए प्रकृति और नारी एक अखंडनीय लावण्य-तत्त्व के उभय पक्ष हैं। इस प्रकार उन्होंने सौंदर्य के विस्तार को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखा है।

अपार्थिव लोक की कल्पना

द्विवेदी काल म दृश्य जगत् काव्य का क्षेत्र था। प्रम के रोमांटिक रूप को लेकर चलनेवाले सुकुमार सूक्तियों के के कोमल-प्राण छायावादी कवियों के लिए द्विवेदी युग की कर्म-कठोर, आचार-तप्त काव्य-भूमि अनुकूल न थी; अतः उन्होंने प्रेमाभिव्यक्ति की परोक्ष शैली अपनायी और अपने भाव-विलास के लिए दृश्य सीमा के उस पार एक कल्पना-लोक का निर्माण किया जहाँ कर्म का प्रकाश नहीं, स्वप्न की

चाँदनी छायी रहती है। कूर्माचल प्रदेश के कवि पंत ने क्षितिज से मिली हुई वृक्षावली की हरिताभ रेखा के उस पार उस 'छाया-वन'—उस सुकुमार सुषमा-लोक को देखा है, जहाँ स्वर्ग की परियाँ अभिसार रचती हैं—

दूर उन खेतों के उस पार,
जहाँ तक गई नील-झंकार,
छिपा छाया-वन में सुकुमार,
स्वर्ग की परियों का संसार।

—गु० पृ० ७४

कल्पना-लोक की यह यात्रा पलायनवाद के नाम से अभिहित हो चुकी है और इसके कारण छायावाद आक्षिप्त भी हो चुका है क्योंकि जब देश मुक्ति-आन्दोलन में संलग्न था तब छायावादी
पलायन-प्रवृत्ति कवि अंतरिक्ष में अभिसार सजा रहे थे। पर छायावाद
और पंत का पलायन कोई वैराग्य नहीं था। यह व्यक्तिगत जीवन-संघर्ष के क्षोभ की मनोवैज्ञानिक परिणति था। छायावाद जिस प्रेम-भावना और जीवन एवं काव्य के जिन नवीन मूल्यों (Values) को लेकर आया था, उन्हें तत्कालीन समाज की स्वीकृति (Sanction) नहीं मिली। छायावाद की चेतना वैयक्तिक बनी रही। ऐसी परिस्थिति में उन कवियों का, जो इन नवीन भावनाओं और मूल्यों को महत्त्वपूर्ण मानते थे, वेदनावादी या पलायनवादी बन जाना और अपने राग-विराग को एक कल्पना-लोक में रखकर आदर्श की तरह पूजना स्वाभाविक-सा था। पंत का प्राकृतिक दर्शन (Naturalistic philosopy) इसी पलायन-प्रवृत्ति का परिणाम है। जहाँ 'प्रसाद' जी 'नाविक' से अपने आकुल मन को भुलावा देकर कोलाहलपूर्ण अवनि से दूर उस लोक में ले चलने का आग्रह करते हैं जहाँ 'प्रेम-कथा'

निर्बाध रूप से चलती हो[1] और महादेवी 'उस पार' जाने को व्यग्र हैं—'कौन पहुँचा देगा उस पार'[2] वहाँ छायावादी पंत प्रकृति के प्रत्येक संकेत में, पत्तों और लहरों में प्रत्यक्ष जीवन के संघर्षों को छोड़कर 'उस पार' के आनन्दलोक में जाने का बुलावा पाते हैं और इस बुलावे पर वे संसार के दुःख-कष्ट को भूलकर आनन्द-विभोर हो जाते हैं—

कभी उड़ते पत्तों के साथ
मुझे मिलते मेरे सुकुमार,
बढ़ाकर लहरों से निज हाथ
बुलाते फिर मुझको उस पार;
नहीं रखती मैं जग का ज्ञान,
और हँस पड़ती हूँ अनजान !

—मुस्कान (आ० क० पृ० ७६)

पंत जी में पलायन की यह प्रवृत्ति मुख्यरूप से 'वीणा' से 'पल्लव' तक रही। 'पल्लव' के बाद एक प्रतिक्रिया हुई। 'गुंजन' का कवि वर्डसवर्थ के लावा पक्षी की भांति व्योम-विहार भी करना चाहता है और धरती पर संतरण भी। कवि का कल्पना-विहग नीलाम्बर में

---

१. ले चल मुझे भुलावा देर
मेरे नाविक धीरे धीरे
....

(प्रसाद जी के इस गीत की मीमांसा के लिए देखिए 'छायावन की रास' शीर्षक संदर्भ, पृ०१०)

२. सुना है जीवन के उस पार
बसा है सोने का संसार
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

उन्मुक्त उड़ान भरने को पर मारता है किन्तु जीवन की कठोरता उसके पंखों को जैसे बाँध लेती है--

निज इन्द्र धनुष-पंखों में
जो उड़ते थे तितली-से,
मैं भी फूलों के बन में
क्या इनके संग उड़ जाऊँ?
. . . .
--ना पीले-तारों से ही
मेरी कितनी ही बातें
कुम्हला चुपचाप गई हैं,
मैं कैसे उसे भुलाऊँ!

--गु० पृ० ६७-६८

'गुंजन' के बाद पंत प्रगतिवादी रूप में आते हैं। इस रूप में वे प्राकृतिक दर्शन और पलायनवाद की निन्दा करते हैं और मानते हैं कि छायावाद की मृत्यु के प्रमुख कारणों में उसकी वैयक्तिक और पलायन-प्रवृत्ति थी।[1] अब वे धरती से स्वर्ग की यात्रा करना नहीं चाहते; इस धरती को ही अपने श्रम और साधना से स्वर्ग बनाना चाहते हैं। अब जीवन का संघर्ष उन्हें प्रिय लगने लगता है--

---

१. हिन्दी कविता, छायावाद के रूप में ह्रासयुग के वैयक्तिक अनुभवों, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियों, ऐहिक जीवन की आकांक्षाओं सम्बन्धी स्वप्नों, निराशाओं और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने लगी और व्यक्तिगत जीवन संघर्ष की कठिनाइयों से क्षुब्ध होकर, पलायन के रूप में, प्राकृतिक दर्शन के सिद्धांतों के आधार पर, भीतर बाहर में, सुख दुख में, आशा निराशा और संयोग वियोग के द्वंद्वों में सामंजस्य स्थापित करने लगी।

--पंत (पर्यालोचन, आधुनिक कवि, पृ० १८)

बन गए कलात्मक भाव
जगत के रूप नाम,
जीवन संघर्षण देता सुख,
लगता ललाम।

——नवदृष्टि (आ० क० पृ० ७२)

प्रकृति-भावना

छायावादी कवि उपर्युक्त सौंदर्य-लोक में युग का 'हरनेत्र' बचा अध्यात्म और प्रकृति की ओट लेकर गए थे। रीतिकाल ने सौंदर्य-चित्रण के लिए देय पुरुषों का आलम्बन ग्रहण किया था, छायायुग ने प्रकृति और अव्यक्त सत्ता का। छायावादी कवि की प्रकृति 'रतिभाव भरित, थी। उन्होंने प्रकृति का प्रयोग प्रतीक के रूप में तो किया पर प्राय: अली, कली, लता, विटप, बादल, विद्युत आदि के प्रतीकों की ओट में हावभाव ही चित्रित होते रहे। निराला की 'जूही की कली' और 'शेफालिका' में धरती का प्रेम-व्यापार चित्रित है। पंत जी के लिए प्रकृति की एक-एक वस्तु 'प्रेम की चुहल' करती जान पड़ती है। उनके मधुबन में 'लोहित प्रात' उतरता है, 'उन्मद वात' डोलती है, 'मृदुल मुकुलों का मौनालाप' होता है और गगन से स्वर्ण-मरन्द झरता है।

उपवन फूलों के पियालों में यौवन भर-भरकर मधुकर को पिलाता है। छोटी लहर नवोढा नायिका की तरह कछार के फूल के निकट एक क्षण रुकती है और फिर तेजी से भाग जाती है——

देखता हूँ, जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिय भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को;
नवोढ़ा बाल-लहर
अचानक उपकूलों के

प्रसूनों के ढिग रुककर
सरकती है सत्वर ;

——'आँसू' से (आ० क० पृ० १७)

——आदि १ पंक्तियों में प्रकृति का गाढा यौनीय (Sexual) चित्रण है । कवि का मन यौन-परिकल्पनाओं से लदा है, जो उसकी सौंदर्य-चेतना को आक्रांत कर रही है । इस प्रकार बहुलांश में छाया-वाद की प्रकृति नारी की प्रतिकृति बन गई है। समें एक बात हो गई और वह यह कि अब प्रकृति पूर्व की भाँति **मानवीकृत** जड़ नहीं, हृदय के स्पन्दन और धड़कन से युक्त **चेतन प्रकृति** होकर एक सप्राण चेतन सत्ता बन गई । तब कवि के नयन प्रकृति-सुन्दरी के शारीरिक छवि-वैभव और वाह्य रूपालंकारों के निहारने में लग्न थे, अब कवि का मन उसके हृदय में छिपे मधु-कलश पर टिका था । जब प्रकृति दूती मात्र नहीं, स्वयं अभिसारिका भी थी । छायायुग में मानवीकृत (Personified) चेतन प्रकृति के अनेक चित्र 'चित्रित घाटी' के गायक पंत ने उपस्थित किए थे । 'चाँदनी' एक उदाहरण है । चाँदनी नीले आसमान के शतदल पर एक विशेष मुद्रा में मूक और एकाकिनी बनकर बैठी है, किरण-करों पर उसका चंद्रमुख है ।

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद-हासिनी,
मृदु-करतल पर शशि-मुख धर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिनी !

——चाँदनी (आ० क० पृ० ५९)

---

१. दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
वह छबि की छुई-मुई-सी
मृदु मधुर लाज से मर-मर ।

——चाँदनी (आ० क० पृ० ५९)

मदिर-शिथिल क्षण की चित्रवत् मुद्रा !

ऊँघते-ऊँघते वह सो गई। उसकी 'स्वप्न-जडित नत-चितवन' से तो ऐसा ही जान पड़ता है। हाँ, वह नदी के कछार पर निश्चेष्ट होकर सो रही है। मंद मलयानील उसकी साँस है, लहरे उसकी छाती की धड़कन !

वह सोई सरित-पुलिन पर
साँसों में स्तब्ध समीरण,
केवल लघु-लघु लहरों पर
मिलता मृदु-मृदु उर-स्पन्दन।

—चाँदनी (आ० क० पृ० ५६)

और देखते-ही-देखते उसकी नींद उचट गई। अरे, वह तो जैसे उड चली। चाँदनी कितनी चंचल ! तथाकथित जड प्रकृति कितनी प्राणवती ! कभी वह लहरो पर नाचती है और कभी गिरिशिखर पर जा खडी होती है।

अपनी छाया में छिपकर
वह खड़ी शिखर पर सुन्दर,
है नाच रहीं शत-शत छबि
सागर की लहर-लहर पर।

—चाँदनी (आ० क० पृ० ५६)

निवेदन किया जा चुका है कि छायावाद का सौंदर्य प्राकृतिक व्यापारों और आध्यात्मिक संकेतो के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ था। अत: छायावाद मे प्रकृति के रतिभावभरित प्रतीको के **आध्यात्मिकता** अतिरिक्त कल्पना-प्रधान आध्यात्मिकता का आवेष्ठन **का आरोप** भी मिलेगा। प्रकृति की तरह यह अध्यात्म भी साधन था, साध्य नही; अभिव्यक्ति था, अभिप्रेत नहीं। उसमे हीगल, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहस आदि का प्रभाव भी देखा जा सकता है पर अन्ततः यह एक रोमांटिक कवि का अध्यात्म था, सत का नही।

जिस तरह 'सौंदर्य-लक्ष्मी स्तव' के विधाता शेली ने प्रकृति में एक महती शक्ति की चचल, मधुर और रहस्यमय छाया देखी थी उसी तरह पंत ने भी 'प्रकृति में लोकोतर सत्ता का 'मौन निमंत्रण' सुनाना चाहा है ।

कनक - छाया में जबकि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुंजार ;
न जाने ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन !

——मौन निमंत्रण (आ० क० पृ० २१)

सध्या की सघन निस्तब्धता को झंकृत कर देने वाले झींगुर भी अपने भीतर एक असाधारण की उपस्थिति का परिचय देते हैं।

झींगुर के स्वर का प्रखर तीर, केवल प्रशान्ति को रहा चीर,
संध्या-प्रशान्ति को कर गंभीर ।
इस महाशांति का उर उदार, चिर आकांक्षा की तीक्ष्ण धार,
ज्यों बेंध रही हो आर-पार ।

——एक तारा (आ० क० पृ० ५३)

प्रकृति के कण-कण मे व्याप्त इस अनन्त अनिर्वचनीय चेतना ने कवि को विस्मय-विमुग्ध किया है।[१] यह विस्मय-भावना छायावाद और रहस्यवाद का सगम-स्थल है । इससे आगे का क्षेत्र रहस्यवाद का है । इस विस्मय से जिज्ञासा उत्पन्न होती है जो रहस्यवाद का प्रस्थान-विन्दु है । पत जी की कविताओ मे छाया और रहस्य की इस सधि-भूमि

छाया और रहस्य की संधि-भूमि

१. मैं चिर उत्कण्ठातुर
जगती के अखिल चराचर
यों मंत्र-मुग्ध किसके बल ?
——गुं० पृ० १२

का ही विशेष चित्रण हुआ है। उनकी 'मौन निमत्रण' शीर्षक कविता छायावाद और रहस्यवाद दोनो के उदाहरण-स्वरूप उपस्थित की जाती रही है और अनेक सुधी समीक्षक भी छायावाद और रहस्यवाद को सगा नार्थी मानते रहे है। 'चादनी' शीर्षक कविता भी इसी सधि-भूमि मे रची गई है। वह आत्मा के साथ विश्वात्मा को भी उपस्थित करती है। एक ओर वह दुलहिन बनकर सेज पर सोने का उपक्रम करती है, अस्फुट स्वप्नो का हार गूँथती है और दूसरी ओर सगुण-निर्गुण के बीच छिपे 'अनिर्वच' की रहस्य-भावना को भी उपस्थित करती जान पडती है--

वह है, वह नहीं, अनिर्वच,'
जग उसमें, वह जग में लय,
साकार-चेतना-सी वह,
जिसमे अचेत जीवाशय! १

--चाँदनी (आ० क० पृ० ६१)

'एक तारा' एक जगताकार व्यक्ति का प्रतीक होने के साथ ही 'अनन्त का मुक्त मीन' भी है।

वह रे अनन्त का मुक्त मीन, अपने असंग सुख मे विलीन
स्थित निज स्वरूप में चिर-नवीन।

--एक तारा (आ० क० पृ० ५४)

इस प्रकार पत जी को प्रकृति ने चेतन 'छबि' के साथ 'भेद भरे संदेश' भी दिए है--

---

१. नहिं निरगुन नहिं सरगुन जानो।
निरगुन सगुन माझ लुपानो॥

--महात्मा अक्षर आनन्द

खोल कलियों ने उर के द्वार
दे दिया उसको छबि का देश;
बजा भौंरो ने मधु के तार
कह दिये भेद भरे संदेश ;
——गु० पृ० ७४

पर अपने प्रकृत रूप मे छायावाद पश्चिम की वैयक्तिकता-प्रधान स्वच्छंद काव्यधारा का भारतीय स्वरूप था। उसकी अनुभूति और अभिव्यंजना दोनो वैयक्तिक थी। इस दृष्टि से छायावाद को मैं–शैली की कविता भी कह सकते हैं क्योंकि उसमें अहम् का विस्फोट हुआ था। छायावाद मे प्रथम पुरुष का प्रयोग लगभग सर्वत्र हुआ है। यह एक बडा अन्तर है पुरानी और छायावादी कविताओ में। भारतीय काव्यपरम्परा मे (सस्कृत काव्य आदि मे) भावो का प्रकाशन नायक, नायिका तथा अन्य पात्रों के द्वारा होता रहा। यह पद्धति न केवल प्रबधो की थी वरन् गीति की भी (जैसे 'मेघदूत' आदि की)। यदि कही किसी कवि ने एक पक्ति या श्लोक मे अपनी बात कह दी तो उसे सर्वथा अपवाद ही माना जाएगा। किन्तु छायावाद गीतितत्त्व के वैयक्तिक पक्ष को उभार कर चला था। छायावाद का कवि अपने राग-विराग को अपना कहकर प्रगट करते थे। शेष सब कुछ उनके लिए महज शैली-भर था।

वैयक्तिक आत्म–भिव्यंजना

मैं मन्द-हास--सा उसके
मृदु अधरो पर मँडराया
——उच्छ्वास' की बालिका (आ० क० पृ० १०)
बालकों-सा ही तो मैं हाय !
याद कर रोता हूं अनजान;
——'आँसू' की बालिका (आ० क० पृ० १२)

बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।

—पर्वत प्रदेश मे पावस (आ० क० पृ० १४)

मेरा पावस ऋतु-सा जीवन

....

मेघों से मेरे भरे नयन !

—'आँसू' से (आ० क० पृ० १५)

नहीं रखता मैं जग का ज्ञान,

—मुसकान (आ० क० पृ० २६)

निमंत्रण देता मुझको मौन !

—मौन निमंत्रण (आ० क० पृ० ३०)

मैं नहीं चाहता चिर सुख
मैं नहीं चाहता चिर दुख

—सुख-दुख (आ० क० पृ० ५०)

मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान

—नौका-विहार (आ० क० पृ० ५८)

इन उद्धरणों मे प्रथम पुरुष के सर्वनाम 'मैं' और उसके विभिन्न रूपों का प्रयोग हुआ है। वैसे 'मैं' समाज और उसकी आकाक्षाओं का भी प्रतिनिधित्व कर सकता है किन्तु ऊपर के उद्धरणों मे 'मैं' कवि के व्यक्तिगत भाव विचार (मैं नही चाहता चिर सुख), व्यक्तिगत आनन्द (नहीं रखता मैं जग का ज्ञान) और व्यक्तिगत पीडा (बालको सा... रोता हूँ, अनजान) का द्योतक है। छायावाद की वैयक्तिकता बडी उद्दाम है। छायावाद काव्य में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की क्रांति था। उसमे समाज बनाम व्यक्ति का संघर्ष था।

छायावाद में वेदना

किन्तु छायावाद की व्यक्ति-स्वातंत्र्य की यह क्रांति समाज से टकराकर लौट आयी। तत्कालीन आदर्शवादी इतिवृत्तवादी समाज ने छायावाद के प्रेम-भावो, जीवन-दर्शन और धुंधली अभि-

व्यक्ति में से किसी को मान्यता नहीं दी। छायावाद का जन्म कुसायत मे हुआ और वह आरम्भ से ही उपहास का विषय रहा। ऐसी परिस्थिति मे छायावादी कवियो में समाज और आलोचको के प्रति एक क्षोभ का होना स्वाभाविक था। इस क्षोभ के कारण छायावादी कवियो मे एक ओर उपेक्षा का भाव आया और वे उस समय के आलोचको को 'दुर्वासा', 'कठफोडा' आदि कहने लगे किन्तु दूसरी ओर उनका उपचेतन अध्यात्म और वेदना की ओर झुक गया। यह ध्यान रखने की बात है कि अध्यात्म और वेदना समाज मे सहज ही सहानुभूति पा लेते है। एक बात और। छायावादी कवि प्रेमी जीव थे और उद्दाम प्रेम मे पीड़ा एव विरह-भावना का आना स्वाभाविक है। फलस्वरूप छायावाद मे वेदना का पक्ष भी प्रबल रहा और छायावाद वेदनावाद भी कहलाने लगा। पंत मे यह वेदना 'ग्रंथि' से 'पल्लव' तक रही। 'ग्रथि' तो एक प्रत्यक्ष विरह-काव्य है। 'आँसू की बालिका' शीर्षक कविता मे पत एक विरही की तरह अपने उच्छ्वासो को प्रगट करते है। प्रिया का ध्यान आते ही उनकी आँखों मे आँसू उमड आता है, वे बालक की तरह फूट-फूटकर रोने लगते है और सयानो की तरह कलेजा थाम लेते है––

विधुर उर के मृदु भावों से
तुम्हारा कर नित नव शृंगार,
. . . .
पिघल पड़ते हैं प्राण
उबल चलती हैं दृग जलधार !
बालकों सा ही तो मैं हाय !
याद कर रोता हूँ अनजान ;
. . . .
मूंद पलकों मे प्रिया के ध्यान को,
थाम ले अब, हृदय ! इस आह्वान को !

त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य पावन स्थान को !

——आँसू की बालिका (आ० क० पृ० १२)

'पल्लव' की 'आँसू' शीर्षक कविता मे पत कहते हे कि मेरा सम्पूर्ण काव्य ही विरह-वेदना का काव्य है, उसके अक्षर-अक्षर मे हृदय का कम्पन शब्द-शब्द मे किसी की याद की कसक है——

आह, यह मेरा गीला-गान !
वर्ण-वर्ण है उर की कम्पन,
शब्द-शब्द है सुधि की दंशन,
चरण चरण है आह,

धीरे-धीरे यह वेदना प्रिय हो जाती ह । पत वियोग को वरदान समझने लगते है और मानने लगते है कि वेदना मे ही कविता का जन्म होता है——

विरह है अथवा यह वरदान !
कल्पना में है कसकती—वेदना,
अश्रु मे जीता, सिसकता गान है,
शून्य आहों मे सुरीले छन्द है;
मधुर लय का क्या कहो अवसान है !
वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान ;
उमड़ कर नेत्रों से चुपचाप
वही होगी कविता अनजान !

——'आँसू' से (आ० क० पृ० १५)

किन्तु 'पल्लव' के बाद पत के दृष्टिकोण मे परिवर्तन होता है और 'गुंजन' (१९३०-३२) तक आते-आते भारतीय दर्शन के अध्ययन-अनुशीलन से उनमें जीवन के प्रति एक अपूर्व हर्षपूर्ण दृष्टिकोण उत्पन्न

होता है। वेदना और पीर समाप्त हो जाती हैं और वे जीवन को बड़े आशा एवं विश्वास से देखने लगते हैं।

इस प्रकार छायावाद एक प्रकार के नये भाव-तत्त्व तथा अनुभूति को लेकर आया था। और, जब भाव बदलता है तब उसके साथ अभिव्यक्ति की शैली भी बदलती है। द्विवेदीयुग के इतिवृत्तात्मक काव्य की भाषा इतिवृत्त के अनकूल सीधी-सादी, अभिधाविशिष्ट और सादृश्यमूलक अलंकारों से युक्त थी।

शैली के प्रसाधन

अब काव्य के विषयों के साथ उसके प्रसाधन के उपकरण भी बदल गए। छायावाद की परिवर्तित अनुभूति अभिव्यक्तिक का नवीन गवाक्ष खोला जिसकी भाषा व्यंजना-विशिष्ट, उपचार-वक्र और सूक्ष्म-क्लिष्ट साम्यों पर आधृत नवीन लाक्षणिक अलंकारों---मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय (Transferred epittest), ध्वनि--अलंकार---आदि से युक्त है। 'चाँदनी' मानवीकरण के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

चाँदनी नवागता दुलहिन बनकर आई है और रात की सेज पर पाँव रखते समय लाज के मारे सिहर-सहम रही है, लाख-लाख पुलकों से भर रही है।

दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
वह छबि की छुई मुई-सी
मृदु मधुर लाज से भर-भर।

--चाँदनी (आ० क० पृ० ५६)

विशेषण-विपर्यय के उदाहरणों से तो पंत का समस्त काव्य-साहित्य ओतप्रोत है। पंत में 'किरणों की करुण कोर', 'स्वप्नों की सजग भोर', 'छबि का मदिर तीर' आदि की पग-पग पर व्यवस्था है।

किस स्वर्ण-किरण की करुण कोर
कर गई इन्हें सुख से विभोर ?
किन नव स्वप्नों की सजग-भोर ?

——गुं० पृ० ३२

अप्रस्तुत-विधान की एक विशेषता

पंत जी के अप्रस्तुत-विधान की एक और विशेषता है जिससे यह सिद्ध होता है कि उनमें सर्जनात्मक शक्ति और कल्पना का विपुल ऐश्वर्य है। साधारणतः अदृश्य उपमेय के लिए दृश्य उपमानों की योजना की जाती है, जैसे गुलाब-सा सुन्दर, वायु-सा चचल, गगन-सा व्यापक, सागर-सा गम्भीर इत्यादि। किन्तु पंतजी ने कहीं-कहीं उस क्रम को उलट दिया है। ऐसे स्थलों पर वे दृश्य के लिए अदृश्य प्रस्तुतों का विधान करते हैं और रूप का बोध गुणों के द्वारा करना चाहते हैं। 'भावी पत्नी' को (जो कवि की चित्रमयी कला का श्रेष्ठ उदाहरण है) कवि ने—

'मृदुल उर कम्पन-सी वपुमान'
मधुरता, मृदुता-सी तुम प्राण !'
'सरल शैशव-सी तुम साकार'
'प्रणय का-सा नवगान'

——आदि कहा है।

व्याकरण-स्वातंत्र्य

छायावाद में एक असंगति है——विद्रोह और पलायन की। वह विद्रोह लेकर आया था पर आदर न पाकर पलायनवादी बन गया था। वैसे तो उसका विद्रोही स्वर सर्वत्र रीति-नीति में सुनाई पड़ता है पर भाषा और छंद में वह विशेष रूप से प्रगट हुआ है। निराला ने पिंगल की कड़ियाँ तोड़ी हैं और पंत जी ने पिंगल के साथ व्याकरण की ग्रंथियाँ भी ढीली की है। उन्होंने चित्र-सौकुमार्य के लिए 'गुञ्जन'

'प्रभात', 'गर्जन' इत्यादि पुल्लिग शब्दो का स्त्रीलिग के रूप में व्यवहार किया है । १

छायावाद पर विदेश के रोमांटिक कवियो और स्वदेश के रवि बाबू की जो छाप पड़ी थी उससे पंत जी ही सबसे अधिक प्रभावित हुए है। उन्होंने स्वीकार किया है कि 'वीणा' रवीन्द्रनाथ की 'गीताञ्जलि' से, 'ग्रंथि' संस्कृत काव्य से और 'पल्लव' शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स, टेनिसन आदि से प्रभावित है।२ पंतजी के अनुसार इसी पाश्चात्य प्रभाव के कारण छायावाद आधुनिक लगता था। ३ पंत जी मे शेली की

पंतजी पर बाह्य प्रभाव

१. उद्धरण के लिए देखिए 'भाषा-शैली' शीषक संदर्भ पृ० ६८

२. पल्लवकाल में मैं उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी कवियों—मुख्यतः शेली, वर्डसवर्थ, कीट्स और टेनिसन—से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीनयुग का सौंदर्यबोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन-स्वप्न दिया है । रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की, मशीन युग की, सौंदर्य-कल्पना ही में परिधानित किया है । पूर्व और पश्चिम का मेल उनके युग का स्लोगन भी रहा है । इस प्रकार से कवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार करता हूँ। और यदि लिखना एक Unconscious-conscious process है तो मेरे उपचेतन ने इन कवियों की निधियों का यथारुचि उपयोग भी किया है, और उसे अपने विकास का अंग बनाने की चेष्टा की है।

—पंत (पर्यालोचन, आधुनिक कवि, पृ१६)

३. द्विवेदी युग के काव्य की तुलना में छायावाद इसीलिए आधुनिक था कि उसके सौंदर्यबोध और कल्पना में पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ गया था और उसका भाव-शरीर द्विवेदी युग के काव्य की परम्परागत सामाजिकता से पृथक हो गया था। —वही

व्योमविहारिणी कल्पना, कीट्स की मादक अनुभूति, टेनिसन की स्वर-माधुरी और वर्डसवर्थ का प्रकृति-प्रेम है। 'चाँदनी' की तुलना शेली की 'दी वेनिंग मून' से की जा सकती है।

जग के दुख-दैन्य-शयन पर
यह रुग्ना जीवन-बाला
रे कब से जाग रही, वह
आँसू की नीरव माला !
पीली पड़, निर्बल, कोमल,
कृश-देह-लता कुम्हलाई
विवसना लाज में लिपटी
साँसों में शून्य समाई ।

——चाँदनी (गु० पृ० ३४)

And like a dying lady, lean and pale,
Who totters forth, wrapped in gauzy veil.

—*The Waning Moon* (*Shelley*)

'मधुवन' की कविताओं में कीट्स की कला की मादकता है और 'नौकाविहार' में टेनिसन का-सा स्वर-माधुर्य। 'भावी पत्नी' में रवीन्द्र नाथ की उर्वशी की शब्द-प्रतिध्वनि भी है——

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात
विकम्पित उर मृदु, पुलकित गात
सशंकित ज्योत्सना-सी चुपचाप
जड़ित पद नमित पलक दृगपात
पास जब आ न सकोगी प्राण

(भावी पत्नी के प्रति)

द्विधाय जड़ित पदे, कम्पवक्षे, नम्र नेत्र-पाते
स्मितहास्ये नाहि चल, सलज्जित वासर शय्याते
स्तब्ध राते ।

——उर्वशी

हिन्दी की छायावादी काव्यधारा मे पतजी का एक विशिष्ट स्थान है। छायावाद ने प्रसाद जी की पक्तियो मे नयन खोले, सुनते हैं, मुकुटधर पाण्डेय ने उसका नाम-सस्कार किया और पत जी ने उसे लोकप्रिय बनाया। छायावाद के तीन प्रजापतियो मे प्रसाद सबसे अधिक गरिमामय थे, निराला सबसे अधिक पौरुषपूर्ण और पत सबसे अधिक मृदुल कोमल-प्राण। प्रसाद जी ने छायावाद को कल्पना की एकतानता दी, निराला ने उसे दर्शन की दृढता दी, महादेवी ने अपने हृदय की करुणा से उसे स्नात किया और पत जी ने उसे रूप की कोमलता, मन की प्रसन्नता और वाणी की स्निग्धता दी। छायावाद, एक प्रकार से, प्रकृति एव प्रेम-काव्य था और उसकाल मे चेतन प्रकृति के मोहक चित्र सबसे अधिक पत जी ने ही उपस्थित किये थे। लब पत जी की कविता का प्रभाव महादेवी जी पर भी पडा था। छायायुग मे पत जी ने पिगल के साथ व्याकरण की कडियाँ भी तोडी थी और उन्होंने पहली बार 'पल्लव' की भूमिका मे छायावाद के बहिरग पर प्रकाश डाला था था उसके स्वरूप का निर्धारण किया था। यही नही, जब छायावाद के भाव, भाषा, छद की कटु आलोचना हो रही थी और छायावादी कवियो के कार्टून बन रहे थे तब पत जी ने दृढता से छायावाद के पक्ष का समर्थन किया था। पर छायावादी कवियों में सर्वप्रथम छायावाद के भाव और कला-पक्ष दोनो का सैद्धान्तिक विरोध करनेवाले भी पतजी ही थे। भाव-पक्ष का विरोध यह कह कर किया कि छायावाद मे 'युग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश' नही था, वास्तविकता नही थी।[१] कला-पक्ष का विरोध

छायावाद और पंत

१. वह (छायावाद) नये युग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नहीं कर सका था। उसमें व्यावसायिक क्रांति और विकासवाद के बाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की 'अन्नवस्त्र' की धारणा (वास्तविकता) नहीं आयी थी।
—पर्यालोचन (आधुनिक कवि, पृ० १८)

यह कह कर किया कि 'संक्रांतियुग' की वाणी के विचार ही उसके अलंकार हैं।१ छायावादी कवियों में उन्होंने ही छायावाद की मृत्यु की सूचना हिन्दी जगत् को दी थी और कहा था कि 'छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी, नवीन आदर्शों का प्रकाशन, नवीन भावना का सौंदर्यबोध और नवीन विचारों का रस नहीं था।२

---

१. तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार

से मेरा यही अभिप्राय है कि संक्रांतियुग की वाणी के विचार ही उनके अलंकार हैं। —वही पृ० १७

२. वही, पृ० १७

रहस्यवाद और पंत

रहस्य शब्द 'रहस्' से बना है जिसका अर्थ है गूढ, गोपनीय आदि। प्रत्येक पदार्थ मे चेतना का बोध छायावाद है और उस चेतना मे सम्पूर्ण जगत् को शासित करनेवाली, एक विश्वव्यापिनी गूढ सत्ता की अनुभूति रहस्यवाद है। ज्ञान के क्षेत्र मे इस प्रकार की अनुभूति अद्वैतवाद कहलाती है। अन्तर यह है कि अद्वैतवाद मे विश्वात्मा की अनुभूति जहाँ अभेदमूलक और ज्ञानाधृत होती है वहाँ रहस्यवाद मे बोधपूर्ण और प्रेमाश्रित। दूसरे शब्दो मे अद्वैतवाद का पडित उस सत्ता को निरपेक्ष ब्रह्म के रूप मे देखता है और पाता है कि उसमे और ब्रह्म मे कोई भेद ही नही है, वल्कि उसकी (द्रष्टा की) कोई सत्ता ही नही है, जो कुछ सत्ता है वह ब्रह्म की ही है। ऐसी परिस्थिति मे सुख-दुःख अद्वैतवादी को नही व्यापता, मानवीय सम्बन्धो का वह अतिक्रमण कर जाता है। रहस्यवादी कवि उस सत्ता के विस्तार और सौदर्य को प्राकृतिक छवियो मे देखता है। उसे लगता है कि कोई अपूर्व सौदर्य-सत्ता जगत् मे केलि कर रही है और प्रत्येक प्राणी को उस केलि मे सम्मिलित होकर आनन्दविभोर होने का निमत्रण दे रही है। आनन्द के अनुभव के लिए अनुभावक के अस्तित्व का बना रहना आवश्यक है। यदि अनुभावक की सत्ता नही रहेगी और ब्रह्म के साथ उसका अभेद हो जाएगा तब अनुभव कौन करेगा ? इसलिए रहस्यवादी कवि अपनी सत्ता का बोध बनाए रखकर विश्वात्मा से तादात्म्य स्थापित करता है। अत वह मानवीय सम्बन्धो से उसे अपनाता है। कबीर ने उसे पिया, यार, सखा आदि कहा है। चूँकि मानवीय सम्बन्धों मे दाम्पत्य-सम्बन्ध दो सत्ताओं की एकता का चरम

रहस्यवाद का स्वरूप

सम्बन्ध है इसीलिए रहस्यवाद मे 'मधुर भाव' की प्रधानता रही है। कबीर अपने को 'राम की बहुरिया' कहते है। पत कही सौदर्य-सत्ता को मा, सहचरी या प्राण कहते है और कही उसे पुरुष मानकर स्वयं को नारी मान लेते है। इस प्रकार कह सकते हैं कि जिस प्रकार छायावाद से आगे की चीज रहस्यवाद है उसी प्रकार रहस्यवाद से आगे की चीज अद्वैतवाद (जहाँ ज्ञाता और ज्ञेय का अन्तर मिट जाता है) है।

रहस्यवाद की अनुभूति के विकास का क्रम स प्रकार है---चरम सौदर्य का बोध-विस्मय→जिज्ञासा→अपनापन की अनुभूति, समर्पण →आनन्द एवं विरह।

सर्वप्रथम प्रकृति के पदार्थों मे एक चरम सौदर्य चेतना का बोध और उसके प्रति विस्मय उत्पन्न होता है। विस्मय उस चेतना को जानने की जज्ञासा उत्पन्न करता है और उसे जानने की क्रिया (Process) मे रहस्यवादी को अनुभव होता है कि वह सौदर्य--चेतना विश्व को परिचालित करनेवाली, सृष्टि का कारण-स्वरूप विराट् अज्ञेय सत्ता है जिससे उसका जन्म-जन्म का स्नेह-सम्बन्ध है और जिससे बिछुडकर वह दुःख पा रहा है। अपनापन की इस अनुभूति मे रहस्यवादी अपना समर्पण करता है। उस सत्ता के प्रेम मे आत्मविभोर हो जाता है। उसके साथ केलि करने मे उसे अपार आनन्द का बोध होता है, उससे (भौतिक कारणों से) विरह अनुभव करते समय अपार दुःख होता है।

संक्षेप मे विस्मय रहस्यवाद का आरम्भ है, प्रेमानुभूति उसका मध्यस्थल है और आनन्द एवं विरह उसकी परिणति।

रहस्यवाद के आराध्य (गूढ, अज्ञेय सौदर्य--सत्ता) और उसके प्रति प्रेम की यह कहानी अकथ है। वह 'नैनन-बैनन' से नहीं कही जा सकती; सकेतो और प्रतीको से इंगित की जा सकती है। परिणाम-स्वरूप-रहस्यवाद में प्रतीकात्मक भाषा (Symbolical language) का योग अनिवार्य हो जाता है।

अनुभव के मा॰यम के अनुसार रहस्यवाद के तीन प्रकार–ज्ञानात्मक, भावात्मक और साधनात्मक, कुछेक विद्वानो (रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति) के द्वारा, माने गए हैं। उपकरण के अनुसार स्परजन आदि ने रहस्यवाद के निम्नलिखित भेद माने हे–– सौद ।' परक रहस्यवाद १ (Beauty mysticism), भक्ति-परक रहस्यवाद २ (Devotional mysticism) दर्शन परक रहस्यवाद ३ (Philosopihcal mysticism), प्रकृति-परक रहस्यवाद ४ (Nature mysticism), प्रेम-परक रहस्यवाद ५ (Love mysticism) और शिशुपरक रहस्यवाद (Child mysticism) ६ ।

रहस्यवाद के भेद

शब्द की दृष्टि मे रहस्यवाद (रहस्य नही) एक अत्यन्त आधुनिक शब्द है, रवि ठाकुर ओर पत-प्रसाद-निराला-महादेवी के काव्य के साथ जनमा हुआ। पर वाद के लिहाज से रहस्यवाद अत्यत प्राचीन है, उतना ही जितना भारतीय ब्रह्म-ज्ञान। रहस्यवाद का आरम्भिक रूप वेदो मे मिलता है। ऋग्वेद मे अज्ञात सत्ता के साथ मानवनीय सम्बन्ध स्थापित किए गए हे।७ सृष्टि के आविर्भाव की विस्मयपूर्ण अभिव्यक्ति

रहस्यवाद का भारत मे विकास

१. कीट्स, ंत आदि में ।

२. दादू, मीरा, महादेवी आदि में ।

३. निराला आदि में ।

४. ंत, वर्ड्सवर्थ आदि में ।

५. प्रसाद, शेली, भारतीय आत्मा आदि में ।

६. रवीन्द्र, ब्लेक आदि में

७. स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । स च स्वा नः स्वस्तये ।
(हे अग्नि तुम हमारे लिए उतने सुलभ हो जितना पुत्र के लिए पिता होता है.....)

की गई है ।१ दार्शनिक तथ्यों को प्रेम-कथानकों (यम-यमी-संवाद आदि), रूपकों और प्रतीकों (दो पक्षियों की कहानी)२ से प्रगट किया गया है ।

उपनिषदों में वैदिक रहस्यवाद अधिक विकसित और भावात्मक हो उठा है । यहाँ चिंतक का मन बाह्य सौंदर्य से हटकर आदर्श और आन्तरिक सौंदर्य की ओर बढ़ गया है । यहाँ अज्ञात सत्ता के प्रेम-सम्बन्ध की तुलना दाम्पत्य प्रेम से की गई है । भगवान् को 'रसो-वै स' (वह रस ही--शृंगार, आनन्द ही--है) कहा गया है । हाँ उपनिषदों में कल्पना से अधिक चिन्तन की प्रधानता है ।

कपिल द्वारा प्रतिपादित सांख्यशास्त्र में दाम्पत्य सम्बन्ध के आधार पर दार्शनिक सिद्धांतों की विवेचना हुई है । ईश्वर को पुरुष और प्रकृति को नटी कहा गया है । यह प्रेमपरक विवेचन एवं पुरुष-प्रकृति का पक्ष भावात्मक रहस्यवाद की भावभूमि लिए रहता है ।

नवीं-दसवीं शताब्दी के लगभग नालन्दा और विक्रमशिला के आसपास बौद्धधर्म के ह्रास से एक तान्त्रिक संस्कृति फैली । इसके उन्नायक थे सिद्ध (बौद्ध तान्त्रिक) और शाक्त । इस तान्त्रिक साधना में रहस्यवाद ने एक अत्यंत गुह्य रूप धारण किया ।

हिन्दी में रहस्यवाद का चरम विकास कबीर में हुआ और बंगला में रवीन्द्र में । भक्त कवियों में सूरदास के कुछेक और मीरा के अनेक पद रहस्यवादपरक हैं । कबीर-मीरा और रवीन्द्र में मौलिक अन्तर यह है कि कबीर साधक है, रवीन्द्र प्रेमोपासक कवि । कबीर

---

१. नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यत् ।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन् अम्भः किमासीत् गहनं गभीरम् ।
(सृष्टि के आरम्भ में न सत् था, न असत्, न रज, न आकाश । तब बुधलेपन में उसे क्या घेरे था ? क्या अतल-गहन जल था ?)

२. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।

स.धना के मार्ग पर चलकर, अपने को मव प्रकार से योग्य वनाकर, प्रभु तक जाना चाहते है। रवीन्द्र की सौदर्य-कल्पना में वह 'सुन्दर' स्वयं ही हाथो मे पारिजात का फूल लिए आ जाता है।१

हिन्दी के आधुनिक छायावादी कवियो मे साधनापूत, सहज प्रकशित रहस्यवाद नही वरन् कलात्मक, रहस्य-चित्र मिलेगे । वे सभी नवयुवक कवि स्वभाव से रोमॉटिक थे, मत नही। उनमे इश्कमजाजी की ही प्रधानता थी, इश्कहकीकी की नही। छायावादी कवियो के काव्य मे नारी थी, ब्रह्म नही। प्रकृति चित्रो की विभिन्न भगिमाओ मे नारी के ही रूप-विलास, सयोग-वियोग का चित्रण हुआ था। फिर भी इन कवियो के काव्य मे रहस्यवाद का एक आभास-सा मिलता है। इसका कारण यह है कि नारी और उसके प्रति प्रेम का जो स्वच्छद-वादी रूप लेकर पत आदि चले थे वह तत्कालीन साहित्यिक समाज मे स्वीकृत नही था। ये कवि उपहास के पात्र हो रहे थे और आलोचक नके काव्य मे 'नोकीले काटे' और 'कुत्सित कर्मनाशा की नयी नदी' देखते थे।२ कुछ कवि घर के पास कायिक रोमास के लिए बदनाम भी थे। दूसरी ओर रवीन्द्रनाथ और अग्रेजी के रोमाटिक कवि, इस प्रेम-भावना और सौदर्य की एक सूक्ष्म, आध्यात्मिक, रहस्यपूर्ण ढग से अभिव्यक्ति कर रहे थे। इन कवियो के अध्ययन-मम्पर्क मे छाया-वादी युवक-मण्डल आ चुका था। पत मे रहस्यवाद का एक सम्कार यों भी वर्त्तमान था और वह था सौदर्य के प्रति एक अदम्य जिज्ञासा और मूक ममर्पण का भाव। फलस्वरूप अभिव्यक्ति का एक निरापद मार्ग उन्हें मिल गया। उन्होने रहस्यवाद की सम्पूर्ण शैली ले ली, उसका भाव-विन्याम ले लिया। नारी अशरीरी सौदर्य-सत्ता (Spirit

पंत के रहस्यवाद का स्वरूप

---

१. सुन्दर, तुमि ऐसे छिले आजि प्राते,
अरुण वरण पारिजात लये हाते।

२. विस्तार के लिए देखिए 'छायावन की रास' शीर्षक संदर्भ

of beauty) बनी। पंत ने उसे 'आत्मा का चिर धन', 'छबि की छबि' आदि कहा। सम्पूर्ण जगत् मे विस्तारित होकर वह नारी-सौदर्य ब्रह्म-सौदर्य-सा दीखने लगा। भाषा लाक्षणिक और प्रतीकात्मक थी ही। अत समासोक्ति-पद्धति पर लिखे गए पंत के प्रकृति-प्रेम-गीत ऊपरी ढग से (सतही तौर पर) देखने में रहस्यात्मक लगेंगे और उनमे रहस्यवाद की ये सभी विशेषताएँ मिलेगी।१

पंत ने अपनी सौदर्य-भावना और आसक्ति को प्राय: प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया है। इसलिए उनके रहस्यात्मक संकेतो का आभास सबसे अधिक उनके प्रकृति-चित्रणो मे ही मिलता है और इसीलिए पंत आधुनिक हिन्दी काव्य मे प्रकृति-रहस्यवाद (Nature mysticism) के प्रवर्त्तक माने गए है। पंत ने प्रकृति की ओट में 'प्रिय' की ही झाँकी पाई थी --

पंत का प्रकृति-रहस्यवाद

शरद के निर्मल तिमिर की ओट में
नव मिलन के पलक दल सा झूमता
कौन मादक कर मुझे है छू रहा
प्रिय तुम्हारी मूकता की आड़ से ?

--ग्रंथि से (आ० क० पृ० २२)

ऐसी परिस्थिति मे पंत के लिए प्रकृति दृष्टि का विषय नही, अनुभूति का विषय बन जाती है। कवि का मन प्रकृति के बाह्य रूपालकारों पर उतना नही टिकता जितना किसी अज्ञात सौदर्यसत्ता का संकेत देनेवाली उसकी आत्मा पर--

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल ने पंत जी के रहस्यवाद को इसी सतही दृष्टि से देखा था और कहा था कि 'पंत जी की रहस्य-भावना अधिकतर स्वाभाविक पथ पर पाई जाती है।'

वह खड़ी दृगों के सम्मुख
सब रूप, रेख रंग ओझल,
अनुभूति-मात्र-सी उर में
आभास शान्त, शुचि, उज्ज्वल !

—चाँदनी (आ० क० पृ० ६१)

पंत सर्वत्र ही प्रकृति में एक शान्त, पवित्र और आदर्श संकेत पाने का दावा करते हैं। स्वभावत वे प्रकृति के अन्तर्सौंदर्य का ज्यादा वर्णन करते हैं। अन्तर्सौंदर्य रखनेवाली प्रकृति चेतन ही होगी, जड़ नहीं। फलत पंत के लिए सरित-प्रवाह जड़ जलधार नहीं है वरन् उसमें चेतना को नियन्त्रित करनेवाली चिर विकासपूर्ण आत्मा का अस्तित्व है—

अन्तर्छवि और सर्वचेतना

आत्मा है सरिता के भी
जिससे सरिता है सरिता

—गु० पृ० १४

इस प्रकार कवि की सौंदर्य-भावना नारी और प्रकृति दोनों क्षेत्रों मे विस्तारित होकर सर्वचेतनवादी (Pantheist) बन गई है।

अलौकिक सत्ता और विस्मय-भावना

इस स्थिति से आगे चलने पर उसे लगता है कि प्रकृति की चेतना भी एक महत्तर चेतना, एक विराट् और सूक्ष्म-तर चेतना से शासित हो रही है। इस अनुभूति से विस्मय और जिज्ञासा उत्पन्न होते हैं और इसी विस्मय या जिज्ञासा से रहस्यवाद शुरू होता है।[१]

पंत को लगता है कि विहगिनी किसी अज्ञात सत्ता की प्रेरणा से ही हर भोर को चहक उठती है—

१. कहना न होगा कि यह परिस्थिति कवि के प्रकृति-समर्पण से उत्पन्न हुई है। पंत ने अपने राग-विराग को प्रकृति में स्थान किया। क्रमशः अपनी आत्मा में होनेवाली अलौकिक अनुभूति (जो किन्हीं क्षणों में हर मनुष्य को होती है) भी प्रकृति में प्रतिबिम्बित हो गई।

कूक उठी सहसा तरु-वासिनि !
गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुमको अन्तर्यामिनि ?
बतलाया उसका आना ?

——प्रथम रश्मि (आ० क० पृ० ३)

जिस प्रकार मनुष्य संकट-काल में, अपनी समस्त आकांक्षाओं को लेकर खामोश आसमान की ओर जैसे किसी के मूक अनुग्रह के लिए देखता है उसी प्रकार पहाड़ के अचल में खड़े वृक्ष भी देखते हैं——

गिरिवर के उर से उठ-उठ कर!
उच्चाकांक्षाओं-से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर,
अनिमेष, अटल, कुछ चिन्ता पर

——पर्वत प्रदेश में पावस (आ० क० पृ० १३)

पंत समस्त प्रकृति के चर-अचर को एक विराट् अज्ञात सत्ता की ओर आकर्षित और उसपर मुग्ध देखते हैं। तब उन्हें बड़ा कौतूहल और विस्मय होता है, उसके प्रति बड़ी उत्कंठा और जिज्ञासा होती है——

शांत सरोवर का उर
किस इच्छा से लहराकर
हो उठता चंचल, चंचल ?
....
मैं चिर उत्कंठातुर
जगती के अखिल चराचर
यों मौन-मुग्ध किसके बल !

——गु० पृ० १२

इस भाँति प्रकृति के अणु-अणु में अभिव्याप्त अनन्त की ज्योति ने कवि को विस्मय-विमुग्ध किया है।१ यही विस्मय-भावना रहस्य-

१. विस्मय की यह भावना पंत जी में इतनी अधिक है कि कुछ लोग उन्हें रहस्यवादी न मानकर केवल विस्मयवादी मानते हैं।

वाद का बीज है। विस्मित ज्ञाता में ज्ञेय के प्रति जिज्ञासा का होना स्वाभाविक है। इस विस्मय-भावना ने कवि के मन में जिज्ञासा उत्पन्न की है जिसमें रहस्यवाद का बीज अंकुरित होता है। पंतजी की अनेक कविताएँ जिज्ञासा-परक हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में कवि के प्राण 'चिरधन' के अनुसंधान में आकुल हैं——

क्या मेरी आत्मा का चिरधन !
मैं रहता नित उन्मन-उन्मन !

जीवन की उस परम निधि के अभाव में, जिसके प्रेम-सूत्र में अखिल संसृति ग्रथित है और जिसके संगीत का स्वर-विस्तार सांत को अनन्त से मिलाता है, कवि को सारा-संसार सूना-सूना, अस्तव्यस्त और विशृंखल लगता है——

आते कैसे सूने पल
जीवन में ये सूने पल ?
जब लगता सब विशृंखल,
तृण, तरु, पृथ्वी नभ-मण्डल।
——गु० पृ० १३

पीड़ा और आत्म-विस्तार

ऐसे ही विषादपूर्ण क्षणों में कवि का ध्यान प्रकृति की चिर प्रसन्नता पर जाता है। तब उसे लगता है कि जिसको वह चिरकाल से ढूँढ रहा है उस सत्-चित्-आनन्द के रहस्य को प्रकृति ने पा लिया है। वस्तुतः खुदी को भूल जाना ही खुदा को पा लेना है। निज योग-क्षेम की लघु सीमा के उसपार जाकर आत्मविस्तार करना ही असीम होकर अनन्त से मिल जाना है। इस आत्मविस्तार के अभाव में मानव की अपूर्णता है, दर्द है और इसके आविर्भाव में उसकी पूर्णता है, आनन्द है। प्रकृति ने अपनी व्यष्टि को समष्टि में संकलित कर दिया है, इसलिए वह सदा प्रसन्न है। जल-कण तभी तक नगण्य हैं जबतक वे अपने को सागर की जलराशि से अलग रखते

है, किंतु ज्योंही उन्होंने अपने को सागर मे निमज्जित कर दिया त्योंही वे सम्पूर्ण सागर की भाँति विस्तृत हो गए—

कप कप हिलोर रह जाती—
रे मिलता नहीं किनारा
बुद् बुद् विलीन हो चुपके
पा जाता आशय सारा ।

—गु० पृ० ३१

ब्रह्म-केलि और प्रकृति

संसार मे जो आनन्दघन की मुरली बज रही है उसकी आवाज प्रकृति ने ही सुनी है । उस वंशी-ध्वनि को सुनकर, आनन्दघन की रास मे सम्मिलित होने के लिए लहरे चल पडी है। इसी सुख से विभोर होकर वे बारबार जन्म-मृत्यु का आलिगन करती हैं क्योंकि इस सुख के सामने जन्म-मृत्यु की पीडा नही रह जाती । इसी आनन्द के लिए लहरे असीम (सागर यानी ब्रह्म) से निकल कर आती है और इसीकी पुनर्प्राप्ति के लिए फिर उसीमे समा जाती है

सुन मधुर मरुत मुरली की ध्वनि
गृह-पुलिन नांव, सुख से विह्वल,
हम हुलस नृत्य करतीं हिल हिल
खस खस पड़ता उर से अंचल !
चिर जन्म-मरण को हंस हँस कर
हम आलिंगन करतीं प्रति । पल,
फिर फिर असीम से उठ उठ कर
फिर फिर उसमें हो हो ओझल !

—लहरो का गीत (आ० क० पृ० ४७)

इन पंक्तियों मे रहस्यवाद के विशिष्टाद्वैती रूप की, जिसमे चरम-सत्ता के संयोग-सुख की अनुभूति के लिए अपनी सत्ता बनाए रखना पडता है, अच्छी झलक है ।

इस प्रकार पत न प्रकृनि के सहज व्यापारो मे रहस्यवाद की समस्त प्रवृत्तियो, चरम चेतना के बोध, उसके प्रति विस्मय और जिज्ञासा , प्रेमानुभूति, एकाकारिता और विरह-वेदना की झांकी दी है । पत का रहस्यवाद इसी दृष्टि से प्रकृति-रहस्यवाद है ।

आनन्द-संकेत और उल्लासानुभूति प्रकृति ने कवि को आनन्द के रहस्य का जो सकेत दिया है उसे पा कर वह उमगो मे नाच उठता है । उसके पुलकित प्राणो मे गीत के निर्झर फूट पडते है । पत जी की रहस्यवादी रचनाएं अधिकाशत. प्रकृति के इसी सकेत-दर्शन से अनुप्राणित है—

कभी उड़ते-पत्तों के साथ
मुझे मिलते मेरे सुकुमार,
बढाकर लहरो के निज हाथ
बुलाते फिर मुझको उसपार;
नहीं रखती मैं जग का ज्ञान,
और हँस पडती हूँ अनजान !

—मुसकान (आ० क० पृ० २६)

आज शिशु के कवि को अनजान
मिल गया अपना गान !
खोल कलियों ने उर के द्वार
दे दिया उसको छबि का देश;
बजा भौरों ने मधु के तार
कह दिये भेद भरे संदेश ;

—गु० पृ० ७३

इस संकेत-दर्शन के उपरान्त अनुभावक की शंकाएँ, निराशा और अविश्वास तार-तार होने लगते है । अखिल लोक उसका परिवार बन जाता है क्योंकि सम्पूर्ण जगत् तो उसी सौदर्य-सत्ता का लीला-विस्तार है—

एक छबि के असंख्य उड़गन,
एक ही सब में स्पंदन ;
एक छवि के विभात में लीन,
एक विधि के आधीन !

—नित्य जग (आ० गा० पृ० ४०)

तब इस 'नित्य जगत्' के सुख-दुःख, आशा-निराशा, जन्म मरण सभी एक समान ही प्रिय हो उठते हैं—

प्रिय प्रिय विषाद रे इसका,
प्रिय, प्रि' आह्लाद रे इसका।

अनुभावक का अस्तित्व अपने अहं का विस्तार कर उस सागर की भाँति व्यापक बन जाता है जो सुख-दुःख के कगारों को अपनी मौज में डुबाकर लहराता रहता है—

सुख-दुख के पुलिन डुबाकर
लहराता जीवन सागर।

दर्शन में यही ब्रह्मात्मैक्य है, कैवल्य है। इस स्थिति पर पहुँच-कर व्यक्ति का वैयक्तिक सुख-दुःख कोई महत्त्व नहीं रखता। यहां पहुँचकर उसकी दृष्टि बाहर से सिमटकर भीतर चली आती है। उसे लगता है कि जैसे उसके दुःख अकारण हैं। उसके समस्त व्यापार ही उसके नहीं हैं, किसी विराट् से परिचालित हैं। प्रत्यक्ष में जो वह दीखता है सो वह नहीं है। उसके भीतर जो निर्लिप्त बैठा है वही उसका असली स्वरूप है और वह सुख-दुःख से परे है। प्रत्यक्ष को गंवाकर ही वह परोक्ष के असली स्वरूप को पा सकता है और इसीलिए वह अन्तर्मुखी यात्रा करता है—

हमारे काम न अपने काम,
नहीं हम, जो हम ज्ञात,
अरे निज छाया में उपनाम
छिपे हैं हम अपरूप ;

गंवाने आए हैं अज्ञात
गवाकर पाते स्वीय स्वरूप !

——नित्यजग (आ० क० पृ० ४३)

इस प्रकार की आनन्दानुभूति को पाकर रहस्यवादी कवि अवसाद-पूर्ण क्षणों मे भी मुस्कुराता रहता है और जीवन की कठोरता से लापरवाह हो जाता है। इसी अनुभूति से अभिभूत हो मीरा ने जहर का प्याला पी लिया था, मसूर 'अनलहक' कहकर सूली पर चढ गया था और कबीर ने मरने के समय विवाह की पोशाक पहनी थी। आधुनिक कवियों मे भी इस रहस्यानभूति का तत्त्व मिलता है यद्यपि वह साधनात्मक कम और सैद्धातिक एव कलात्मक अधिक है।

मधुर भाव

वैसे कबीर आदि की तरह पत की रहस्यपूर्ण पक्तियाँ भी मधुर-भाव भक्ति है। कबीर ने अपने को स्त्री और ब्रह्म को पुरुष कहा है। सूफियो ने अपने को पुरुष और ब्रह्म को स्त्री माना है। दाम्पत्यभाव पत मे भी है किन्तु उसका रूप अनिर्दिष्ट है। सौदर्यचेतना को कही वे माँ, सहचरी या प्राण कहते है और कही वे उसे (पुरुष) सुकुमार कहकर अपने को स्त्री मान लेते है——

मुझसे मिलते मेरे सुकुमार
....
और हँस पड़ती हूँ अनजान !

——मुसकान (आ० क० पृ० २९)

पंत के प्रतीक

इसी प्रकार कबीर आदि की तरह पत ने भी प्रतीको का खूब प्रयोग किया है किन्तु यहाँ भी एक मौलिक अन्तर है। कबीर के प्रतीक रहस्यवाद के अन्योक्ति-प्रद्धतिवाले विशुद्ध प्रतीक है, जैसे चरखा, कुम्भ, घट, कहरवा, डोली, बढई, विन्दु, सिन्धु आदि। ऐसे प्रतीको से एकमात्र आत्मा, परमात्मा और उसके सम्बन्धों का ही अर्थ निकल सकता है। पत

के प्रतीक कोमल हैं, जैसे मधु, मधुकर, अलि, गुञ्जन, लहर, ऊषा, वायु आदि। फिर ये प्रतीक समासोक्ति पद्धतिवाले हैं। इनसे दुहरा अर्थ निकलता है। ये अपने में नारी और प्रकृति के मोहक संकेत को भी लिए रहते हैं। वैसे कुछेक स्थलों पर शुद्ध रहस्यवादी (अन्योक्ति-पद्धतिवाले) प्रतीक भी मिल जाएँ। जैसे, निम्न लिखित पंक्तियों में वर्णित 'विहग' उस अमर सत्ता का प्रतीक है जिसे कबीर ने पुरुष और सूफियों ने नूर कहा है और जो जन-जीवन रूपी अक्षय-वट को सदा गुलजार रखता है--

रिक्त होते जब-जब तरु-वास
रूप धर तू नव नव तत्काल,
नित्य-निनादित रखता सोल्लास
विश्व के अक्षय-वट की डाल।

इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में लहर आत्मा का और सागर (असीम) ब्रह्म का प्रतीक होगा अन्यथा 'असीम' शब्द का प्रयोग ही निरर्थक हो जाएगा--

फिर फिर असीम से उठ उठ कर
फिर फिर उसमें हो हो ओझल

--लहरों का गीत (आ० क० पृ० ४७)

ब्रह्म की व्याप्ति

अन्यों की तरह पंत ने भी अनुभव किया है कि अनन्त का आनन्द-संगीत सृष्टि में निरन्तर चल रहा है। यदि यह न होता तो दु:ख-दर्द की दुनिया में टिकना कितना कठिन हो जाता?

दूर बन के ओ राजकुमार!
अखिल उर-उर में तेरे गान,

जिसने उसके स्वर में अपना तार मिला लिया वह आनन्दमय हो गया, स्वयं आनन्दघन बन गया।

लगता है कि आनन्दघन की बाँसुरी उन्हें रास में सम्मिलित होने के लिए बुला रही है। आनन्द-केलि का यह निमत्रण रहस्यवाद का सबसे प्रमुख स्वर है। यदि जिज्ञासा रहस्यवाद का प्रस्थान-बिन्दु है तो केलि उसकी केन्द्र-स्थली। आनन्द-केलि का निमत्रण पा अनुभावक की आत्मा अनुरक्त होकर उस अनन्त के साथ एकाकार हो जाना चाहती है। एकाकारिता की यह भावना दाम्पत्य सबध मे अत्यंत सघन हो जाती है क्योंकि पुरुष और नारी दोनों अपनी इकाई रखकर भी पूर्ण आत्मसमर्पण करते हैं; इसलिए रहस्यवादी कविता में दापम्त्य-भावना की प्राधानता रहती है। अनन्यता के इस मधुक्षण मे ज्ञान की गठरी पटककर अपने अंचल मे प्रेम के ढाई अक्षर-अक्षत् लेकर कबीर 'राम की बहुरिया' बन जाते हैं। मीरा 'पचरग चोला' पहनकर अपने साँवरे के साथ 'झिरमिट' खेलती है। रवीन्द्रनाथ ने आनन्द-केलि का निमत्रण लिए स्वय आ उपस्थित हुए सुन्दर पुरुष की आहट सुनी है।१ इस आनन्द-स्थिति मे अनुभावक अपने

ब्रह्म-केलि और एकाकारिता

१. सुन्दर, तुमि एसे छिले आजि प्राते
अरुण वरण पारिजात लये हाते।
निद्रित पुरी, पथिक छिल ना पथे,
एका चलि गेले, तोमार सोनार रथे।
बारेक थामिया मोर वातायन पाने
चेये छिले तब करुण नयन पाते।
सुन्दर तुमि एसे छिले आजि प्राते।

(हे सुन्दर तुम आज सबेरे आए थे, हाथ मे लाल रंग का पारिजात लिए हुए। सारी नगरी सोयी थी। राह मे पथिक भी नहीं था। तुम अपने सोने के रथ पर अकेले ही चले गए। केवल एक बार रुककर तुमने अपनी करुण-दृष्टि मेरी खिड़की पर डाली थी। हे सुन्दर, तुम आज सबेरे आये थे।)

योग-क्षम की सुध भूल जाता है, ससार से लापरवाह हो जाता है ।

पत जी ने प्रकृति के माध्यम से इस केलि का निमंत्रण पाया है । स्तब्ध ज्योत्स्ना मे नक्षत्र, बादलो के गर्जन मे बिजली, बसन्त मे सौरभ, संध्या मे जुगनु, प्रभात मे ओस और रात मे स्वप्न जैसे उन्हे पुकार-पुकार क्रीडा का मौन निमन्त्रण देते है ('मौन निमन्त्रण' शीर्षक कविता)। इस निमत्रण से उन्हें केवल विस्मय भर नही हुआ ह बल्कि एक अनुभूति भी कि एक अपूर्व सुन्दर (छविमान) कृपालु सदा उनके साथ रहता है । वह उन्हे अंधेरे में राह दिखाता है । उनके प्राणो में संगीत भरता है, वह सुख-दुःख का मूक सहचर है। फिर भी वह अदृश्य अकथनीय है । वह केवल अनुभूति भर है । पंत उसके समक्ष एक नारी रूप मे उपस्थित है––

न जाने, अये छबि मान
जान मुझको प्रबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान ;
अहे सुख दुख के सहचर मौन!
नहीं कह सकती तुम हो कौन!

––मौन निमन्त्रण (आ० क० पृ० ३२)

पत जी ने भी रवीन्द्र की तरह अंतरिक्ष के वातायन से आनवाले सगीत के स्वर को सुनने का दावा किया है । उसे सुनकर उनके प्राण कटकाते हुए है। उस पार जाने के लिए उनकी वाणी व्याकुल हुई हे––

मुझे न अपना ध्यान,
कभी रे रहा न जग का ज्ञान!
सिहरते मेरे स्वर के साथ
विश्व-पुलकावलि-से तरु-पात ;

पार करते अनन्त अज्ञात
गीत मेरे उठ सायं-प्रात ;

यह सत्ता घट-घट वासी है । और, चूँकि भगवान् घट-घट व्यापी है, इसलिए प्रकृति का कोई भी पदार्थ अनित्य नहीं है। अनन्त का अमर संयोग पाकर प्रत्येक वस्तु शाश्वत बन चुकी है । मनुष्य की आँखों पर अज्ञान का पर्दा पड गया है, इसलिए वह अपने अस्तित्व की चिरंतनता भूल बै ा है । आत्मबोध होते ही उसका भ्रम दूर हो जाता है । जीव, जगत् और ब्रह्म एकतान हो जाते है।

रहस्यवाद और सृष्टि-दर्शन

शाश्वत नभ का नीला विकास,
शाश्वत शशि का यह रजत-हास,
शाश्वत लघु-लहरों का विलास ।
हे जग-जीवन के कर्णधार !
चिर जन्म-मरण के आर-पार,
शाश्वत जीवन-नौका-विहार ।
मैं भूल गया अस्तित्व-ज्ञान ,
जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझ को अमरत्व-दान ।

——नौका-विहार (आ० क० पृ० ५८)

'सूधी ओर न देखई, देखै दर्पन पृष्ठ' वाला 'देहाध्यास' मनुष्य के भ्रम की जड है। मनुष्य अपने भीतर न देखकर जगत् को देखता है और फिर अपने को । इसलिए वह ससार को कष्टमय और अपने को अकेला समझता है । पर जब व्यक्ति दृश्य आवरणों के भेद में न पड़, नाम-रूप को भेदकर अपने अन्तरम मे झाँकता है और फिर बाहर ृष्टि डालता है तब उसे मालूम होता है कि समार एक ही आत्मा का रूप-विस्तार है । तब संसार मे वह अपने को

अकेला नही पाता और न संसार ही उसे दु खपूर्ण दीखता है । अत' आत्मदर्शन ही जगदर्शन का माध्यम है ।

गुंजित अलि जा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन अंधकार,
हलका एकाकी व्यथा-भार !
जगमग-जगमग नभ का आँगन, लद गया कुंद कलियों से घन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन !

—एक तारा (आ० क० पृ० ५५)

आत्मदर्शी रहस्यवादी घट मे ब्रह्म का दर्शन करता है । प्रसिद्ध रहस्यवादी ब्लेक ने रहस्यवाद की व्याख्या करते हुए कहा है कि रहस्यवादमे कण मे विश्व, वन-फूल मे स्वर्ग, करतल मे असीमता और घटी मे अनन्त को बाँधा जाता है ।

To see a world in a grain of sand
And a Heaven in a wild flower,
Hold Infinity in the palm of your hand
And Eternity in an hour.

आत्माकी नित्यता और बंधन-मुक्ति

और चूँकि भगवान् घट-घट-व्यापी है, इसलिए उसकी प्राप्ति के हेतु वैराग्य धारण करना आवश्यक नही। वह तो स्वय प्राप्त है। कबीर ने उसे पाने के लिए गार्हस्थ्य की चादर नही उतारी। आत्मदर्शी रवीन्द्र का उद्देश्य भी वैराग्य या योग-साधना से मिली मुक्ति की प्राप्ति नही है । वे असख्य प्रेम-बन्धनों के बीच महानन्दमय मुक्ति का स्वाद पाना चाहते है।१ महादेवी उस मुक्ति का वरदान माँगती

---

१. **वैराग्य-साधने मुक्ति, से आमार नय**
असंख्य-बंधन माझे महानंदमय
लभिव मुक्तिर स्वाद । एइ वसुधार
मृत्तिकार पात्र खानि भरि बारांबार

है जो बन्धनों की कामना लेकर आवे ।२

रवीन्द्र की यह मुक्ति-भावना आधुनिक है और इसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पडा है। पत जी भी रवीन्द्र की तरह प्रेम के बन्धनो मे मुक्ति की कल्पना करते है और अपने रूप-गधमय स्वरूप को बनाए रखना चाहते हैं——

तेरी मधुर मुक्ति ही बधन
गंधहीन तू गध युक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन!
मूर्त्तिमान बन निर्धन!
——तप (आ० क० पृ० ५१)

तोमार अमृत ढालि दिये अविरत
नाना वर्ण गंधमय ।............
इन्द्रियेर द्वार
रुद्ध करि योगासन, स नहे आमार
जे किछु आनन्द आछे दृश्य गधे गान
तोमार आनन्द र' बे ता'र माझ खाने
मोह मोर मुक्ति रूपे उठिबे ज्वलिया
प्रेम मोर, भक्ति रहिबे फलिया ।

(वैराग्य साधने से जो मुक्ति मिलती है वह हमारी अभिलषित नहीं है। अनगिनत बंधनों के बीच जो परमानन्दमय मुक्ति प्राप्त होती है, मैं उसी का स्वाद लूगा। इस धरती की मिट्टी से बने में तुम अपना नाना रगों और गंधों से युक्त अपना अमृत (आनन्द) ढाल दोगे।... नि यों के दरवाजे बन्द करनेवाले योगासन की इच्छा मेरी नहीं है। दृश्य, गंध, गान (अर्थात् दृश्य-गध-स्वरमय ससार) में जो आनन्द है उसीमें तुम्हारा आनन्द भी मिलेगा। मेरा मोह ुक्ति बनकर बल उठेगा और मेरा प्रेम सफल भक्ति बन जाएगा।)

२. आज वर दो मुक्ति आवे बंधनों की कामना ले ।
——महादेवी वर्मा

बन्धनमुक्ति की यह भावना रहस्यवाद के विशेष्टाद्वैत रूप को लिए रहती है जिसमें अनुभावक अपना अस्तित्व बनाए रखकर सच्चिदानन्द से सम्मिलन का आनन्द अनुभव करता है।

पंत जी में अपना अस्तित्व बनाए रखने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल है कि कहीं-कहीं उनकी भावना में द्वैतवाद (जीव और ब्रह्म की पृथक सत्ता का सिद्धांत) आ गया है। जैसे नीचे की पंक्तियों में ब्रह्म के अभिन्न सम्मिलन में उन्हें स्वयं ही खो जाने का भय होता है, इसलिए किनारे रहकर कुछ दूर से ही उसे देखना चाहते हैं—

सुनता हूं, इस निस्तल जल में रहती मछली मोती वाली,
पर मुझे डूबने का भय है भाती तट की चल-जल-माली।
आएगी मेरे पुलिनों पर वह मोती की मछली सुन्दर,
मैं लहरों के तट पर बैठा देखूंगा उसकी छवि जी भर।

अतः पंतजी का रहस्यवाद शुष्क अद्वैतवाद से भिन्न है क्योंकि उसमें भक्ति का योग है। वैसे उन्होंने भक्तिपरक पद भी लिखे हैं, जैसे—

नीरव तार हृदय में
गूंज रहे हैं मंजुल-लय में;
अनिल-पुलक से अरुणोदय में।
नीरव तार हृदय में—
चरण-कमल में अर्पण कर मन,
रज-रंजित कर तन,
मधुरस-मज्जित कर मम जीवन
चरणामृत-आशय में।

—नीरव तार (आ० क० पृ० ६)

इस बंधन-मुक्ति का आधार है आत्मा की नित्यता। 'न जायते म्रियते वा कदाचन' अथवा 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे' रहस्यवाद की अद्वैत-भावना का ही समर्थन करता है। जीवन के बीच रहकर जीवन

के दर्द में मुक्त हो जाना रहस्यवाद की साधना है जिसे कबीर ने 'सहज'—साधना कहा था।

अंत में एकबार फिर निवेदन करना चाहता हूँ कि आधुनिक छायावादी-रहस्यवादी कवियों में साधनापूत सहज-प्रकाशित रहस्यवाद नहीं वरन् कलात्मक, रहस्य-चित्र मिलेंगे। वे सभी स्वभाव से कवि थे, न कि संत। उनमें इश्कमजाजी की ही प्रधानता है, इश्कहकीकी की नहीं। छायावादी कवियों में रहस्यवाद की शैली थी, साधना नहीं। इनमें वह तन्मयासक्ति, आध्यात्मिक परिणय, तीव्र विरह-निवेदन, फक्कड़पन और प्राणों का अनुरणन नहीं है जो कबीर, मीरा आदि में सहज ही उपलब्ध है। अत पंत जी की रहस्यवादी रचनाओं का, ज्ञान के काटों पर, मूल्यांकन करना वृथा है। वे तो विशुद्ध गीति-काव्य के उदाहरण हैं जिनमें हृदय का रस और प्रेम का संगीत है। उनके गीत उनके 'प्राणों की उन्मन गुंजन है'।

प्रगतिवाद और पंत

प्रगतिशील और प्रगतिवादी

प्रगति का अर्थ है एक निश्चित लक्ष्य की ओर गति। एक हद तक प्रगति, उन्नति का पर्याय है और इस हद तक प्रत्येक उन्नतिशील को प्रगतिशील कह सकते हैं। पर प्रगतिशील और प्रगतिवादी मे एक मौलिक अन्तर है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार प्रयोगशील और प्रयोगवादी मे। प्रगतिवाद साहित्य के उस दर्शन के लिए रूढ हो गया है जिसका निश्चित लक्ष्य है साहित्य मे मार्क्सवाद यानी जन-वाद की प्रतिष्ठा करना। पंत जी के शब्दो मे 'प्रगतिवाद उपयोगितावाद ही का एक दूसरा नाम है। वैसे सभी युग का लक्ष्य सदैव प्रगति ही की ओर रहा, पर आधुनिक प्रगतिवाद ऐतिहासिक विज्ञान के आधार पर जन-समाज की सामूहिक प्रगति के सिद्धांतो का पक्षपाती है।'[1]

मार्क्सवाद का दर्शन

कार्ल मार्क्स के दर्शन का नाम है—द्वंद्वात्मक भौतिकवाद (Dilcctical Matcrialism)। मार्क्स का यह दर्शन उनके गुरु हीगेल के सिद्धात पर आधृत है। हीगेल का दार्शनिक सिद्धात द्वंद्ववाद के नाम से अभिहित है। हीगेल के अनुसार प्रकृति के पदार्थों में निरन्तर एक द्वद्व चला करता है और इसी द्वद्व से सृष्टि का विकास होता है। प्रकृति के तत्व परस्पर-निर्भर और सम्बद्ध है, अत. परस्पर-विरोधी तत्वो के समागम से उनकी साम्यावस्था मे विकार उत्पन्न होता है। यह विकार परिवर्त्तन लाता है। किन्तु हीगल का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था। उसके अनुसार प्रकृति के इस समस्त द्वंद्व-विस्तार के मूल मे एक निरपेक्ष विचार (Absolute idea) है और प्रत्येक पदार्थ

---

१. पर्यालोचन (आ० क० पृ० ४०)

उसी विचार-सत्ता से उत्पन्न है। मार्क्स ने हीगेल के द्वंद्व सिद्धांत को तो स्वीकार किया और माना कि द्वंद्व ही समाज के विकास का मार्ग है किन्तु उसने सृष्टि के मूलकारण-रूप निरपेक्ष विचार (भारतीय शब्दावली में ब्रह्म या मन) की सत्ता स्वीकार नहीं की। उसने भगवान् या मन को स्वीकार नहीं किया और कहा कि भूत (Matter) या जड़ प्रकृति ही सब कुछ है, इसके परे कुछ नहीं, न भगवान्, न मन। केवल द्वंद्व और भूत की सत्ता को स्वीकार करने के कारण मार्क्स का दर्शन द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कहलाता है।

मार्क्स ने अपने इस सिद्धांत का प्रयोग सामाजिक विकास के क्षेत्र में किया और इस प्रकार उसे राजनीतिक स्वरूप दिया। इस रूप में प्रयुक्त उनके सिद्धांत का सर्वाधिक प्रचलित नाम है—

साम्यवाद

साम्यवाद। साम्यवाद का लक्ष्य है संसार से आर्थिक वैषम्य मिटाकर एक वर्गहीन समाज की स्थापना करना। इस समाज की स्थापना के लिए वर्ग-संघर्ष या क्रांति अनिवार्य है क्योंकि इसीके द्वारा रूढ़िग्रस्त पुरातन बुर्जुआ समाज का नाश और एक नये सर्वहारा समाज की स्थापना हो सकती है। साम्यवाद गांधीवाद की तरह हृदय-परिवर्तन में विश्वास नहीं करता। वह धर्म और भगवान् को वैषम्य से उत्पन्न विद्रोह को दबाने का हथकंडा मानता है। वह दया में नहीं, समता में विश्वास करता है। वह आदर्शवादी नहीं बल्कि जीवन के प्रति वस्तुवादी दृष्टिकोण में विश्वास करता है।

साम्यवाद की इसी विचार-धारा ने साहित्य में प्रगतिवाद को जन्म दिया। प्रगतिवाद की प्रेरणा का मूल स्रोत यही है। प्रगति-

प्रगतिवाद का स्वरूप

वाद साम्यवाद का साहित्यिक मोर्चा है। प्रगतिवाद के लक्षण हैं—पीड़ितों और शोषितों को नायकत्व देना, उनमें शोषक बुर्जुआ वर्ग या अभिजात समाज एवं व्यवस्था के प्रति संघर्ष का भाव भरना, उनके मन में

एक वर्गहीन समाज का आकर्षण जगाकर उसके निमित्त वर्गक्रांति करने की प्रेरणा उत्पन्न करना, प्राचीन सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह जगाना, ईश्वर, धर्म आदि को मानव की कमजोरियों के रूप मे चित्रित करके अपने बाहुबल से धरती पर स्वर्ग बसाने का विश्वास पैदा करना आदि (ये लक्षण प्रगतिवाद के सामाजिक पक्ष के हैं)
कलात्मक पक्ष में प्रगतिवाद साहित्य को साधन मानता है, साध्य नही। वह जन-हित को साहित्य की कसौटी मानता है। वह यथार्थवादी शैली और जन-भाषा को अपनाता है। वह विचार को ही अलंकार मानता है। वह थोथी सहानुभूति या भावुकता को गर्हित समझता है।

प्रगतिवाद और पन्त जी

छायावादी कवियो में पंत जी ने ही छायावाद के प्रति स्पष्ट असंतोष प्रगट किया था और प्रगतिवादी क्रांति के प्रति आसक्ति दिखलाई थी। कवि-जीवन के आरम्भ में वे प्राकृतिक दर्शन (Naturalistic philosophy) से प्रभावित थे। मनुष्य-जाति के ऐतिहासिक संघर्षों के सत्य से उनका परिचय नही था।१ वे मनुष्य को प्रकृति के भीतर से देखते थे, उस ऐतिहासिक मानव के रूप में नहीं जो प्रकृति से संघर्ष करके आगे बढ़ता आया है। लेकिन आगे चलकर वे सोचने लगे कि प्राकृतिक दर्शन सामाजिक जीवन के लिए स्वास्थ्यकर नहीं है क्योंकि वह आदमी को निष्क्रिय बनाता है और प्रकृति को सर्वशक्तिमान मानकर उसपर आत्मसमर्पण सिखलाता है।२ अब पंत जी मनुष्य को एक संघर्षशील सामाजिक प्राणी के रूप में देखने

---

१. तब मैं प्राकृतिक दर्शन से अधिक प्रभावित था और मानव-जाति के ऐतिहासिक संघर्ष के सत्य से अपरिचित था। दर्शन मनुष्य के वैयक्तिक संघर्ष का इतिहास है, विज्ञान सामूहिक संघर्ष का।
—पर्यालोचन (आ० क० पृ० १४)

२. वही, ० १०।

लगे जिसका समाज के प्रति भी कर्त्तव्य होता है। इसी मनोदशा में छायावाद उन्हे निष्प्राण लगा क्योकि उसमे सामाजिक चेतना और विचार नही थे। यही नहीं वल्कि सामतयुग की जिस व्यक्तिवादी सास्कृतिक भावना से छायावाद ओतप्रोत था उसके प्रति पत जी मे एक वितृष्णा का भाव पैदा हुआ। यह वितृष्णा अवश्य ही देश और विदेश के तत्कालीन राजनैतिक और सास्कृतिक जागरण से उत्पन्न हुई थी।[१]

'महात्मा जी के प्रति' शीर्षक कविता मे पंत जी ने उन बाह्य-वास्तविक परिस्थितियो की ओर सकेत किया है——

विकसित व्यक्तिवाद के मूल्यों का विनाश था निश्चय,
वृद्ध विश्व सामन्तकाल का था केवल जड़ खडहर।
....
गत संस्कृतियों का आदर्शों का था नियत पराभव,
वर्ग व्यक्ति की आत्मा पर ये सौध धाम जिनके स्थित
तोड़ युगों के स्वर्ण-पाश अब मुक्त हो रहा मानव
जब मानवता की भव संस्कृति आ हो रही निर्मित
——(आ० क० पृ० ८३-८४)

ऐसी ही परिस्थितियों ने पत जी के राग-तत्त्व मे मथन उत्पन्न किया और वे वर्ग-व्यक्ति-संस्कृति मे भव-सस्कृति की ओर आए। इस प्रगतिवादी क्षेत्र की ओर पत जी का पदार्पण १९३४ मे हुआ।

---

१. अब मैं जानता हूं कि वह केवल सामतयुग की सास्कृतिक भावना थी जिसे मैंने खोया था, और उसके विनाश के कारण मेरे भीतर नहीं बल्कि बाहर जगत् मे थे। इस बात को ग्राम्या में मैं निश्चयपूर्वक लिख सका हूँ——

गत संस्कृतियों का आदर्शों का था नियत पराभव
वृद्ध विश्व सामन्त काल का था केवल जड़ खडहर।

वे छायावाद के कल्पना-गगन से प्रगतिवाद की वास्तविक धरती पर उतरे। प्रगतिवाद की ऐतिहासिक विचारधारा से वे अधिक प्रभावित इसलिए भी हुए कि 'उसमे कल्पना के स्रोत को विशद और वास्तविक पथ मिलता है। छायावाद के दिशाहीन शून्य सूक्ष्म आकाश में अति काल्पनिक उड़ान भरनेवाली अथवा रहस्यवाद के निर्जन अदृश्य पर कालहीन विराम करनेवाली कल्पना को एक हरी भरी ठोस जनपूर्ण धरती मिल जाती है।

धरती का आकर्षण

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु-नीलिमा-गहन गगन ?
अनिमेष, अचितवन, काल-नयन ?—
निःस्पन्द शून्य, निर्जन, निःस्वन ?
. . . .
देखो भू को,
स्वर्गिक-भू को
मानव-पुण्य-प्रसू को ?

—जीव प्रसू (आ० क० पृ० ७३-७४)

सी लक्ष्य-परिवर्तन की ओर इंगित करता है। कितनी चिड़िया उड़े आकाश, दाना है धरती के पास वाली कहावत के अनुसार ऐतिहासिक भूमि पर उतर आने से कल्पना के लिए जीवन के सत्य का दाना सुलभ हो जाता है।'१

पुरातन रूढ़िग्रस्त संस्कृति के नाश और एक नूतन वैषम्यमुक्त समाज की प्रतिष्ठा के लिए क्रांति का आवाहन प्रगतिवाद का एक लक्षण है। पंत जी ने 'युगान्त' में इस क्रांति-भावना को बड़े आवेश से पकड़ा है। सागत युग की संस्कृति के पुनर्जागरण में उनका विश्वास नहीं है। इसलिए

क्रांति का आवाहन

१. पर्यायलोचन (आ० क० पृ० ३७)

पिछली सामाजिक व्यवस्था के नाश के लिए वे क्रांति का ओजपूर्ण आह्वान करते हैं——

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !
हे त्रस्त-ध्वस्त ! हे शुष्क-शीर्ण !
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीतराग, जड़ पुराचीन !!
निष्प्राण विगत युग ! मृत विहंग !
——पतझर (आ० क० ० ६२)

गा कोकिल ! बरसा पावक-कण !
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बंधन !

किन्तु यह क्रान्ति-भावना केवल आक्रोश का परिणाम नहीं है। पंत जी को विश्वास है कि इस क्रांति के फलस्वरूप एक नया सुखकर, शुचितर मानव-समाज प्रतिष्ठित होगा, श्रमजीवियों की सूखी हड्डियों में नया खून दौड़ेगा। पतझर के बाद वसन्त आएगा। इसी आशा से क्रांति का आवाहन करते हैं——

आशा और विश्वास

कंकाल जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर, पल्लव लाली !
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली !
——पतझर (आ० क० पृ० ६२)

वे क्रांति का अनल-गीत इसलिए गाते हैं कि उसीके आग्नेय स्वर पर नयी मानवता विकसित होगी——

पावक पग धर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन

क्रांति-भावना और मानववाद

इस प्रकार पंत एक साथ ही नाश और निर्माण की आकांक्षा करते हैं। पंत जी ने इस द्विविध आकांक्षा का रहस्य बतलाते हुए कहा है कि जब वे जगत् के अन्तिम पक्ष का अनुभव करते हैं तब उनके मन में परिवर्तन और क्रांति का भाव उत्पन्न हो जाता है मगर अनित्यता में छिपे नित्य सत्य का बोध होते ही उनमें नये स्वस्थ-सुसंस्कृत मानव-समाज के अभ्युदय का आकर्षण छा जाता है। इस प्रकार उनका आशावादी-विश्वासवादी मन क्रांति द्वारा प्रतिफलित नाश के अभाव को भविष्य के नए मनुष्यों द्वारा होनेवाले महान सामाजिक कल्याण की कल्पना से भरता रहता है।[१]

'यह क्रांति-भावना, जो अब साहित्य में प्रगतिवाद के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी है,' मेरी ताज, 'कलरव' आदि में विशेष रूप से अभिव्यक्त हो सकी है और मानववाद की भावना 'युगान्त' की 'मानव', मधुस्मृति आदि रचनाओं में।'[२]

---

१. अनित्य की वास्तविकता का बोध मेरे मन में पहिले परिवर्तन और फिर क्रांति का रूप धारण कर लेता है। नित्य सत्य के प्रति आकर्षण नवीन मानवता के रूप में प्रस्फुटित होने लगता है। दूसरे शब्दों में, बाहरी क्रांति की अभावात्मकता की पूर्ति मेरा मन नवीन मनुष्यत्व की भावात्मक देन द्वारा करना चाहता है। 'द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र, हे त्रस्त-ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण' द्वारा जहाँ पिछली वास्तविकता को बदलने के लिए ओजपूर्ण आह्वान है, वहाँ 'कंकाल जाल जग में फैले फिर फैली नवल रुधिर पल्लव लाली' में 'पल्लव'—काल की स्वप्न-चेतना द्वारा उस रिक्त स्थान को भरने के लिए आग्रह भी है।

—पंत (मेरी कला)

२. वही

जो दुनिया की सबसे हसीन इमारत है, जो संगमर्मर का एक गीति-काव्य है और जिसे रवीन्द्र ने 'काल के कपोल पर एक अश्रुविन्दु' कहा वह ताजमहल पन्त जी की दृष्टि मे मध्ययुग की व्यक्तिवादी, आत्मरतिवाली सामती सस्कृति का एक कठोर व्यग्यपूर्ण प्रतीक है। वह उस युग का साक्षी है जो लाख-लाख भूखे-नगे मनुष्यो को अभावों मे छोडकर उनकी कमाई से अपने लिए ताजमहल खडा करता था, जो अपने प्रेम की लाश को ढोता था और जिन्दा आदमियो को मुर्दो से भी बदतर जिन्दगी बिताने के लिए मजबूर कर देता था। इस सामाजिक दृष्टि से देखने पर ताजमहल कवि की क्रांति-भावना को उत्तेजित करता है--

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन !
जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन !
संग-सौध मे हो शृगार मरण का शोभन,
नग्न, क्षुधातुर, वास विहीन रहे जीवन जन !
....
शव को दें हम रूप, रंग आदर मानव का !
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का !
गत युग के बहु धर्म-रूढ़ि के ताज मनोहर
मानव के मोहान्ध हृदय में किये हुए घर !

--ताज (आ० क० पृ० ७१)

'कलरव' शीर्षक कविता मे भी चतुर्दिक हाहाकार लिए मानव-जीवन और चिर प्रसन्नता लिए प्रकृति का भेद जैसे कवि को क्राति के लिए ललकारता है। पर चूँकि मनुष्य के चिरतन मूल्यो मे और जगत् की नित्यता मे कवि का विश्वास है वह मनुष्य पर मुग्ध भी होता है। इस मानववाद की भावना की हार्दिक अभिव्यक्ति 'मानव' शीर्षक कविता में हुई है--

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम,
. . . .
प्रभु का अनन्त वरदान तुम्हें,
उपभोग करो प्रतिक्षण नव-नव,
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में
यदि बने रह सको तुम मानव !
—मानव (आ० प्र० पृ० ७०-७१)

क्रांति के दो रूपों—राजनैतिक और सांस्कृतिक में पंत जी का झुकाव सांस्कृतिक क्रांति की ओर है। क्रांति के उस उग्र रूप से उनका सम्बन्ध नहीं है जो वर्गसंघर्ष और राजनीतिक युद्धों के रूप में प्रगट होता रहा है। संसार के सामने जो संकट उपस्थित है उसका कारण पंत जी की दृष्टि में मात्र आर्थिक या राजनीतिक नहीं है, उसका कारण मनुष्य के विचारों और भावों में छिपा हुआ है। इसीलिए वे मनुष्य के आन्तरिक विचारों और भावों में क्रांति करना चाहते हैं। निश्चय ही यह एक स्वप्न-द्रष्टा आदर्शवादी कलाकार की क्रांति-भावना है जो कला (मनुष्य की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति) के माध्यम से नवीन मानवता के लिए अनुकूल वातावरण लाना चाहता है।१

सांस्कृतिक क्रांति

१. जहाँ मनुष्य स्वभाव की सीमाएं, एक ओर, वर्ग संघर्ष एवं राजनीतिक युद्धों के रूप में, मानव जाति के रक्त का उग्र प्रयोग करवा रही हैं, दूसरी ओर मनुष्य का विकास-प्रिय प्रकृति समयानुकूल उपयुक्त साहित्य एवं विचारों का प्रचार कर, नवीन मानवता का वातावरण पैदा करने के लिए सांस्कृतिक प्रयोग भी कर रही है। भले ही इस समय उसकी देन अत्यन्त स्वल्प हो और अंधकार की प्रवृत्तियों पर कुछ समय के लिए विजयी हो रहा हो, किन्तु कलाकार और स्वप्न द्रष्टा के नाते मैं दूसरे प्रकार की—सांस्कृतिक अभ्युदय की—शक्तियों को बढ़ाने का पक्षपाती हूँ।—पर्यालोचन (आ० क० पृ० २४-२५)

वसे प्रगतिवादियों की तरह पत जी भी मानते है कि मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना उसकी बाह्य सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब है और 'यदि हम बाह्य परिस्थितियों मे परिवर्तन ला सके तो हमारी आन्तरिक धारणाएँ भी उसीके अनुरूप बदल जाएगी'---

कहता भौतिकवाद वस्तु जग का कर तत्वान्वेषण,
भौतिक भव ही एकमात्र मानव का अन्तरदर्पण।
स्थूल सत्य आधार, सूक्ष्म आधेय, हमारा जो मन,
बाह्य विवर्तन से होता युगपत् अंतर परिवर्तन।

किन्तु पत जी समाज का 'आमूल परिवर्त्तन' चाहते हैं और यह अन्तर्वहिमुखी परिवर्त्तन दोनो प्रकार के परिवर्त्तनो से ही सम्भव है। अत पत जी सांस्कृतिक अभ्युदय करनेवाली आत्मा की शक्तियो के विकास के पक्षपाती हैं।

राजनीति का प्रश्न नहीं रे आज जगत् के सम्मुख,

....

आज वृहत् सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,

खंड मनुजता को युग-युग को होना है नव निर्मित।

पंत जी की दृष्टि में मनुष्य केवल अर्थ और काम का पुतला नही। यदि अन्न और काम ही उसका सर्वस्व है तो उसमे और एक पशु में कोई अन्तर नही। पत मानव के इस रूप को बारबार धिक्कारते हैं। मनुष्य और पशु का भेद अन्तर मे है, संस्कृति और आत्मोत्कर्ष में है। इसलिए मनुष्य समाज के विकास के लिए केवल बाहरी सामाजिक समता नही चाहिए, उसके लिए अन्तर-अन्तर का भेद मिट जाना चाहिए। पत जी की दृष्टि मे यदि मनुष्य के आत्मिक गुणो का विकास नही हुआ तो बाह्य भौतिक विकास मनुष्य के लिए घातक सिद्ध होगा, वह आदमी को और दु खी कर देगा। इसलिए पत जी वर्ग-संघर्ष से अधिक सांस्कृतिक क्रांति को महत्त्व देते हैं। उनके लिए देह से अधिक महत्त्वपूर्ण आत्मा का उत्थान है--

हा मानव !
देह तुम्हारे ही है, रे शव !
तन की चिन्ता में घुल निशिदिन
देहमात्र रह गए,—खा तिन !
प्राणि प्रवर
हो गए निछावर
अचिर धूलि पर !!
निद्रा, भय, मैथुनाहार
—ये पशु-लिप्साएँ चार—
हुई तुम्हें सर्वस्व सार ?
धिक् मथुन-आहार-यंत्र !
क्या इन्हीं बालुका-भीतों पर
रचते जाते हो भव्य अमर
तुम जन-समाज का नव्य तन्त्र ?
मिली यही मानव में क्षमता ?
पशु पक्षी, पुष्पों से समता ?
....
बाह्य नहीं आन्तरिक साम्य
जीवों से मानव को प्रकाम्य ?
मानव को आदर्श चाहिए,
संस्कृति, आत्मोत्कर्ष चाहिए ;
बाह्य विधान उसे हैं बंधन,
यदि न साम्य उसमें अन्तरतम—
....
पूर्ण तंत्र मानव, वह ईश्वर
मानव का विधि उसके भीतर ?
—चींटी (आ० क० पृ० ७६-७७)

क्रांति का समन्वयवादी स्वरूप

चू कि पत जी अन्तर और बाहर दोनो मे परिवर्तन चाहते है इसलिए उनकी क्रान्ति-भावना समन्वयवादी है । उसमे शरीर और आत्मा, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद, गाधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय है । पत जी भौतिकवाद और अध्यात्मवाद दोनो से प्रभावित हुए है पर दोनों को किञ्चित परिमार्जन के साथ ही स्वीकार किया है । उन्होंने मार्क्सवाद के उस दर्शन को स्वीकार किया है जो मानव-जाति के सामाजिक-सास्कृतिक-आर्थिक सम्बन्धो का विकास गोचर-सापेक्ष जगत् मे करता है लेकिन मार्क्स के दर्शन के उस पक्ष को उन्होंने अपनी कविता का अग बनने नही दिया है जिसमे शोषित श्रमजीवियो के सगठन और सामाजिक निर्माण का वास्तविक निर्णय आर्थिक और राजनीतिक क्रातियाँ ही कर सकती है, तथा जिसकी परिणति, पू जीवादी परिस्थितियो के कारण, वर्गयुद्ध और रक्तक्राति मे हुई है । इसी प्रकार उन्होने भारतीय अध्यात्मवाद के इस दर्शन को माना है कि गोचर-सापेक्ष जगत् के परे एक निरपेक्ष सत्य भी है और वह मन एव बुद्धि से अतीत है । लेकिन इसके साथ ही उन्होने भारतीय अध्यात्मवाद के उस पक्ष को स्वीकार नही किया है जिसमे जगत् केवल माया है और जिसकी एकान्त परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति मे हुई है ।[१]

---

१. मै, आध्यात्म और भौतिक, दोनों दर्शनों के सिद्धातों से प्रभावित हुआ हूँ। पर भारतीय दर्शन की, सामत कालीन परिस्थितियों के कारण जो एकांत परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई है (दृश्य जगत एवं ऐहिक जीवन की माया होने के कारण उसके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपसंहार मात्र है), और मार्क्स के दर्शन की, पूंजीवादी परिस्थितियों के कारण, जो वर्गयुद्ध और रक्त-क्रांति में परिणति हुई है,—ये दोनों परिणाम मुझे सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नही जान पड़े ।

इस प्रकार पंत जी ने भौतिकवाद और अध्यात्मवाद दोनों के मांगलिक सत्य को, दोनों के कल्याणकारी पक्ष को ग्रहण किया है। कह सकते हैं कि पंत की क्रांति-भावना मांगलिक है। इस दृष्टि से उन्हें ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय अध्यात्मदर्शन में किसी प्रकार का विरोध नहीं जान पड़ा।१ दोनों ही का लक्ष्य कल्याण है। फर्क यही है कि एक जीवन के सत्य को समतल पर देखता है, दूसरा ऊर्ध्वतल पर। और चूंकि पंत मनुष्य का सर्वांगीण विकास चाहते हैं, मनुष्य के अन्तर और बाहर दोनों का उन्नयन चाहते हैं इसलिए उन्होंने भूत और अध्यात्म दोनों के मंगलकारी सत्य का समन्वय किया है।

भूत और अध्यात्म का मांगलिक समन्वय

''महात्माजी के प्रति' शीर्षक कविता में पंत जी गांधीवाद की ओर आकर्षित हैं। यह आकर्षण भूतवाद और अध्यात्मवाद के आरम्भिक समन्वय की सूचना देता है—

वस्तु सत्य का करते भी तुम जग में यदि आवाहन,
सबसे पहले विमुख तुम्हारे होता निर्धन भारत;
मध्य युगों की नैतिकता में पोषित शोषित-जनगण
बिना भाव स्वप्नों को परखे कब हो सकते जाग्रत?
सफल तुम्हारा सत्यान्वेषण, मानव सत्यान्वेषक!
——महात्मा जी के प्रति (आ० क० पृ० ८४)

इन पंक्तियों में वस्तु-सत्य को श्रेष्ठ कहा गया है किन्तु भाव-स्वप्न की उपयोगिता को भी स्वीकार किया गया है और गांधी जी द्वारा

---

१. ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय अध्यात्म दर्शन में मुझे किसी प्रकार का विरोध नहीं जान पड़ा, क्योंकि मैंने दोनों का लोकोत्तर कल्याणकारी सांस्कृतिक पक्ष ही ग्रहण किया है।—पर्यालोचन (आ० क० पृ० ३०)।

प्रतिष्ठित सत्य की अभ्यर्थना की गई है। गांधी जी साध्य के अतिरिक्त साधन (Medium) को भी महत्त्व देते थे। पंत जी भी मंगलमय, प्रेममय मानवोचित साधन के द्वारा साध्य की प्राप्ति करना चाहते हैं--

मानव को चाहिए, यहाँ मानवोचित साधन।

--दो लड़के (आ० क० पृ० ७८)

मार्क्स का मार्ग है क्रान्ति और वर्ग-संघर्ष का। वह खूनी रास्ता पंत को पसन्द नहीं क्योंकि पंत ने मनुष्य की एक बड़ी कोमल, सुन्दर, सुसंस्कृत, सुकुमार कल्पना की है। पंत की यह कांत मानव-कल्पना संघर्ष की आग, बाढ, उल्का, झंझा को सह ही नहीं सकती--

वह्नि, बाढ़, उल्का, झंझा की भीषण भू पर
कैसे सह सकता है कोमल मनुज कलेवर!

--दो लड़के (आ० क० पृ० ७८)

'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का स्पष्ट समन्वय हुआ है। पंत जी प्रत्यक्ष जगत के उन्नयन के भी अभिलाषी हैं और मार्क्सवाद के प्रतिकूल ईश्वर की चिरन्तन सत्ता

दर्शन-विज्ञान में भी विश्वास करते हैं। पंत जी इसे 'नवीन **समन्वय एवं** भौतिकवाद' कहते हैं जो उन्नीसवीं सदी के संकीर्ण **आशावाद** भौतिकवाद से भिन्न है और जो दर्शन और विज्ञान दोनों के, मानव सभ्यता के अन्तर्बाह्य विकास के, ऐतिहासिक समन्वय से बना है ?--

दर्शन युग का अन्त, अन्त विज्ञानों का संघर्षण,
अब दर्शन-विज्ञान सत्य करता नव्य निरूपण।

इस समन्वय में विश्वास करने के कारण पंत जी में सदा एक आशावाद लहराता रहता है। वे विज्ञान के सत्य को बड़े विश्वास

१. पर्यालोचन (आ० क० पृ० २३)

मे देखते हैं। उन्हे लगता है कि विज्ञान मनुष्य के भविष्य की एक बडी महान् पूँजी है। इस दृष्टि से देखने पर उन्हे लगता है कि यद्यपि विज्ञान आज युद्ध का हथकडा बना है किन्तु इस नाश-लीला के पर्दे मे एक नूतन भविष्य भी छिपा है। तब युद्ध और वर्गसघर्ष भी उन्हे प्रिय लगने लगते है क्योकि वे जनगण के भविष्य के वाहक-से लगते हैं——

तुमुल वर्ग संघर्ष में निहित जनगण का भविष्य लोकोत्तर,
इन्द्रचाप पुल सा नव वत्सर शोभित प्रलयप्रभ मेघों पर!
आओ हे दुर्धर्ष वर्ष! लाओ विनाश के साथ नव सृजन,
विंश शताब्दी का महान् विज्ञान ज्ञान ले, उत्तर यौवन!

——१९४० (आ० क० पृ० १००)

(लेकिन इन पंक्तियों मे अभिव्यक्त विचार को सिद्धात-वाक्य से अधिक १९४० की उस परिस्थिति के भीतर से देखना होगा जिसमें ससार में साम्राज्यवादी युद्ध चल रहे थे और साम्राज्यवाद से पीडित भारतवर्ष इस युद्ध मे साम्राज्यवादी शक्तियों को क्षीण होते देखकर अपने मुक्त भविष्य के प्रति आश्वस्त हो रहा था।)

प्रगतिवाद का रोमांटिक रूप

प्रगतिवाद नर-नारी की मुक्तता का सदेश लेकर आया था। सामत-युग में नारी पुरुष की सपत्ति भर थी। पुरुष के बिना उसका जीवन अपूर्ण समझा जाता था। इस नारी-सम्बन्धी नैतिकता का प्रगतिवाद ने विरोध किया और नारी-स्वातन्त्र्य का झडा ऊंचा किया। पत जी ने भी नारी-सम्बन्धी नीति का पुनर्मूल्यांकन किया[१] और कहा कि नारी पुरुष की यौना-

---

१. सामंत युग के स्त्री पुरुष संबंधी सदाचार का दृष्टिकोण अब अत्यन्त संकुचित लगता है। उसका नैतिक मानदंड स्त्री की शरीर यष्टि रहा है। उस सदाचार के एक अचल छोर को हमारे मध्ययुग की सती और हमारी बालविधवा अपनी छाती से चिपकाई हुई हैं और दूसरे छोर को उस युग की देन वेश्या। 'न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति' के

कांक्षा की खुराक भर नहीं है । वह प्रतिष्ठित आत्मपूर्ण मानवी है । उसे पुरुष पर अवलंबित न होकर पूर्ण स्वाधीन होना चाहिए——

योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित ।

प्रगतिवाद में नारी के अधिकारों के साथ यौन-मर्यादा का भी पुनर्मूल्यांकन हुआ । फ्रायड का वह सिद्धांत सामने था ही जिसमे यौन-वृत्ति (Sex instinct) को ही जीवन के सारे व्यापारो और भावो का आधार माना जाता है और जिसमे दमित इच्छाएँ अनेक रोगो और अनाचारो का जन्म देती है। फलत नारी-स्वातन्त्र्य का एक पक्ष यौन-स्वातन्त्र्य भी हो गया। फिर तो वस्तुवादी चित्रण के नाम पर निम्नवर्गीय नर-नारियों का अश्लील से अश्लील वर्णन होने लगा और अभिजात वर्गो की यौन-मर्यादा एव सामाजिक लाज को असत् कहा जाने लगा । पत जी मे एक प्रकार की यौन-मर्यादा है किन्तु 'ग्राम-युवती' आदि कुछेक कविताएँ रूमानी (रोमांटिक) अवश्य है——

खींचती उबहनी वह, बरबस
चोली से उभर-उभर कसमस
खिचते संग युग रसभरे कलश;—
जल छलकाती,
रस बरसाती

अनुसार उस युग के आर्थिक विधान में भी स्त्री के लिए कोई स्थान नहीं और वह पुरुष की संपत्ति समझी जाती रही है । स्त्री स्वातंत्र्य संबंधी हमारी भावना का विकास वर्तमान युग की आर्थिक परिस्थितियों के साथ ही हो रहा है । स्त्रियो का निर्वाचन अधिकार संबंधी आंदोलन बूर्ज्वा संस्कृति एवं पूजीवादी युग की आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है । सामंत युग की नारी नर की छाया मात्र रही है ।

बलखाती वह घर को जाती,
सिर पर घट
उर पर धर पट।

——ग्राम युवती (आ० क० पृ० ८८)

बल्कि इस कविता में जगह-जगह अंग-रति और वस्तु-रति एवं मयूर-वृत्ति (Exhibitionism) का भी उल्लेख हो गया है। जैसे——

सरकाती-पट,
खिसकाती लट,——
शरमाती झट
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट!

——ग्राम युवती (आ० क० पृ० ८७)

अधरों पर धरे पकी बाली।

——ग्राम युवती (आ० क० पृ० ८९)

यह कविता प्रगतिवादी सी मानी में है कि कवि गाँव के इस यौवन और सौंदर्य को रूढ़िग्रस्त वैषम्यवादी सामाजिक व्यवस्था के नीचे दो दिनों तक खिलकर मुरझाता देखता है और उस सामाजिक व्यवस्था को उलट देने का क्रांतिपूर्ण संकेत करता है——

रे दो दिन का
उसका यौवन!
सपना छिन का
दुःखों से पिस,
दुर्दिन में घिस,
जर्जर हो जाता उसका तन!

——ग्राम युवती (आ० क० पृ० ८९)

'अतृप्त वासना' के स्वाभाविक उभार की बात 'धोबियों का नृत्य' शीर्षक कविता में भी कही गई है और जैसे उसे स्वास्थ्यकर समझा गया है क्योंकि इसमें चतुर गुजरिया मन हर लेती है——

चोली के कन्दुक रहे उघर,
(स्त्री नही गुजरिया, वह है नर)
....
उर की अतृप्त वासना उभर
इस ढोल मँजीरे के स्वर पर
प्रिय जनगण को उत्सव अवसर,—
लो छन, छन, छन, छन,
छन, छन, छन, छन,
चतुर गुजरिया हरती मन !

—धोबियों का नृत्य (आ० क० पृ० ६२)

अब जरा प्रगतिवाद के विभाव-पक्ष पर विचार कर ले। प्रगतिवाद कला की जो व्याख्या करता है उसके अनुसार कला का उद्देश्य मनुष्य के प्रत्यक्ष सामूहिक जीवन का उन्नयन होना है। यहाँ पहुँचकर कला के सत्य, शिव और सुन्दर सबके मूल्य बदल जाते है। प्रगतिवादी कला का सत्य प्रत्यक्ष सामूहिक जीवन का स्थूल सत्य होता है ; मन का, कल्पना का सूक्ष्म सत्य नही। उसका शिव (मगल) व्यक्ति का मगल न होकर समाज का मगल होता। वह अभिजात (Aristocratic) वर्ग का मंगल न होकर, शोषित, पीडित श्रमजीवी का मगल होता है। प्रगतिवादी कला श्रमजीवियो के अपूर्ण जीवन को पूर्ण करना चाहती है। इसी प्रकार उसका सौदर्य नगर का सवर्ण सौदर्य या कल्पना एक आदर्श का सौंदर्य नही होता। प्रगतिवाद उस सौदर्य का अभिलाषी है जो उसे निम्न वर्ग की उस कुरूपता मे मिलता है जो गिरी हुई हसीन इमारत के खडहर की तरह अपने मे विगत सौदर्य की याद लिए वर्त्तमान के प्रति व्यग्य करती है। प्रगतिवादी पंत ने भी कला के सत्य, शिव और सुन्दर की ऐसी ही व्यायाख्या की है। उन्होने कला के न तत्त्वो के आदर्श–सूक्ष्म रूप को काल्पनिक एव बनावटी कहकर छोड

वस्तुवादी कला

दिया है और नाम-रूपात्मक सामाजिक सम्बन्धों के भीतर से उभरने वाले उनके स्थूल यानी वास्तविक (आदर्श नहीं) अर्थ को ग्रहण किया है। उनकी कला का उद्देश्य भी जन-जीवन की अपूर्णता को पूरी करना है और कुरूप मे रूप ढूँढना है--

बन गए कलात्मक भाव
जगत के रूप-नाम,
सुन्दर, शिव, सत्य
कला के कल्पित माप-मान
बन गए स्थूल
जन-जीवन से हो एक प्राण ?
मानव स्वभाव ही
बन मानव आदर्श सुकर
करता अपूर्ण को पूर्ण
असुन्दर को सुन्दर ।

--नव दृष्टि (आ० क० पृ० ७२)

तात्पर्य यह कि प्रगतिवादी पंत ने कला के प्रति अपनी आदर्शवादी दृष्टि छोड़कर वस्तुवादी दृष्टि रखी । फलत. इसे वे 'नवदृष्टि' कहते हैं। उन्होंने 'ग्राम चित्र' आदि कविताओं में 'पल्लव'-काल के सुन्दर लोक को छोड़कर गाँव की असुन्दर धरती का और उसके वासियों का, कल्पना के स्वर्ग को छोड़कर वास्तविकता के 'नरक' का चित्रण किया--

यहाँ नहीं है चहल पहल वैभव विस्मित जीवन की,
यहाँ डोलती वायु म्लान सौरभ मर्मर ले बन की ।
....
यहाँ खर्व नर (बानर?) रहते युग युग से अभिशापित,
अन्न वस्त्र पीड़ित असभ्य, निर्बुद्धि, पंक में पालित ।

--ग्राम चित्र (आ० क० पृ० ९०)

लेकिन ऐसा लगता है कि पंत जी से न तो सुन्दर का संस्कार छूट सका १ और न प्रकृति के आकर्षण का। प्रगतिवादी-रचना-काल में भी वे ग्राम-युवती, ग्राम-श्री, नृत्य आदि गाँव के शोभन पक्षों का ही अधिक चित्रण करते रहे। इसी प्रकार प्रकृति के प्रति उनकी आसक्ति भी बनी रही और वे सदा इस बात की कामना करते रहे कि काश! मनुष्य भी प्रकृति की तरह प्रसन्न होता, पक्षी की तरह गा सकता---

गा सके खगों सा मेरा कवि
विश्री जग की संध्या की छवि!

---कलरव (आ० क० पृ० ६८)

इसी प्रकार वास्तविकता से अलग एक आदर्श भावना भी उनमें बनी रही, एक स्वप्न भी बना रहा और वे कामना करते रहे कि काश! वह वास्तविक हो जाता---

स्वप्न वस्तु बन जाय सत्य नव, स्वर्ग मानसी ही भौतिक भव,
अन्तर जग ही वहिर्जगत बन जावे, वीणा पाणि,.........!

प्रगतिवाद, जैसा ऊपर निवेदन किया जा चुका है, भावुकता को गर्हित समझता है। वह तरल सहानुभूति में नहीं, वास्तविक अधिकार-दान में विश्वास करता है। इसलिए वह यथार्थ शैली को अपनाता है। जिसमें भावुकता की जगह बौद्धिकता ले लेती है पंत जी ने भी इस शैली को अपनाने का दावा किया है। उनके शब्द हैं---"जहाँ आलोचनात्मक दृष्टि की आवश्यकता है वहाँ केवल भावुकता और सहानुभूति से कैसे काम चल सकता है? वह तो ग्रामीणों के दुर्भाग्य पर आँसू

यथार्थ शैली और कला

---

१ बसे कम्यूनिष्ट पार्टी के लिए श्री जोशी के नाम संदेश भेजते हुए पंत जी ने लिखा था कि 'मेरे प्राण सौंदर्यवादी हैं, और मेरा सौंदर्य लोकप्राण है, इसीलिये मैं कम्यूनिज्म से प्रभावित हूँ"।

बहाने या पराधीन क्षुधा-ग्रस्त किसानों को तपस्वी की उपाधि देने के सिवा हमें आगे नहीं ले जा सकती । इस प्रकार की थोथी सहानुभूति या दया-काव्य (पिटी पोयट्री) से मने 'वे आँखें', 'गाँव के लड़के', 'वह बुड्ढा', 'ग्राम वधू', 'नहान' आदि कविताओं को बचाया है ।"

लेकिन किसी के लिए एक वैज्ञानिक, तटस्थ बौद्धिक, यथार्थ-शैली का प्रयोग करना कठिन है । पंत के लिए भी । फिर भी कुछ पंक्तियाँ अपने यथार्थ में खिल सकी हैं, जैसे——

मेरे आँगन में, (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे-से लड़के आ जाते हैं अक्सर !
नंगे तन, गदबदे, साँवले, सहज छबीले,
मिट्टी के मटमैले पुतले,——पर फुर्तीले ।

——दो लड़के (आ० क० पृ० ७८)

'धोबियों का नाच' आदि कविताओं में आदर्श-मुक्त यथार्थ चित्रण के कारण पंत की कला का एक नया विकास हुआ है, उसमें ताजगी के नये तत्त्व आए हैं, जैसे हास्य आदि। पहले की कविताएँ आदर्शवादी निष्कर्षों से बोझिल थी । अब वे उन्हें पटककर जैसे हल्की हो गई हैं, खिलने लगी हैं ।

प्रगतिवाद विचार को ही अलंकार मानता है । पंत ने इस सिद्धांत को स्वीकार किया है कि 'नवीन आदर्श और विचार अपनी ही उपयोगिता के कारण संगीतमय एवं अलंकृत होते हैं क्योंकि उनका रूप चित्र अभी सद्य होता है और उनके रस का स्वाद नवीन ।'

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार,
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार !
युग कर्म शब्द, युग रूप शब्द, युग सत्य शब्द,
शाब्दित कर भावों के सहस्र शत मूक अब्द

——वाणी (आ० क० पृ० १०१)

इस प्रकार पंत की प्रगतिवादी रचनाएँ युग के विचारो की वाहिका भर है । युग के कर्म, रूप और सत्य में ही उनकी कविता शब्द पाती है ।

पंत जी की प्रगतिवादी रचनाओं की कला मे कुछ आलोचको को सन्देह रहा है और वे पूर्ववर्त्ती रचनाओं की कला को श्रेष्ठ कहते रहे है। किन्तु मुझे लगता है कि प्रगतिवादी-रचना-काल मे पंत जी की कला का निश्चित विकास हुआ है । पंत जी की पूर्ववर्त्ती रचनाओ में केवल अलंकृत कल्पनाओ का चमत्कार रहा है जो बार-बार आवृत्त होकर अपना रस खो देता है । प्रगतिवादी-रचना-काल में पंत के काव्य को विचारों और भावों का नया सबल मिल गया है। इस कारण उनकी एकरसता (Monotony) मिट गई है और उनमे एक ताजगी और मोहक उत्फुल्लता आ गई है ।

प्रणय-गीत और नारी एंव प्रेम-भावना

नवल मेरे जीवन की डाल
बन गई प्रेम-विहग का वास

—पंत

नारीकला

पंतजी सुकुमार सूक्तियों के कोमल-प्राण कवि हैं। उन्होंने प्रकृति को नारी के रूप में देखा है और निसर्ग से तादात्म्य अनुभव करते समय स्वयं अपने को भी नारी के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने 'कोमल मनुज कलेवर'१ की कल्पना की है और 'अविराम प्रेम की बाँहों' में मुक्ति पाई है।२ उन्होंने पुल्लिंग शब्दों का स्त्रीलिंग प्रयोग किया है। कहा जा सकता है कि पंत जी की कला नारी कला (Faminine Art) है।

प्रकृति और प्रेम के कवि

पंत जी के प्राण सौंदर्यवादी हैं। उनकी सौंदर्य-भावना दो रूपों में—प्रकृति और नारी-प्रेम में प्रगट हुई है। कहा जा सकता है कि पंत जी प्रकृति और प्रेम के कवि हैं। उनके सौंदर्यजीवी मन ने अपनी सौंदर्य-बुभुक्षा की परितृप्ति के लिए एक ओर प्रकृति के उन्मद मधुवन की ओर देखा है और दूसरी ओर प्रेम-कलशी लिए 'निखिल छबि की छबि' लावण्यमयी नारी की ओर। एक ओर 'फूलों का हास' उन्हें अनुरक्त करता है और दूसरी ओर 'कपोलों की मदिरा'। पंत जी जब प्रकृति को देखते हैं तब उनके दृगों में 'विश्व सुखमा

---

१. वह्नि, बाढ़, उल्का, झंझा की भीषण भू पर
कैसे रह सकता है कोमल मनुज कलेवर!

२. अविराम प्रेम की बाहों में
है मुक्ति यही जीवन बंधन

का संसार' लिए नारी आ बैठती है और जब वे नारी को निहारते हैं तब उनके सामने प्रकृति की राशि-राशि सुषमा बिखर जाती है। जब वे चाँदनी को देखते हैं तब उनके सामने एक शर्मीली छुई-मुई-सी दुलहिन खड़ी हो जाती है।

दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
वह छबि की छुई-मुई-सी
मृदु मधुर लाज से मर-मर !

——चाँदनी (आ० क० पृ० ५६)

और जब वे नवयौवना ग्रामयुवती का ध्यान करते हैं तब उनके नयनों में नव असाढ़ की घटा-सी छा जाती है। जब ग्राम युवती हँसती है तो लगता है कि कोई स्रोत फूट पड़ा है, अधर जिसके दो किनारे हैं और दंत-पंक्ति फेनों की धवलिमा——

उन्मद यौवन से उभर
घटा सी नव असाढ़ की सुन्दर,
....
हँसती खल खल
अबला चंचल
ज्यों फूट पड़ा हो स्रोत सरल
भर फेनोज्वल दशनों से अधरों के तट !

——ग्राम युवती (आ० क० पृ० ८७)

इसी प्रकार जब वे 'भावी पत्नी' का ध्यान करते हैं तब उनके सामने 'व्योमबाला का शरदाकाश' छा जाता है और प्रेयसी की याद आते ही जैसे बिजली कौंध जाती है——

तड़ित सा सुमुखि ! तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार, उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर जब गम्भीर,
मुझे करता है अधिक अधीर ;

——आँसू से (आ० क० पृ० १६)

और दूसरी ओर इन्द्र धनुष देखते ही उन्हे किसी के रेशमी घूंघट की उद्वहनक्रिया (Unveiling Ceremony) की तस्वीर दीखने लगती है——

देखता हूँ, जब पतला
इन्द्र धनुषी हलका
रेशमी घूंघट बादल का
खोलती है कुमुद-कला ;
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान।
मुझे करता तब अन्तर्धान ;

——'आँसू' से (आ० क० पृ० १७)

नारी प्रकृति-मयी और प्रकृति नारी-मयी

इस प्रकार पंत जी की सौंदर्य-दृष्टि प्रकृति और नारी से परिचित है, जैसे उनके लिए एक ही सौंदर्य प्रकृति और नारी में बिम्बित है। सौंदर्य की इस समग्रता को प्रकृति और नारी मे खंडित करके देखना उनके लिए कठिन है। कहा जा सकता है कि पंत जी के लिए नारी प्रकृतिमयी और प्रकृति नारीमयी है। प्रकृति नारी स्वरूपा है और नारी प्रकृति-स्वरूपा। प्रकृति नारी का लावण्य-विस्तार है और नारी प्राकृतिक सुषमा का केन्द्रण। प्रकृति और नारी की इसी संधि-भूमि मे पंत की कला रूप सँवारती है। दूसरे शब्दों में पंत की कला प्रकृति के नारी-सुलभ गुणो से अलंकृत।

प्रेम-भावना का विकास-क्रम

हाँ, माता की स्नेहमयी गोद से वंचित एकाकी किशोर को प्रकृति ने ही पहले आकर्षित किया, बाद में नारी ने। 'वीणा' में कवि ने प्रकृति की निर्दोष सुषमा को नारी की सौंदर्य-माया से विशेष महत्त्व दिया था। कविता से

वीणा-काल

उसने आग्रह किया था कि वह वसंत बनकर आवे, कामिनी बनकर नहीं।१ स्वयं बाला से भी उसका आग्रह था कि वह उस कवि को जो प्रकृति के पालने में बादलों के दुलार और वायु के प्यारपूर्ण चुम्बनों के बीच पला है केवल अपनी शृंगार-मंजूषा में बाँध न ले।२

---

१. नव वसन्त-ऋतु में आओ,
नव कलियों को विकसाओ,
प्रेयसि कविते! हे निरुपमिते!
× ×
इन नयनों को समझाओ,
इन्हें न लड़ना सिखलाओ,
....
अज्ञाता की केश-राशि में
इन्हें न कस-कस बंधवाओ!
आओ, कोकिल बन आओ,
ऋतु-पति का गौरव गाओ,
प्रेयसि कविते! हे निरुपमिते!
—'वीण' पृ० १

२. बालकाल में जिसे जलद से
कुमुद कला ने किलकाया,
तारावलि ने जिसे रिझाया,
मृदु-स्वप्नों ने सुहलाया;

वस्तुत कवि के सामने एक समस्या थी कि--

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया;
बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दू-लोचन ?
भूल अभी से इस जग को !
तजकर तरल तरंगो को, इन्द्रधनुष के रंगों को,
तेरे भ्रू-भंगों से कैसे बिंधवा दू निज मृग-सा मन ?
भूल अभी से इस जग को।१
--मोह (अ० क० पृ० १)

मारुत ने जिसकी अलकों मे
चञ्चल-चुम्बन उलझाया
उसे आज अपनी ही छबि मे
केवल बाले न लुभा ले,--
उनका भी तो है कुछ भाग !
--वीणा, पृ० १?

१. इन पंक्तियों की आलोचना करते हुए निराला जी ने 'पंत जी और पल्लव' शीर्षक निबध मे लिखा था--

"कवि 'बाला' के 'बाल जाल' से छूटकर 'द्रुमों की मृदु छाया' में तथा 'प्रकृति की माया में' जीवित रहना चाहता है। यहाँ भी कला से विपरीत रति कराई गई है, जो निहायत अस्वाभाविक हो गई है। अगर 'बाला' के 'बाल-जाल' से छूटने का निश्चय है, तो छूटकर जहाँ ठहरिए, उसे दिखलाइए कि वह स्वभावतः 'बाला' के 'बाल-जाल' से ज्यादा आकर्षक है। अगर छूटे तो द्रुमों की मृदु छाया, में क्या करने गए ? प्रकृति से माया जोड़ने की क्या आवश्यकता थी ? --प्रकृति में ही रहे, तो उत्कृष्ट को छोड़कर निकृष्ट को क्यों ग्रहण किया ?--प्रकृति में 'बाला' से मधुर और क्या होगा ?--'बाला' को छोड़कर प्रकृति से परे जाते, जो जरूर आकर्षक बन जाता। यहाँ कला का पतन है--उसके स्वाभाविक विकास की प्रतिकूलता का दोष

पर इन पंक्तियों में नारी के प्रति वितृष्णा का भाव नहीं है। किशोर कवि इतना विरस नहीं हो सकता। उसे नारी के सम्मोहन का भय है। यह मोह और आत्मरक्षा की चेष्टा ही नारी के प्रति उसके आकर्षण का द्योतक है। आज नारी पहली बार केश-पास और भ्रू-चाप लेकर उस व्यक्ति के सामने खड़ी हुई है जिसे प्रकृति ने अपनी गोद में पालकर स्वप्न और कल्पनाजीवी बनाने के साथ ही जनभीरु भी बना दिया है और जो अबतक तरल तरंगों में खेलता, इन्द्रधनुष की सेज पर सोकर स्वप्न देखता तथा यौवन से अधिक शैशव को महत्त्व देता रहा है।१ स्वभावतः वह इस अपरिचिता से किञ्चित भयभीत होता है। उससे मिलने में उसे बड़ा सकोच होता है। वह उससे कतराना चाहता है। पर क्या ऐसा हो सका? 'वीणा' के बाद ही 'प्रेम' में उलझी 'ग्रंथि' निकली

ग्रंथि और परवर्ती काल

जो बहुतों की दृष्टि में कवि के अनुभूत प्रेम की वास्तविक ग्रंथि है जो समाज के संशय के कारण अनखुली रह गई। 'ग्रंथि' के अतिरिक्त 'उच्छ्वास' और 'आँसू' भी कवि के प्रेम के गीले गीत है।

आ गया है। यदि कोई कहे कि इस तरह एक विशाल प्रकृति में 'बाला' के 'बाल-जाल' को छोड़कर कवि अपने को मिला देना चाहता है, तो उत्तर यह है कि उस प्रकृति को 'बाला' के 'बाल-जाल' से स्वभावतः मधुर होना चाहिए। जहाँ 'बाला' के 'बाल-जाल' मिलते हों वहाँ मनुष्य के स्वभाव को द्रुमों की शीतल छाया कब पसन्द होगी?"

१. (क) विटप-डाल में बना सदन,
पहन गेरुवे रंगे वसन,
विहग-बालिका बन, इस बन को
तेरे गीतों से भर दूँ——
सन्ध्या के उस शान्त-समय!
——वीणा, पृ० २

'वीणा'--काल में ही एक जगत्कातर पर निर्दोष नारी-सम्मोहन का जन्म हुआ था। 'उच्छ्‌वास' में एक मनोरम बालिका मित्र की चर्चा की गई है।

सरल-शैशव की सुखद-सुधि-सी वही
बालिका मेरी मनोरम-मित्र थी !

——पर्वत प्रदेश में पावस (आ० क० पृ० १४)

उस 'मनोरम-मित्र' की ओर कवि का मन बरबस खिच आया——

मैं मंद हास-सा उसके
मृदु अधरों पर मडराया ;
औ उसकी सुखद सुरभि से
प्रतिदिन समीप खिच आया ।

——'उच्छ्‌वास' की बालिका (आ० क०पृ० १०)

शैशव और कशोर की सधि में उसी बालिका की आँखो मे कवि के म ने आकार पाया था——

करुण भौंहों मे था आकाश,
हास में शैशव का संसार ;
तुम्हारी आँखों में कर वास
प्रेम ने पाया था आकार !

——आँसू की बालिका (आ० क० पृ० ११)

स्पष्ट है कि नारी के रूपाकर्षण ने ही कवि के मन मे प्रेम का जन्म दिया। यानी यह प्रेम वास्तविक जगत् का प्रेम था। यह किशोरकालीन उच्छ्‌वासो और आकाक्षाओ से भरा था। यह अशरीरी नही था। हाँ,

प्रेम और रूपाकर्षण

(ख) चित्रकार ! क्या करुणाकर फिर
मेरा भोला बालापन ;
मेरे यौवन के अंचल मे,
चित्रित कर दोगे पावन ?

जिस रूप-लावण्य पर यह आश्रित था वह अवश्य ही अत्यन्त कमोल-मृदुल 'लघु लघु गात' था। यह एक भावक बुद्धिजीवी किशोर का प्रेम था जिसने नारी के कपोलों मे मदिरा देखी थी और हृदय में 'पावन गगा' की धारा एव वाणी मे त्रिवेणी की लहरो का गान।

कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन।
—'उच्छ्वास' की बालिका (आ० क० पृ० ९)

तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग मे पावन गंगा-स्नान ;
तुम्हारी वाणी मे कल्याणि !
त्रिवेणी की लहरो का गान !
—आँसू की बालिका (आ० क० पृ० ११)

लेकिन स्नेह पल्लवित भी नहीं हो पाया था, लाज का सकोच-पूर्ण राग भी न गया था कि तुषारापात हो गया। कुछ लोगो की दृष्टि में 'ग्रथि' पत जी की वास्तविक ग्रथि थी जो समाज और सकोच के सशय मे खुली नही। गाठ गाठ ही रह गई और कविवर आजतक अविवाहित हैं। उस समय अग्रेजी के जिन रोमाटिक कवियो का प्रभाव हिन्दी पर पड रहा था उनके काव्य मे स्वच्छद प्रेम का स्वर अत्यत मुखर होकर प्रगट हो रहा था। छायावादी कवि भी कुछ उसी प्रकार के प्रेम-गीत लेकर आए थे। पत मे भी स्वच्छंद प्रेम का आग्रह था। किन्तु तत्कालीन आचारपूत साहित्यिक समाज इस प्रकार के प्रेम अथवा शृगार को कविता का वर्जित प्रदेश (Forbidden land) मान रहा था। फलत. पंत के प्रेम-गीतो मे स्वच्छद प्रेम का आग्रह, अम् आचार के प्रति क्षोभ और और इन दोनों से उत्पन्न स्वाभाविक वैदना है।

स्वच्छंद प्रेम, आचार और वेदना

'वीणा' की भावना 'ग्रथि' मे शायद स्वानुभूत होकर अधिक सघन

हो गई है। 'ग्रंथि' एक प्रवंचित प्रेमी के क्षुब्ध हृदय की आर्त्तपुकार है——

कौन दोषी है ? यही तो न्याय है!
वह मधुप बिंध कर तड़पता है, इधर
दग्ध चातक तरसता है,——विश्व का
नियम है यह; रो, अभागे हृदय ! रो !!

——ग्रंथि, पृ० ८७

'उच्छ्‌वास' की मनोरम बालिका मित्र 'पल्लव' मे किशोरी हुई। पर 'पल्लव'-काल मे भी संयोग इच्छित रूप मे उपलब्ध नही हो सका—— 'किए भी हुआ कहाँ संयोग'? यहाँ भी प्रणय करुण ही रहा और वह इसलिए कि इच्छित संयोग तो हुआ ही नही, प्रेम का दुराव भी कठिन हो गया। खुल पड़ने के भय ने प्रेम को करुणतर बना दिया।

करुण है हाय ! प्रणय,
नहीं दुरता है जहाँ दुराव ;
करुणतर है वह भय,
चाहता है जो सदा बचाव,

——आँसू, पल्लव, पृ० १६

अतः 'आँसू' भी कवि के प्रेम का 'गीला-गान' है, जिसका——

वर्ण वर्ण है उर की कम्पन,
शब्द शब्द है सुधि की दंशन ;
चरण चरण है आह,

——आंसू, पल्लव, पृ० ११

हाँ, 'आँसू' मे पंत जी ने खुलकर अपने को गंगाजल की तरह पवित्र कहा है। कवि को दुःख है कि संसार उसके हृदय के प्रेम की पुनीतता को क्यों नही देखता ? दुनियावाले उसके प्रेम को पाप क्यो बता रहे है——गंगाजल को मदिरा की संज्ञा क्यों दी जा रही है ? संसार के इस जड स्वेच्छाचार के प्रति कवि के मन में बडा क्षोभ उमडता है——

कभी तो अब तक पावन-प्रेम
नही कहलाया पापाचार,
हुई मुझको ही मदिरा आज
हाय, क्या गङ्गाजल की धार !!
हृदय ! रो, अपने दुःख का भार !
हृदय ! रो, उनको है अधिकार !
हृदय ! रो, यह जड़-स्वेच्छाचार,
शिशिर का-सा समीर-सञ्चार !!

——आँसू, पल्लव, पृ० १७

कवि पलकें मूँदकर प्रिया-ध्यान का रसपान करने की चेष्टा तो करता है पर इस क्रिया मे जैसे उसका अस्तित्व डोल उठता है। लेकिन अतीत पर किसका वश है ? इस प्रकार प्रेम के उपहार-स्वरूप केवल रह जाते है——एक उच्छ्वास और एक स्निग्ध स्मृति। पर वह स्मृति (शायद आत्मरति के कारण) कवि की दृष्टि मे इतनी पुनीत और करुण है कि उसे लगता है कि समाज और नियति द्वारा अभिशापित उसके प्रेम की करुण कहानी युग-युग तक चलती रहेगी, पवन और भ्रमर उसकी मूक गाथा सुनाते रहेगे——

मूँद पलकों मे प्रिया के ध्यान को
थाम ले अब, हृदय ! इस आह्वान को !

त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य पावन स्थान को !
तेरे उज्ज्वल आँसू सुमनों में सदा
वास करेंगे, भग्न हृदय ! उनकी व्यथा
अनिल पोछेंगे ; करुण उनकी कथा
मधुप बालिकाएँ गाएँगी सर्वदा !

——आँसू की बालिका (आ० क० पृ० १२)

इस प्रकार पंत के आरम्भिक प्रेम मे एक आवेग और विफलता

की वेदना है । 'गुंजन'-काल (१९३०-३२) में दर्शनशास्त्र के अनुशीलन ने कवि को एक चिन्तनलोक में ला खड़ा किया। यहाँ पहुँच कर प्रेमका आवेग जैसे कुछ स्थिर हो गया। कवि अबतक अपनी वेदना गा रहा था। अब वह आत्मकल्याण का सधान करने निकला। दर्शनशास्त्र के अध्ययन के परिणाम-स्वरूप उसे लगा कि अबतक जिस वैयक्तिक जीवन को वह प्यार कर रहा था वह महज उसका मोह था। जीवन की क्षणभंगुरता जैसे प्रत्यक्ष होने लगी। तब महज जीवन व्यतीत करने की भावना को एक तरह का धक्का लगा। दर्शन के अध्ययन ने उस सश्लेषणात्मक सत्य का आलोक दिया। उसका मन जैसे झनझना उठा। वह सुन्दरम् से शिवम् की भूमि में आ गया। सम्पूर्ण जगत् की क्षणभंगुरता को अमरता से बाँध देने की आकुलता में वैयक्तिक वेदना डूब गई——

जग के उर्वर आँगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन,
बरसो लघु तृण तरु पर हे चिर अव्यय चिर नूतन!
....
मृन्मरण बांध दो जग का दे प्राणों का आलिङ्गन!

——प्रार्थना (आ० ग्रा० पृ० ४५)।

कवि वैयक्तिक आसक्तियों से ऊपर उठकर अपने मधुर-प्रेम के आग्रही मन को विश्व-वेदना में प्रतपित करने का उपक्रम करने लगा——

तप रे मधुर मधुर मन!
विश्व वेदना में तप प्रतिपल,

——तप (आ० का० पृ० ५१)।

गुंजन की प्रणय-भावना

फलत 'गुजन' मे पूर्व रचनाओं का न आवेग है, न आर्त्तता, न अविश्वास है , न निराशा, न शिकवा-शिकायत है, न रोना-धोना। 'गुजन' के प्रणय-गीत आशा के आलोक से दीप्त और विश्वास के पराग से सुवासित प्रणय के सयोग-गीत है। इसका कारण यह है कि 'गुजन' मे कवि शरीर मे मन की ओर, दृष्टि से अनुभूति की ओर तथा सुन्दर से शिव की ओर आया है और उसकी प्रकृति सुख-दुःख मे समत्व स्थापितकर अन्तर्मुखी बनने लगी है। इसलिए यहाँ पहुँचकर कायिक वियोग-वेदना मानसिक सयोग के उल्लास-विलास मे परिवर्तित हो गई है। कवि की सौंदर्य-भावना दृष्टि की सीमा का अतिक्रमण कर अनुभूति लोक में प्रणय का नया अभियान साज चली है। प्रकृति ही नही, अब नारी भी स्वप्न का छायाचित्र बनकर आ रही है।

अरुण-अधरों की पल्लव-प्रात,
मोतियों-सा हिलता-हिम-हास ।
इन्द्रधनुषी-पट से ढग गात,
बाल-विद्युत् का पावस-लास,

—गु० पृ० ४१

ऐसी मनोदशा मे वियोग कहाँ? यहाँ तो चिर सयोग है। कवि की प्रेयसी सदा-बहार बनकर उसके सामने उपस्थित है—

प्रिये, कलि-कुसुम-कुसुम में आज
मधुरिमा मधु, सुखमा सुविकास,
तुम्हारी रोम-रोम छबि-व्याज
छा गया मधुवन मे मधुमास ।

—गु० पृ० ५८

आज तो प्रेयसी की मुस्क्यान से कवि के आँगन का कोना-कोना मुस्कुरा रहा है—

मुस्कुरा दी थी क्या तुम, प्राण!
मुस्कुरा दी थी आज विहान।?
आज गृह-वन-उपवन के पास
लोटता राशि-राशि हिम-हास,
खिल उठी आंगन में अवदात
कुन्द कलियों की कोमल-प्रात।

—गु० पृ० ४६

प्रगतिवाद और प्रेम-भावना

'गुंजन'–काल के बाद पंत प्रगतिवादी काल ('युगान्त' से 'ग्राम्या' तक) में आते हैं। निवेदन किया जा चुका है कि प्रगतिवाद का दृष्टिकोण प्रेम के प्रति भी यथार्थवादी था। वह प्रेम के यथार्थ चित्रण करने में नहीं हिचकता था और अभिजात यौन-भावना को अस्वास्थ्यकर मानता था। इस काल में पंत ने भी उच्चवर्गीय प्रेम को 'कृत्रिम रति' कहकर उसकी अवहेलना की—

कृत्रिम रति की है नहीं हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव-कल्पित मनोज।

अभिजात प्रेम का एक उदाहरण है ताजमहल। यहां एक धनी व्यक्ति अपने व्यक्तिगत प्रेम की याद में दुनिया की सबसे हसीन इमारत खड़ी करता है और दूसरी ओर उन कंगालों और मजदूरों को, जिनकी कमाई और पैसे से यह महल बन सका, भूख और अभाव में तड़पते छोड़ देता है। वह अपने प्रेम की लाश ढोता है और जिन्दा आदमियों को मुर्दा बना देता है। पंत को यह एकान्तिक, असामाजिक प्रेम नहीं भाया और वे वास्तविक रति की ओर चले। 'ग्राम युवती' इसका एक उदाहरण है जिसमें प्रेम गाँव के निश्छल वातावरण की तरह निरावृत होकर उमंगों में नाच-नाच उठा है—

खींचती उबहनी वह, बरबस
चोली से उभर उभर कसमस
खिंचते संग युग रस भरे कलश;—
जल छलकाती,
रस बरसाती
बलखाती वह घर को जाती,

——ग्राम युवती (आ० क० पृ० ८८)

लेकिन जिस तरह पर्वतीय प्रदेश के होकर भी पंत जी मधुवन के गायक रहे उसी तरह प्रगतिवादी होकर भी वे शहरी भावुक किशोर की दृष्टि से ही प्रेम को देखते रहे। उपर्युक्तवर्णन इस दृष्टि को पुष्ट करता है।

प्रगतिवाद फ्रायड के यौन-सिद्धांत से प्रभावित था जिसमे अतृप्त वासना सभी व्यापारों का संचालन करती है। पंत जी ने 'धोबियों का नृत्य' आदि कविताओं मे अतृप्त वासना का उल्लेख किया है और उसकी सहज अभिव्यक्ति को स्वास्थ्यकर माना है क्योंकि यह गुजरिया मन हर लेती है——

उर की अतृप्त वासना उभर
इस ढोल मंजीरे के स्वर पर
. . . .
चतुर गुजरिया हरती मन !

——धोबियों का नृत्य (आ० क० पृ० ९२)।

'धोबियों का नृत्य' शीर्षक कविता मे कुछ आलोचकों को रसाभास मालूम होता है क्योंकि इसमे गुजरिया, जिसकी चोली के कन्दुक उभर रहे है, स्त्री नही, साक्षात् मर्द है और इस दृष्टि से यह चित्र 'घिनौना' लगता है——

चोली के कुन्दक रहे उभर
(स्त्री नही गुजरिया, वह है नर)

——धोबियों का नृत्य (आ० क० पृ० ९२)

किन्तु रसाभास या घिनौनापन का यहाँ अवकाश ही नहीं है। यहाँ तो एक अनिवार्य स्थिति का हास्यपूर्ण वर्णन किया गया है और इस नाटकीय अनिवार्यता में शृंगार और हास्य की एकृति पंत की काव्यचेतना की एक नई सूचना देती है

प्रेम और रसशास्त्र

रसशास्त्र की दृष्टि से पंत जी के प्रणय-गीतों का रस शृंगार है। कवि के हृदय का रति-भाव (प्रेम) इसका स्थायी भाव[1] है, नारी-सौंदर्य आलम्बन[2] तथा प्रकृति-सौंदर्य उद्दीपन विभाव[3] हैं, कवि और उसकी

---

१. (क) मैं मंद हसा-सा उसके
मृदु अधरों पर मडराया ;
——'उच्छ्वास' की बालिका (आ० क० पृ० १०)

(ख) नवल मेरे जीवन की डाल
बन गई प्रेम-विहग का वास !
——गुं० पृ० ५०

२. करुण भौंहों में था आकाश,
हास में शैशव का संसार;
तुम्हारी आँखों में कर वास
प्रेम ने पाया था आकार !
——आँसू की बालिका (आ० क० पृ० ११)

३. (क) देखता हू, जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिय भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुर को ;
....
अकेली आकुलता-सी प्राण !
——'आँसू' से (आ० क० पृ० १७)

प्रेयसी के पुलक, कंपन आदि अनुभाव[1] हैं और प्रेयसी की स्मृति एवं रूप-अनुमान आदि संचारी[2] भाव हैं।

(ख) अरे अब जल-जल नवल प्रवाल
लगाते रोम-रोम में ज्वाल
आज बौरे रे तरुण-रसाल
भौंर-मन मँडरा गई सुवास
—गु० पृ० ५१

१. (क) एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ किया मानों प्रणय सम्बन्ध था।
लाज की मादक सुरा की लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से
छलकती थी बाढ सी सौंदर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप से।
—ग्रंथि में (आ० क० पृ० २०)

(ख) अरे वह प्रथम-मिलन अज्ञात !
विकम्पित मृदु-उर, पुलकित-गात,
सशंकित ज्योत्सना-सी चुपाचप,
जड़ित-पद, नमित-पलक-दृग-पात ;
—गु० पृ० ४३

२. (क) जब प्रणय का प्रथम परिचय मूकता
दे चुकी थी हृदय को, तब यत्न से
बैठकर मैंने निकट ही, शान्त हो,
विनत वाणी में प्रिया से यों कहा—
...........................]

पर चूँकि पंत जी का प्रेम बहुलाश मे भावात्मक है, इसलिए यहाँ अनुभावो का उतना विशद वर्ण नही है जितना आलंबन, उद्दीपन और सचारियो का'। उद्दीपन की चर्चा प्रकृति-चित्रण के प्रसग में ो चुकी है। आलम्बन के रूप मे नारी के जिस रूप की अर्चना की गई है उसका वर्णन इसी सदर्भ मे आगे किया जाएगा।

प्रेम और कामशास्त्र

कामशास्त्र प्रेम अथवा वासना को एक सर्वव्यापी गुण मानता है। पत जी वासना को नजर-अन्दाज नही करते। वे आकाक्षा की विवशता को स्वीकार करते ह जो विवेक का अकुश नही मानता। जब कामना का ज्वार उठता है तब वह तर्क और बौद्धिक विश्लेषण से दबाये नही दबता और दिल के अन्य सभी भावों-विचारो पर हावी हो जाता है। 'एकतारा' शीर्षक कविता मे कामना की इस स्थिति का वर्णन हुआ है—

आकांक्षा का उच्छ्वसित वेग
मानता नहीं बंधन विवेक!

—एकतारा (आ० क० पृ० ५४)

प्रेम की बंसी किसे नही बेधती, प्रेम किसे नही व्यापता? जान या अनजान में सभी उससे प्रभावित होते है। कोई उस प्रभाव को प्रकट कर देता है और कोई उसे अन्दर छिपाये रखता है।

निज दया से द्रवित उर में स्थान दे
क्या न सरस विकास दोगी तुम उसे?

—ग्रंथि मे (आ० क० पृ० २०-२१)

(ख) तड़ित सा सुमुखि! तुम्हारी ध्यान,
प्रभा के पलक मार, उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर जब गंभीर
मुझे करता है अधिक अधीर;

—आंसू से (आ० क० पृ० १६)

प्रेम की बंसी लगी न प्राण!

. . . .

बचा कौन जग मे लुक छिप कर
बिन्धते सब अनजान !

——मछुए का गीत (आ० क० पृ० ४४)

इस ेम की रीति अनोखी है। यह अपाङ्गो से अधिक देखता है। इससे कोई अलग नहीं हो सकता। दूर होने पर तो वह और बढ़ जाता है। प्रेम की डोरी में ऐसा लचीलापन है कि वह कभी टूटती ही नहीं——

यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की,
जो अपाङ्गो से अधिक है देखता,
दूर होकर और बढ़ता है, तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा ?

——ग्रथि से (आ० क० पृ० २२)

मनोविश्लेषण के आचार्य (फ्रायड आदि) मानते है कि कामवृत्ति मनुष्य के साथ ही आती है और निरन्तर उसका विकास होता रहता है, जिस प्रकार शरीर या बुद्धि का विकास होता है। देह और बुद्धि की तरह काम की भी विभिन्न अवस्थाएं (Stages) होती है। काम की आरम्भिक अवस्था में किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता नही होती। आदमी खुद अपने को प्यार करता है। इस अवस्था को आत्मरति (Narcissism) की अवस्था कहते है। यह आत्मरति की भावना कभी मरती नही। इसीके कारण व्यक्ति अपने को आभूषित रखता है और अपनी वस्तुओ की रक्षा करता है। इस आत्मरति के अनेक प्रकार होते है——जैसे अप वर्त्तमान स्वरूप में रति (समवयस्क, समलिङ्गी प्रेम-सबध आदि इसके उदाहरण है), अपने किसी अग के प्रति रति इत्यादि। 'ग्राम युवती' मे आत्मरति या अंग-रति की स्पष्ट प्रवृत्ति मिलती है——

(१) शरमाती झट
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट !

(२) आम्र बौर, सहजन, पलाश से,
निर्जन में सज ऋतु सिंगार ।

——ग्राम युवती (आ० क०पृ० ८७-८८)

कही-कही तो मयर-वृत्ति (Exhibitionism) भी मिल जा सकती है। पंत जी ने स्वय कहा है कि उन्होने किशोर प्रेम का वर्णन किया है । आत्मरति-काल मे जिस स्वजातीय (समलिंगी) प्रेम का उदय होता है उसकी सांकेतिक झाँकी भी पंत मे मिलती है । उन्होने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करते समय स्वयं अपने को भी नारी मान लिया है ।१ कही-कही तो रज, ऋतु, तारा, मृग आदि कामशास्त्र के पारिभाषिक शब्दो का भी प्रयोग किया गया है । पर डा० रामविलास शर्मा के इस कथन को, कि पंत जी कविता की बगल में कोकशास्त्र लिये रहते है, परिमार्जन के साथ ही स्वीकार करना पड़ेगा ।

पंत की नारी भावना

अपने प्रेम के आलम्बन के रूप मे कवि ने जिस नारी की मनुहार की है वह शैशव और यौवन की सधि भूमि मे खड़ी एक तन्वी नारी है । यहा रवि ठाकुर की ढलती उम्र की नारी की 'नारीर उचित' नही है और न उनकी कुरूपा की रूप-साधना है । रवीन्द्रनाथ के प्राणों मे एक विरहिणी बैठी थी, छायावादी कवियो के मन मे एक मदिर-नयना किशोरी । यहाँ 'अधखिले अंगों का मधुमास' खिलता है । इस रूप मे छायावाद की नारी एक अधूरी नारी है ।

पंत की नारी भी अधूरी नारी है । पंत ने केवल उसके शैशव, तरुणाई और यौवन का चित्रण किया है । 'वीणा' और 'उच्छ्वास'

---

१. लाई हूँ, फूलों का हास
लोगी मोल, लोगी मोल

मे उसके शैशव को, 'ग्रथि' और 'गुजन' मे उसकी तरुणाई को तथा 'ग्राम्या' की 'ग्राम युवती' आदि कविताओं मे उसके यौवन को चित्रित किया गया। 'उच्छ्वास' और 'आंसू' की नारी, जिसकी आँखों मे कवि के प्रेम ने आकार पाया था, बालिका है--

--बालिका ही थी वह भी !

--'उच वास की वालिका (आ० क० पृ० ९)

'गुजन' मे वह किशोरी बन गई है--

झूलती उर में आज, किशोरि !
तुम्हारी मधुर-मूर्त्ति छविमान

--_० पृ० ४३

'ग्राम्या' मे वह नवयौवना है। वह निर्जन मे ऋतु-सिगार करती है ौर उसके शरीर मे ौवन गदरा गया --

निर्जन में सज ऋतु सिगार
तन पर योवन सुषमाशाली

--ग्राम युवती (आ० क० पृ० ८८-८९)

'ग्राम्या' मे सद्य-परिणीता 'ग्रामवधू' का भी उल्लेख हुआ है किन्तु पत के काव्य मे अविवाहिता की प्रधानता है। उन्हे उस 'भावी पत्नी, की कल्पना मे ज्यादा सुख मिलता है जिसके प्र म मिलन की याद कर रोमाच हो जाता है। उन्हे उस अनाघ्राता ग्रामयुवती का वर्णन करने मे ज्यादा रस मिलता है जो प्रेमी याचक की पद-आहट सुनकर कटकित हो जाती है--

आँचल सँभालती, फेर नयन मुख
पा प्रिय पद की आहट ;
आ ग्राम युवक
प्रेमी याचक

--ग्राम युवती (आ० क० पृ० ८७)

और पत के काव्य मे नारी प्राय. एक साथ ही शैशव, तरुणाई

और ौवन को लेकर उपस्थित होती है । उसमे शैशव की सरलता, तरुणाई की सकित लाज और यौवन की विलास-चेष्टाएँ हैं ।२ मालग पंत की नारी सदा ही शैशव और यौवन की सधि-भूमि मे खडी रहती है । 'उच्छ्-वास' की बालिका महज बालिका नही । एक ओर उसमे बचपन की सरलता ह ो दूसरी ओर उसकी आँखे कान तक खिचकर चितवन की मादकता भी बिखेरती है—

संधिकालीन नारी

—बालिका ही थी वह भी !
सरलपन ही था उसका मन,
. . . .
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन !

—उच्छ्वास की बालिका (आ० क० पृ० ९) ।

'आँसू' की बालिका के कपोलो मे हृदयगत भावो की लाली उतर आई है, उसके नयन कानो के पास आकर जैसे कुछ गोपनीय बात कहने को आतुर है और उसकी वाणी एव संकेतो मे सकोच ौर सचेष्ट लाज भी आ ग —

कपोलों में उर के मृदु भाव,
श्रवण नयनो में प्रिय बर्ताव ;
सरल संकेतों में संकोच,
मृदुल अधरों मे मधुर दुराव !

—आँसू की बालिका (आ० क० पृ० ११)

'अधखिले अगो का मधुमास' त जी ो अधिक आकर्षित करता है । 'भावी पत्नी' का मुख भी अधखि े कमल के समान है और यौवन जैसे उसके शैशव मे पल रहा है ।१

---

१. तुम्हारे शैशव में सोभार,
पर रहा होगा यौवन प्राण ;

वसंपतजी ने नारी को मा, सहचरी और ाण कहा है । पर प्रेमी रूपमें, मा बनी ेय ी की कल्पना से वह जैसे मर्माहत हो उ ते है। उन्हें ूल ही पसन्द है, ल नही ।[१]

और जैसा कहा गया, छायावाद की नारी-भावना में कुरूपा की रूप-साधना या प्रेम-साधना का उल्लेख नही हुआ है । छायावाद में रूपसी रूपसी का चित्रण हुआ है । उसके अंग-अंग पर नूर बरसता है---'तुम्हारी रोम रोम छबि-व्याज, छा गया मधुवन में मधुमास ।' उसके कपोलो पर यौवनसुलभ लाज की शिराजी की गुलाबी छायी है और जब वह हँसती है तब ो उसके गाल के गढो में सुन्दरता की बाढ आ जाती है---

लाज की मादक सुरा सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से
छलकती थी बाढ़ सी सौंदर्य की
अधखिले सस्मित गढ़ों से, सीप से ।

---ग्रथि से (आ० क० पृ० २०)

न गढो में किसके मन की नाव , इस बाढ़ में, नही डूब जाएगी, खासकर तब, जब तरुणाई के सौंदर्य की लहरों की मार पड रही हो?

इन गढ़ों में---रूप के आवर्त्त-से---
घूम-फिर कर, नाव से किसके नयन
हैं नहीं डूबे, भटक कर, अटककर
भार से दबकर तरुण सौंदर्य के ?

---ग्रथि मे (आ० क० पृ० २०)

पत की यह प्रिया रति-बाला-सी सुन्दर और अनाघ्रात कली-सी

१. झड़ गये स्नेह-वृन्त से फूल,
लगा यह असमय कैसा फल ! !

---उच्छ्वास (पल्लव पृ ६)

पुनीत है ।१ पर यह किशोरी यौवन की चेष्टाओं और काम की व्यापकता से परिचित है । उसकी आंखों में भंगिमा है और नयनों में पंचशर-बाण, किन्तु उसकी वाणी में लाज का अवगुंठन है और उसके प्रणय में मान की मर्यादा ।२

'पंत' की नारी का यह रूप मादक अवश्य है किन्तु बहुत अशिष्ट नहीं। उसकी चेष्टाओं को मान के द्वारा आवृत्तकर कवि ने मादकता को उचित मान दे दिया है ।

पंत की नारी-भावना में कीट्स की-सी मादकता है किन्तु बायरन का 'रुग्न-विलास', लौरेंस की 'रोगिकता' अथवा रीतिकालीन कवियों की स्थूलोपासना उतनी नहीं है ।

कल्पना ने पंत की नारी की काया रची है, अनुभूति ने उसे प्राण दिये हैं, यथार्थ ने स्वाभाविकता के रस में उसे अभिसिंचित किया है और अध्यात्म ने उसे आचारपूत बनाना चाहा है ।

नारी-एक आदर्श मानवी

नारी को पंत ने एक आदर्श सौंदर्य के रूप में देखा है । रीतिकालीन कवियों और मध्यकालीन सामंतों के लिए नारी केवल वासना की खुराक भर थी । पंत के लिए वह केवल योनि-मात्र नहीं है । वह सब प्रकार के मान की अधिकारिणी मानवी है । इसलिए वे उसकी सब प्रकार की मुक्ति चाहते हैं। उनकी दृष्टि में नारी आत्म-निर्भर, आत्मपूर्ण है ।

---

१. नवल कलिकाओं की-सी बाण,
बाल रति-सी अनुपम, असमान,

२. देह में पुलक, उरों में भार,
भ्रूवों में भंग, दृगों में बाण,
अधर में अमृत, हृदय में प्यार,
गिरा में लाज, प्रणय में मान ।

योनि नहीं है रे नारि, वह भी मानवी प्रतिष्ठित
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।

नारी पन्त जी के लिए एक स्वर्गिक विभूति है। वह एक नैसर्गिक दिव्यता लेकर धरती पर आई है। उसका शरीर और उसकी आत्मा दोनों दिव्य हैं। नारी के तन और मन दोनों की दिव्यता प्रमाणित करने के लिए एक ओर कवि ने उसके शरीर को प्रकृति के सुन्दरतम उपकरणों से रचा कहा है।१

नारी-एक स्वर्गिक विभूति

अपरिचित चितवन में था प्रात
....
ऊषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास.
चाँदनी का स्वभाव में भास,

—आँसू की बालिका (आ० क० पृ० ११)

और, इस प्रकार निसर्ग की विभूतियों से आभूपित कर उसे एक व्यापक

---

१. मुग्ध स्वर्ण-किरणों ने प्रात
प्रथम खिलाए वे जलजात;
नील व्योम ने ढल अज्ञात
उन्हें नीलिमा दी नवजात
जीवन की सरसी उस प्रात
लहरा उठी चूम मधु-वात
आकुल लहरों ने तत्काल
उनमें चंचलता दी ढाल
नील नलिन-सी हैं वे आँख!

—गु० पृ० ४७

सौंदर्य के रूप मे देखा है१, साथ ही दूसरी ओर उसे दृष्टि से अनुभूति के लोक मे खीच कर ले गये है। यहाँ उन्होने नारी की आत्मा में झाँका है ओर पाया है नारी के आत्मिक स्नेह आदि गुण इतने दिव्य है कि वह कल्याणी के अतिरिक्त कुछ और हो ही नही सकती। पत ने नारी को कुत्सि त रूप मे नही देखा है। उनका दृष्टिकोण आदर्श-विश्वासवादी रहा है। इसलिए उन्हे नारी के सग पवित्र गगा बहती दीखती है और उस कल्याणी की वाणी मे तीर्थराज की त्रिवेणी का सगीत सुनाई पडता है—

तुम्हारे छूने मे था प्राण,
सङ्ग में पावन गंगा स्नान;
तुम्हारी वाणी में कल्याणि!
त्रिवेणी की लहरों का गान!

—आँसू की बालिका (आ० क० पृ० ११)

नारी के प्रति शका का कोई क्षण ही उनके मन मे नही आता। वह सदा स्नेहमयी, सुन्दरतामयी है। अत उसके रोमरोम मे उन्हे अपार स्नेह, अटूट ऐक्य है—

स्नेहमयि! सुन्दरतामयि!
तुम्हारे रोम-रोम से नारि!
मुझे है स्नेह अपार;

अन्य क्षेत्रों की तरह नारी-भावना मे भी पत ने एक आदर्श सत्य यानी कल्पना के सत्य को स्वीकार किया है। नारी की

---

१. मुकुल-मधुपों का मृदु मधुमास,
स्वर्ण सुख, श्री सौरभ का सार,
मनोभावों का मधुर-विलास
विश्व-सुखमा ही का संसार

—गु० पृ० ४०-४१

नारी-एक सौंदर्य-चेतना

एक आदर्श कल्पना की है। इस अनुभूति-लोक में पहुँचकर पंत की नारी एक सौंदर्य-कल्पना, एक प्रेमानुभति मात्र रह जाती है।[१] पंत ने नारी को अधिकांशतः इसी लोक में प्रतिष्ठित करके देखा है। इसका मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि कवि का भावुक कल्पनाशील प्रेमी मन साधारण सौंदर्य से संतुष्ट नहीं होकर एक असाधारण रूप की कल्पना करता है और उसी छवि पर वह अपने भावों का पराग चढ़ाकर एक काल्पनिक-स्वप्निल संयोग में विभोर रहता है। इस तरह नारी रूप की एक कल्पलता बन जाती है और वह धरती पर तो नहीं होती—

कह उसे कल्पनाओं की
कल कल्पलता, अपनाया
बहु नवल भावनाओं का
उसमें पराग था पाया।

——उच्छ्वास की बालिका (आ० क० पृ० १०)

इस रूप में नारी रूप की स्थूलता को छोड़कर सौंदर्य की एक झंकार भर रह जाती है। उसकी सुन्दरता अछोर, अदृश्य हो उठती है। वह दृष्टि का विषय नहीं, केवल एक प्रेमानुभूति भर रह जाती है——

एक वीणा की मृदु झंकार!
कहाँ है सुन्दरता का पार!
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि!
दिखाऊँ मैं साकार!

——आँसू की बालिका (आ० क० पृ० ११)

---

१. कल्पना तुम में एकाकार,
कल्पना में तुम आठो याम;

इस प्रकार शेली की तरह पंत ने भी नारी को सौंदर्य-चेतना (Spirit of beauty), एक छबि-काव्य, के रूप मे देखा है--

अचल, रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछबि के काव्य में।

--ग्रंथि से (आ० क० पृ० २०)

निखिल-कल्पनामयी अयि अप्सरि !
अखिल विस्मयाकार !
अकथ, अलौकिक, अमर, अगोचर
भावों की आधार !

--गु० पृ० ६२

प्रेयसी के सौंदर्य में अखिल संस्कृति को अभिभूतकर कवि ने प्रेयसी की व्यापकता द्वारा प्रेम की लौकिक भावना को आध्यात्मिक अलौकिकता प्रदान करना चाहा है। 'वायु' के व्याज से पंत ने इसी 'निखिल छबि की छबि' नारी का चित्रण किया है--

प्राण ! तुम लघु लघु गात !
नील नभ के निंकुज में लीन,
नित्य नीरव, निःसंग नवीन
निखिल छबिकी छबि ! तुम छबिहीन
अप्सरी-सी अज्ञात।

....

विश्व हृत्‌शतदल निभृत-निवास,
अहर्निश जग-जीवन ह्रास-विलास,
अदृश्य, अस्पृय अजात !

--वायु के प्रति (आ० क० पृ० ४९)

वह 'तारिका-सी दिव्य और चारु चित्रा-सी आभासीन' है। 'आत्म निर्मलता में तल्लीन!' यह प्रणय-हंसिनी तो स्वर्ग की अभिसारिका है जो 'स्नेह की सृष्टि नवीन' लेकर उतरी है--

तारिका-सी तुम दिव्याकार,
चन्द्रिका की झकार !
स्वर्ग से उतरी क्या सोदगार
प्रणय-हसिनि सुकुमार ?
हृदय सर मे करने अभिसार,
रजत-रति, स्वर्ण-विहार !
——गु० पृ० ६४

स तरह कवि ने नारी के साथ धरती से स्वर्ग तक की यात्रा की है और उसे ऐहिक जगत् के साथ ही एक आदर्श धाम और आध्यात्मिक लोक मे प्रतिष्ठित करके देखने की चेष्टा की है ।

पत जी ने नारी को देवी, मा, सहचरी और प्राण कहा है । पर वह मुख्यत 'सहचरी' और 'प्राण' है । सहचरी के रूप मे कवि ने नारी के सौंदर्य और प्रेम के व्यावाहरिक पक्ष की अभिव्यक्ति की है । अभिसार—आलिंगन-चित्रो मे इसी पक्ष की अभिव्यजना हुई है । 'प्राण' के रूप म कवि ने नारी-सौंदर्य के कल्पना-प्रधान आदर्श रूप को अपनाया है । इस रूप मे वह अस्थिमास की नारी मात्र नही है, वह एक सौंदर्य-भावना है जो मनुष्यमात्र के आनन्द का आधार है——'सुर-नर-मुनि ईप्सित' है और जो सर्वयुगीन-सार्वभौमिक है——'प्रतियुग मे आती हो रगिणि ! रच-रच रूप नवीन' । इस रूप मे नारी देवी भी बन जाती है । 'वायु के प्रति' आदि रचनाओ मे नारी का चित्रण सी रूप मे किया गया है ।

पत जी ने नारी सम्बन्धी कवि-प्रसिद्धियों का[1]

---

१. पादाघातादशोक विकसित बकुलं योषितामास्यमद्यैः
यूनामङ्गेषुहाराः स्फुटति च हृदय विप्रयोस्यतापैः
मौर्वी रोलम्ब माला धनुरथविशिखाः कौसुभाः पुष्पकेतोः
भिन्न स्यादस्य वाणैर्युवजन हृदयं स्त्रीकटाक्षेण तद्वत् ।।
——साहित्य दर्पण

नारी सम्बन्धी कवि-प्रसिद्धियाँ भी (कि स्त्रियों के पादाघात से अशोक, स्पर्श से प्रियंगु कुल्ला करने से वकुल, देखने से तिलक, आलिंगन करने से मेंहदी, मृदुल भाषण से मन्दार, हँसी से चंपा, मुँह की हवा से आम, गीत से नमेरु, नृत्य से कार्णिकार फूल खिलते हैं) विशद वर्णन किया है––

खिल उठी चल-दसनावलि आज
कुंद-कलियों में कोमल-आभ,
एक चंचल-चितवन के व्याज
तिलक को चारु छत्र-सुख लाभ ।

तुम्हारे चल-पद चूम निहाल
मंजरित अरुण अशोक सकाल,
स्पर्श से रोम-रोम तत्काल
सतत-सिंचित प्रियंगु की बाल ।

स्वर्ण-कलियों की रुचि सुकुमार
चुरा चम्पक तुम से मृदु-वास,
तुम्हारी शुचि स्मति से साभार,
भ्रमर को आने दे क्यों पास ?

देख चंचल मृदु-पदु पद-चार
लुटाता स्वर्ण-राशि कनियार,
हृदय फूलों में लिए उदार
नर्म-मर्मज्ञ मुग्ध मन्दार ।

तुम्हारी पी मुख-वास तरंग
आज बौरे-भौरे, सहकार,
चुनाती नित लवंग निज अंग
तन्वि ! तुम-सी बनने सुकुमार
––गु० ० ५६-५७

प्रणय गीतों की सफलता

संयोग-पक्ष के प्रणय-गीतों की निर्मिति में पंत जी को पर्याप्त सफलता मिली है। हिन्दी के शृंगारी कवियों पर अस्वाभाविकता का लाछन लगाया गया है। बात यह है कि जब ये विरह-वर्णन करने लगते हैं तब कल्पना के कंगूरे पर चढकर 'कल्पना का इन्द्रजाल' बुनने लगते हैं और जब संयोग-शृंगार के प्रसंग की अवतारणा करते हैं तब कल्पना और अनुभूति को झटककर अत्यन्त स्थूल और निम्न चित्र उपस्थित कर देते हैं। इस विशृंखलता का अभाव पंत जी को रीति-कालीन शृंगारी कवियों से अलग एक उच्चतर- भाव-जगत् में प्रतिष्ठित करता है। उर्वर कल्पना और मार्मिक अनुभूति उनकी प्रेम-वर्णना के अपरिहार्य उपकरण हैं। इनके समन्वय में जहाँ 'परिवर्तन'[१] आदि कविताओं में वियोग का सुन्दर विकास हुआ है वहाँ 'मधुवन' आदि रचनाओं में संयोग के व्यापक रूप की सुन्दर सृष्टि हुई है[२]—

---

१. (क) अखिल यौवन के रंग उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल ;
कचों के चिकने, काले व्याल
केंचुली, कांस, सिवार ;
गूंजते हैं सबके दिन-चार,
सभी फिर हाहाकार !

(ख) प्रात ही तो कहलाई मात,
पयोधर बने उरोज उदार,
मधुर उर-इच्छा को अज्ञात
प्रथम ही मिला मृदुल-आकार ;
छिन गया हाय ! गोद का बाल
गडी है बिना बाल की नाल !

२. (क) नन्द दुलारे वाजपेयी

कवि वासना-प्रेरित प्रेमाकर्षण की विवशता से परिचित है जो विवेक के बंधन को नही मानती—

आकांक्षा का उच्छ्वसित वेग
मानता नही बंधन विवेक ।

—एक तारा (आ० क० पृ० ५४)

यौवन के उन्मद वसन्त में नारी का रूप कवि को उसी भाँति आकर्षित करता है जिस भाँति मधुकर को मादक मधु-गंध—

प्रथम-यौवन मेरा मधु मास,
मुग्ध-उर मधुकर, तुम मधु, प्राण !

—गु० पृ० ६५

वह पुरुष-नारी के प्रथम-मिलन की सिहरणभरी कल्पना से कंटकित हो उठता है —

अरे वह प्रथम-मिलन, अज्ञात !
विकम्पित मृदु-उर, पुलकित-गात,
संशकित, ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित-पद, नमित-पलक-दृग-पात,

—गु० पृ० ४३

इस प्रथम मिलन की कल्पना कितनी कोमल और इसकी अनुभूति कितनी मार्मिक है ! सुहाग रात में दो अपरचित हृदयों का

(ख) **आज उन्मद मधु-प्रात**
गगन के इन्दीवर से नील
झर रही स्वर्ण-मरन्द समान,
तुम्हारे शयन-शिथिल सरसिज उन्मील
छलकता ज्यों मदिरालस, प्राण !

—गु० पृ० ५४

मिलन है। दोनों मे धडकन है, पर दोनों की चेष्टाओं में भोलापन है। पुरुप स्वभाव से आग्रही है, नारी स्वभाव से लजवन्ती। पुरुप आवेगों से भर रहा है, नारी सिहर-सहम रही है और सम्पूर्ण अभिसार-प्रदेश उनकी साँसों की गध से मादक हो उठा है। 'उर्वर कल्पना और सच्ची अनुभूति' पत जी के प्रणय-गीतो की विभूति है।

कवि की प्रेयसी आँगन मे सहचरी बनकर उतरती है और गृहिणी बनकर गृह-काज करती है। किन्तु युवक को गृहिणी का नियत्रित सासारिक प्रेम-दान सतुष्ट नहीं करता। आज तो उसके यौवन के प्रथम मधुमास मे 'लालस लालस वातास' वह रही है। उसकी अभि-लापाओं मे नव-नव किसलय निकल आए है। उसकी अमराई मे 'तरुण रसाल' मजरित हो गये है। उसके मधुवन मे पहली बार प्राण-पिक कूक उठे है। गृह-काज तो रोज-रोज होता रहेगा। वह अपनी मुग्धा से गृह-काज छोड, यौवन के इस मादक प्रहर मे लाज छोडकर अभिलापाओ से एकाकार हो लेने का आग्रह करता है--

आज चंचल-चंचल मन-प्राण,
आज रे शिथिल-शिथिल तन भार;
आज तो प्राणों का दिन-मान,
आज संसार नही संसार !
आज क्या तुझे सुहाती लाज?
आज रहने दो यह गृह काज !

--गु० पृ० ५२

पर यह आग्रह भी शायद अशिष्ट नही है क्योकि इसमें पातिव्रत को ताक पर रखने की बात नही है। यह तो एक दम्पति का मधुरा-लाप है। इस गीत में 'प्रेम की मधुर विवशता' से बने सम्पूर्ण वाता-वरण में वास्तविकता की स्निग्धता है।

हाँ, एकाध जगह उसकी एकाकारिता सघन है--

मिलें अधरों से अधर समान,
नयन से नयन, गात से गात
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण
भुजों से भुज, कटि से कटि सात।

——गु० पृ० ६१

यह एकाकार-भावना अनपेक्षित रूप से शृंगारिक और स्थूल अवश्य है पर यह एक क्षण के लिए ही हमारे सामने उपस्थित होती है। दूसरे ही क्षण कवि इसे समान धरातल से उठाकर भावलोक में खींच लाता है——

आज तन-तन मन-मन हो लीन,
प्राण ! सुख-सुख, स्मृति-स्मृति चिरसात्,
एक क्षण, अखिल दिशाविधि-हीन,
एक रस, नाम-रूप -अज्ञात !

——गु० पृ० ६१

अतः पंत जी, नारी में वासना का जो सयोग है उससे परचित है किन्तु उनमें वासनावाद नहीं है। पंत जी मे वासना है पर एकाध स्थलों को छोडकर उस वासना में अशिष्टता या अश्लील शृंगारिकता की दुर्गन्ध नहीं है, 'वास्तविकता की सुरभि' है। कवि ने वासना को एक उचित स्थान पर छोड दिया है और उसकी कल्पना ने प्रेम तथा प्रेम के आधार नारी को क्रमशः संयमित और अनुभूतिप्रिय बना दिया है। पंत जी फ्रायड या शॉ की भाँति प्रेम को सेक्स का एक स्वच्छंद-वादी रूप मात्र नहीं मानते। प्रेम उनके लिए आत्मा की एक अनुभुति भी है। पंत जी के नाटक 'ज्योत्सना' मे एक नारी-पात्र ने कहा है कि 'मैं चाहती हूँ कि प्रेम की भाषा अधिक संस्कृत, प्रेम प्रगट करने के हावभाव और भी नवील एव परिमार्जित हो।' पंत के काव्य में प्रेम की इस संस्कृत भाषा का प्राय. प्रयोग हुआ है।

पंत जी का जीवन--दर्शन

जीवन-दर्शन का तात्पर्य है--जीवन के प्रति एक व्यापक दृष्टि-कोण। इस मानी मे पत जी का जीवन दर्शन कई अवस्थाओं को पार करता हुआ चला है। अत. उसके वर्तमान स्वरूप पर विचार करने के पहले उसके विकास-क्रम को देख लेना चाहिए। और, 'वीणा' से लेकर सद्य.प्रकाशित रचनाओं मे अभिव्यक्त जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण के सिहावलोकन से सहज ही यह निष्कर्ष निकलता है कि पत जी का जीवन-दर्शन चार अवस्थाओं से गुजरा है। उनके नाम और वयस-क्रम को इस प्रकार रखा जा सकता है--

जीवन-दर्शन की चार अवस्थाएँ

१ प्रकृतिवाद ('वीणा' से 'पल्लव' तक---यानी १९१८ ई० से १९२५ ई० तक)

२. आत्मवाद ('गुंजन' मे ---यानी १९३० ई० से १९३२ ई० तक)

३. भूतवाद, और अध्यात्मवाद से उसका तादात्म्य ('युगान्त' से 'ग्राम्या' तक---यानी १९३४ ई० से १९४० ई० तक)

४. स्वर्ण-चेतनावाद ('स्वर्ण-किरण' से---यानी १९४७ ई० से)

(बीच के कालो को चिन्तन-काल, सक्रान्ति-काल, परिवर्त्तन-काल या तैयारी-काल कह सकते है क्योंकि इनमे पत जी को अपने जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण के प्रति शंकाएं हुई है और वे उसमे परिवर्त्तन लाने की तैयारी करते रहे है। आप इन अन्तरालों को संकट-काल या रुग्नता-काल भी कह सकते है क्योंकि इनसे पंत जी या तो सामाजिक या पारिवारिक सकट का अनुभव करते रहे या स्वयं बीमार रहे। 'गुजन' की रचना के पूर्व उनके पिता का निधन हुआ। 'गुजन' और 'स्वर्ण किरण' की रचना के पूर्व वे स्वयं भी बहुत बीमार रहे और

एक प्रकार से यह एक दिलचस्प तथ्य है कि बीमारी का प्रभाव केवल पंत जी के शरीर पर ही नहीं पड़ा, बल्कि प्रत्येक बीमारी उनके जीवन-दर्शन में एक परिवर्तन लाकर ही गई।)

प्रकृतिवाद और निराशा

पंत जी की आरम्भिक रचनाएं प्रकृतिवाद से प्रभावित हैं। प्रकृतिवाद या प्राकृतिक दर्शन (Naturalistic Philosophy) संक्षेप में उस सिद्धांत का नाम है जिसमें व्यक्ति प्रकृति को ही चरम सत्य मानकर उसपर आत्मसमर्पण करता है। 'वीणा' से 'पल्लव' तक पंत जी इस दर्शन से अभिभूत रहे हैं। तब प्रकृति ही उनकी दृष्टि में चरम सत्य थी। द्रुमों की शीतल छाया में उन्हें परम सुख मिलता था और प्रकृति की माया उन्हें प्रभु की अलौकिक शक्ति (योग-माया) प्रतीत होती थी। प्रकृति की तुलना में मानव-जीवन बहुत अपूर्ण लगता था।१ प्रकृति के लोकोत्तर अमृत को छोड़कर मानव-व्यापार के लौकिक रस का पान करने में एक निरर्थकता और कठिनाई का बोध होता था——

छोड़ द्रुमों की शीतल छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन?

ऊषा-सस्मित किसलय—दल,
सुधा-रश्मि से उतरा जल,
ना, अधरामृत ही के मद में कैसे बहला दूं जीवन?
——वाणी आ० क० पृ० १

जैसे जीवन का सत्य प्रकृति में ही छिपा था। जिस आनन्दमय

---

१. वीणा और पल्लव, विशेषतः, मेरे प्राकृतिक साहचर्यकाल की रचनाएँ हैं; तब प्रकृति की महत्ता पर मुझे विश्वस था, और उसके व्यापारों में मुझे पूर्णता का आभास मिलता था।——पंत

सत्य की खोज मे मानव भटक रहा है, उसे प्रकृति ने पा लिया था। इसीलिए कवि विहगिनी को अन्तर्यामिनी कहता था——

कूक उठी सहसा तरु-वासिनी
गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुझको अन्तर्यामिनी
बतलाया उसका आना ?

——प्रथम रश्मि (आ० क० पृ० ३)

कवि को लगता था कि प्रकृति के विस्तार मे परम पुरुष ही केलि कर रहा है और उडते-पत्तों के रूप मे मानवों मे मिल रहा है एव लहर-रूपी हाथों को उठा-उठा कर जिज्ञासु प्राणियो को अपनी ओर बुला रहा है——

कभी उड़ते-पत्तों के साथ
मुझे मिलते मेरे सुकुमार,
बढ़ाकर लहरों से निज हाथ,
बुलाते, फिर ; मुझको उस पार;

——मुसकान (आ० क० पृ० २९)

प्रकृति ही मनुष्य के समस्त आनन्द का मूल स्रोत है——

खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि,
जगी सुरभि, डोले मधु बाल,
स्पन्दन, कंपन और, नवजीवन
सीखा जग ने अपनाना ;

——प्रथम रश्मि (आ० क० पृ० ५)

तब प्रकृति पर पत ने आत्मसमर्पण किया था और प्रकृति से तादात्म्य अनुभव करते समय स्वय अपने को भी नारी मान लिया था——प्रकृति-स्वरूपा होकर जैसे वे परमपुरुष से मिलने को आतुर हों।

तब प्रकृति की तुलना मे मानव जीवन बडा अप्रिय लगता था। प्रकृति मे स्वच्छदता थी, समाज मे स्वच्छद प्रेम और वाणी पर

अनेक प्रतिबंध थे। फलस्वरूप प्रकृति-दर्शन ने पंत के मनमें जीवन के प्रति एक निराशपूर्ण, विषादपूर्ण दृष्टिकोण का जन्म दिया। कवि को अपना जीवन पावस–ऋतु-सा लगता है––

मेरा पावस ऋतु-सा जीवन,
मानस-सा उमड़ा अपार मन ;

––'आँसू' से (आ० क० पृ० १५)

यही नही बल्कि उसे यह भी जान पड़ा कि सृष्टि मे आदि काल से वेदना की ही प्रधानता रही है और वेदना ही सस्वर होकर पहली बार कविता बन गई थी। इस मनोदशा मे उसे सम्पूर्ण ससार अनित्य, क्षणभगर और निरर्थक लगा––

आज बचपन का कोमल गात
जरा का पीला पात !
चार दिन सुखद चाँदनी रात,
और फिर अन्धकार, अज्ञात !

––अनित्य जग (आ० क० पृ० ३३)

किन्तु इस अनित्य जग की कल्पना ने कवि को मर्माहत कर दिया और उसके प्राण जैसे जग की अनित्यता में अमरता ढूँढने के लिए विकल हो उठे। 'परिवर्तन' ('अनित्य जग' 'निष्ठुर परिवर्त्तन' और 'नित्य जग' का सम्मिलित रूप) शीर्षक कविता कवि की इसी चेष्टा का परिणाम है। इस कविता मे जगत् एक साथ ही अनित्य ('अनित्य जग' मे) भी लगता है और नित्य ('नित्य जग' में) भी।

आज का दुख कल का आह्लाद,
और कल का सुख आज विषाद ;
समस्या स्वप्न-गूढ़ संसार,
पूर्त्ति जिसकी उस पार ;

––नित्य जग (आ० क० पृ० ४३)

इसके बाद पंतजी के जीवन मे कई घटनाएँ घटीं। पिता का

आत्मवाद और उल्लास

देहान्त हो गया। स्वयं बीमार रहे। कई वर्षों के बाद 'गुंजन' प्रकाशित हुआ। 'गुंजन' की चर्चा करते हुए पंत जी ने लिखा है कि 'मैं पल्लव से गुंजन में अपने को सुन्दरम् शिवम् की भूमि में पदार्पण करते हुए पाता हूँ।' 'गुंजन' पंतजी की भावधारा के एक निश्चित दिशा-परिवर्त्तन का द्योतक है। 'पल्लव' में उन्होंने सुषमा ढूँढी थी, 'गुंजन' में वह आत्मकल्याण का संधान कर रहे हैं—"क्या मेरी आत्मा का चिरधन?" 'गुंजन' को कवि ने अपने प्राणों का उन्मन गुंजन कहा है। वैसे, 'गुंजन' में प्रकृति के अनेक सम्मोहक चित्र हैं, पर प्रकृति का लावण्य-संगीत 'गुंजन' का मुख्य स्वर नहीं है। इसकी प्रणय-गीतिकाओं में अनुभूति का विपुल आकर्षण है, पर प्रेम 'गुञ्जन' की कला का अभिप्रेत नहीं है। 'गुंजन' का प्रकृत विषय है मानव-जीवन। यहाँ कवि के चिंता-केन्द्र में मानव बैठा है। मानव-जीवन के सुख-दुख का विवेचन और उसके दर्द के उपचार का संधान कवि का उद्देश्य है। 'गुंजन' की कला मांगलिक बनकर सुषमा-लोक से चिंतन-भूमि में उतरी है।

कवि की भावधारा के इस दिशापरिवर्त्तन के मुख्यतः तीन कारण हैं—

१. पिता का निधन और दीर्घ रुग्णता के उपरान्त कवि का स्वास्थ्य-लाभ।

२. दर्शन-उपनिषद् का अध्ययन और अनुशीलन।

३. तत्कालीन स्वातन्त्र्यान्दोलन और धरती के प्रति आकर्षण।

पिता के निधन और दीर्घ रुग्णता के उपरान्त प्राप्त होनेवाले स्वास्थ्य में कवि ने जन्म और मृत्यु के अक्षरों में लिखा मानव-जीवन का करुण-मधुर इतिहास पढ़ा। इस कठोर वास्तविकता से टकराकर 'पल्लव' और 'गुंजन' के बीच कवि का 'किशोर भावना का स्वप्न' टूट गया और उसका मन दर्शन के अन्तर्मुखचिंतन की ओर झुक

गया।१ दर्शन-उपनिषद् के अध्ययन-मनन ने उनके रागतत्व में मथन उत्पन्न किया। कुछ काल तक उनकी इच्छा में नैराश्य की उदासीनता छाती रही। 'जन्म के मधुर रूप में मृत्यु दिखाई देने लगी, वसंत के कुसुमित आवरण के भीतर पतझार का अस्थिपंजर।'२

किन्तु भारतीय दर्शन ने कवि के मनको 'अस्थिर वस्तु जगत् से हटाकर अधिक चिरन्तन भावजगत् में स्थापित किया।' अब वह क्षणिक के भीतर 'चिर-अव्यय' को और जड़ता के भीतर 'ज्योतिर्मय जीवन' को देखने लगा है। उसे विश्वास है कि संसार की जड़ता में चेतन को ग्रहणकर उसकी अनुभूति को अपने भीतर विकसित करने की शक्ति है।३ मन की ऐसी ही स्थिति में कवि ने गाया है—

---

१. पंत जी जब-जब अस्वस्थ हुए हैं तबतब दर्शन की ओर उनका विशेष झुकाव हुआ है। १९४४ की अस्वस्थता के उपरान्त प्रकाशित 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्णकिरण' इसके साक्षी हैं।

२. 'खोलता उधर जन्म लोचन,
मूंदती इधर मृत्यु क्षण क्षण!'
'वही मधुऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती,-जीवन है भार!'

३. इस अनित्य जगत में नित्य जगत को खोजने का प्रयत्न मेरे जीवन में जैसे 'परिवर्तन' के रचनाकाल से ही प्रारंभ हो गया था, 'परिवतन' उस अनुसंधान का एक प्रतीक मात्र है। हृदयमंथन का दूसरा मुख आप आगे चलकर 'गुंजन' और 'ज्योत्स्ना'—काल की रचनाओं में पायेंगे।

—पंत (प्रतीक—४ हेमंत : मेरा रचनाकाल)

जग के उर्वर-आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन !
बरसो लघु-लघु तृण, तरु पर
चिर-अव्यय, चिर-नूतन ।१

—प्रार्थना (आ० क० पृ० ४५)

इसलिए अब पल्लवकालीन 'करुणा-क्लिष्ट' भाव नहीं है, जीवन के प्रति एक नवीन उल्लासपूर्ण दृष्टिकोण है। वह जीवन को प्यार करने लगा है—

प्रिय मुझे विश्व सचराचर,
तृण, तरु, पशु, पक्षी, नर, सुरवर
सुन्दर, अनादि, शुभ सृष्टि अमर ;
....
जग जीवन में उल्लास मुझे
नव आशा, नव-अभिलाष मुझे,

—गु० पृ० २६

इसके पहले उसने जीवन को वेदना और निराशा की दृष्टि से देखा था। उसकी दृष्टि में आशा प्रवंचना थी और उच्छ्वास परिणाम। वेदना संसार का सत्य और आँसू संसार का काव्य था।२ वैसे, तब भी कभी-कभी वह सुख-दुख और हास-अश्रु के सापेक्ष रूप

१. मृतिकार पात्र खनि भरि बारबार
तोमार अमृत ढाल दिबे
अविरत नाना वर्ण गंधमय

—रवीन्द्र

२. सिसकते हैं समुद्र से मन,
उमड़ते हैं नभ से लोचन,
विश्व-वाणी ही है क्रन्दन
विश्व का काव्य अश्रु-कन !

—पल्लव, पृ० १९

को देखता था, पर वह निश्चय नहीं कर पाता था कि यह समन्वय वरदान है अथवा अभिशाप।१ पर अब वह जीवन के मांगलिक क्षणों के बीच आ गया है जहाँ उसे क्षणिक सुख-दुख के ऊपर छाये हुए चिरन्तन जीवन की सुखद अनुभूति होती है। वेदना अब आनन्द की साधना का अनिवार्य उपकरण बनकर वरेण्य बन गई है। वेदना मानव को वह दुर्लभ करुणा देती है जिसपर उसकी उदार आत्मा पलती है। दुःख मन को पूत भावों से भरता है।२

अतः कवि जीवन की कठोरता से बचकर चलनेवाले अपने सौंदर्योपासक मन से, जो अभी-अभी खिन्न और उदास हो गया था, संसार के कष्टों के बीच वेदना की साधना कर पुनीत और कोमल बनने का आग्रह करता है—

तप रे मधुर मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल
जग-जीवन की ज्वाला में गल
बन अकलुष उज्ज्वल औ' कोमल
तप रे विधुर विधुर मन।
—तप (आ० क० पृ० ५१)

---

१. विरह है अथवा यह वरदान !
कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता, सिसकता गान है,
शून्य आहों में सुरीले छंद हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है !
—आँसू से (आ० क० पृ० १५)

२. दुःख इस मानव आत्मा का
रे नित का मधुमय भोजन,
दुःख के तम को खा-खाकर
भरती प्रकाश से वह मन !
गुं० पृ० २०

इस प्रकार 'पल्लव' का व्योमविहारी कवि अब जीवन की डाली पर उतरा है। उसने जीवन-तरु की डाली-डाली की फेरी लगाई और पाया कि इस तरुवर की प्रत्येक टहनी में सुख के फल और दुःख के काँटे समान राशि में वर्तमान हैं। अत इस जीवन-विटप की छाया में फल चुननेवाले प्राणियों की चंगेरी भी सुख-दुःख से भरी है। उनके आँचल को जहाँ पराग ने सुवासित किया है वहाँ काँटों ने उसे झाँझर भी किया है—

देखूँ सबके उर की डाली—
सब में कुछ सुख के तरुण-फूल
सबमें कुछ दुःख के करुण-शूल
सुख दुःख न कोई सका भूल !

—उर की डाली (आ० क० पृ० ५२)

अन्तिम पंक्ति में कवि ने जीवन के कठोर सत्य का उद्घाटन किया है। सुख-दुःख मानव-जीवन की ऐसी यथार्थता अथवा हकीकत है जिसे भूलना-भुलाना सम्भव नहीं। सुख-दुःख की घाटियों से जिन्दगी का कारवाँ चलता है। हर्ष-विषाद के कगारों के बीच जीवन की भागीरथी बहती है। इस संसार के आँगन में ऊषा की अरुणिमा और संध्या की कालिख है, सुख की खिलखिलाती धूप और दुःख की मडराती छाया है, मिलन का आह्लाद और विरह का विषाद है। जीवन के अधरों पर मुस्कुराहट है, उसके नयनों में बरसात है—

वह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का,
यह हास-अश्रुमय आनन
रे इस मानव-जीवन का !

—सुख-दुख (आ० क० पृ० ५०)

फिर जीवन में सुख-दुख दोनों परस्पर एक प्रगाढ आलिंगन में इस प्रकार आबद्ध है कि एक को दूसरे से हटाया नहीं जा सकता---

है बँधे बिछोह-मिलन वो
देकर चिर स्नेहालिंगन ।

अतः इस धूप-छाही संसार के आंगन में जो उतरता है उसे उसके सुख-दुख, हर्ष-विषाद, जन्म-मृत्यु सबका भागी बनना पड़ता है । कवि जीवन के तत्त्वों के इस विवेचन-विश्लेषण के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि दु:खों पर पश्चाताप करने से श्रेयस्कर यही है कि हम सुख-दुःख दोनों को स्वीकार करके चलें । न दुःख में विह्वल हों और न सुख में पागल । हम सुख को जीवन का उपभोग्य समझकर ग्रहण करें और दुःख को जीवन का अपरिहार्य अंग समझकर वरण करें ।

अब सुख और दुःख की सापेक्षता पर कवि को पूर्ण विश्वास हो गया है । उसकी दृष्टि में अब सुख दु:ख दोनों सापेक्ष और अन्योन्याश्रित हैं । दु:खों के आधिक्य की भाँति सुखों का अतिरेक भी जीवन के वास्तविक आनन्द के प्रतिकूल है क्योंकि मनुष्य विविधता-पसन्द प्राणी है और एक वस्तु का दीर्घ संयोग उसके जीवन में एकरसता (Monotony) उत्पन्न करता है जो उदासीनता का कारण है---

जग पीड़ित है अति-दुख से
जग पीड़ित रे अति-सुख से ।

---सुख-दुख (आ० क० पृ० ५०)

अत: मानव जीवन की पूर्णता समान अनुपात में सुख और दुःख की उपस्थिति में ही है । इसलिए कवि सुख और दु:ख में समझौता करता है और चाहता है कि---

मानव जग मे बँट जावें
दुख सुख से औ' सुख दुख से ।
—सुख-दुख (आ० क० पृ० ५०)

सुख-दुःख के इस सम-विभाजन मे मानवो के बीच धन के समाजवादी विभाजन का तात्पर्य भी स्पष्ट हो जाता है। पर वैसे सुख-दुःख के विवेचन मे यहाँ कवि आत्मकल्याण तक ही सीमित रहा है।१ उसका दृष्टिकोण वैयक्तिक है।२ कवि की दृष्टि अन्तर्मुखी रही है।

यहाँ व्यक्ति के आत्मकल्याण की समस्या कवि के सामने है, लोक-कल्याण की व्यापक समस्या नही। दूसरे शब्दो मे कवि का झुकाव दर्शन की ओर है, विज्ञान की ओर नही। उसमे मानव के सामूहिक सघर्षो और सामाजिक समस्याओ का चित्रण नही है। इसलिए इस काल मे अभिव्यक्त पत के जीवन-दर्शन को हम आत्मवाद कहते है, क्योकि उसने मनुष्य के सुख-दुःख के कारणो को उसके मन के भीतर देखा है, उसे चारो ओर से घेरकर बैठे हुए समाज, परिस्थितियो और व्यवस्थाओ मे नही। और, दुःख-दर्द का उसने जो उपचार ढूढा है वह भी बहुत-कुछ मनोवैज्ञानिक है, सामाजिक नही। वस्तुत इस रचना-काल मे पत जी का उद्देश्य व्यक्ति के

---

१. 'गुंजन' और 'ज्योत्स्ना' में मेरी सौंदर्य-कल्पना क्रमशः आत्म-कल्याण और विश्वमंगल की भावना को अभिव्यक्त करने के लिए उपादान की तरह प्रयुक्त हुई है।
—पंत (आधुनिक कवि-पर्यालोचन)

२. 'ज्योत्स्ना' में मैंने जिस सत्य को सार्वभौमिक दृष्टिकोण से दिखाने का प्रयत्न किया है 'गुंजन' में उसी को व्यक्तिगत दृष्टिकोण से कहा है। 'गुंजन' के प्रगीत मेरी व्यक्तिगत साधना से संबद्ध है।
—पंत (प्रतीक ४ हेमंत· मेरा रचनाकाल)

आत्मोत्कर्ष का उपकरण ढूढना है, उसकी भौतिक और सामाजिक मान्यताओ का मूल्याकन करना नही।

पत जी की सामाजिक विचार-धारा का विपुल परिचय बाद की रचनाओ–'युगान्त', 'युगवाणी', और 'ग्राम्या' मे मिलता है। इस काल में वे मार्क्स के भूतवाद (Materialism) विशेष प्रभावित रहे है। इसके पहले वे मनुष्य को प्रकृति के भीतर से देखते थे, उस ऐतिहासिक मानव के रूप मे नही जो प्रकृति से सघर्ष करके आगे बढता आया है। लेकिन अब सोचने लगे कि प्राकृतिक दर्शन सामाजिक जीवन के लिए स्वास्थ्यकर नही है क्योकि वह आदमी को निष्क्रिय बनाता है और प्रकृति को सर्वशक्तिमयी मानकर उसपर आत्म-समर्पण सिखलाता है।१ अब पत जी मनुष्य को एक सघर्षशील सामाजिक प्राणी के रूप में देखने लगे जिसका समाज के प्रति भी कर्त्तव्य होता है। इस प्रकार पंत जी व्यक्ति से समाज की ओर आए। छायावादी पंत प्रगतिवादी बने। पुरातन रूढिग्रस्त संस्कृति का नाश और एक नूतन वैषम्यमुक्त समाज की प्रतिष्ठा के लिए क्रांति का आवाहन भौतिक-वाद या समाजवाद का एक प्रधान लक्षण है। प्रगतिवादी पत ने बड़े आवेश से उस क्राति–भावना को पकडा। अबतक वे बडे विश्वास

भूतवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय

---

१. तब मै प्राकृतिक दर्शन (नैच्युरेलिस्टिक फिलासफी) से अधिक प्रभावित था और मानवजाति के ऐतिहासिक संघर्ष के सत्य से अपरिचित था। दर्शन मनुष्य के वैयक्तिक सघर्ष का इतिहास है, विज्ञान सामूहिक संघर्ष का।

अब मै सोचता हूँ कि प्राकृतिक दर्शन, जो एक निष्क्रियता की हद तक सहिष्णुता प्रदान करता है, और एक प्रकार से प्रकृति को सर्वशक्तिमयी मानकर उसके प्रति आत्मसमर्पण सिखलाता है, वह सामाजिक जीवन के लिए स्वास्थ्यकर नहीं है। ––पंत

से मनुष्य की आत्मा की ओर देखते थे। अब हृदय के परिवर्त्तन और सामंतयुग की संस्कृति के पुनर्जागरण में जैसे उनका विश्वास नही रहा। इसलिए पिछली सामाजिक व्यवस्था के नाश के लिए वे क्रांति का ओजपूर्ण आह्वान करते हैं —

द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र !
हे त्रस्त-ध्वस्त ! हे शुष्क-शीर्ण !
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम बीतराग, जड़ पुराचीन !!
निष्प्राण विगत युग ! मृत विहंग !

—पतझर (आ० क० पृ० ६२)

किन्तु यह क्रांति-भावना केवल आक्रोश का परिणाम नही है। पंत जी को विश्वास है इस क्रांति के फलस्वरूप एक नया सुखकर, शुचितर, मानव-समाज प्रतिष्ठित होगा, श्रमजीवियों की सूखी हड्डियों में नया खून दौड़ेगा। पतझर के बाद बसन्त आएगा। इसी आशा से क्रांति का आवाहन करते हैं—

कंकाल जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर, पल्लव लाली !
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली !

—पतझर (आ० क० पृ० ६२)

वे क्रांति का अनल-गीत इसीलिए गाते है कि उसी के आग्नेय स्वर पर नयी मानवता विकसित होगी—

पावक पग धर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन

मार्क्सवादियों या भौतिकवादियों की तरह पंत जी भी मानते है कि मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना उसकी बाह्य सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब है और 'यदि हम बाह्य परिस्थितियों मे परिवर्त्तन ला सके

तो हमारी आन्तरिक धारणाएं भी उसी के अनुरूप बदल जाएगी'--

कहता भौतिकवाद वस्तु जग का कर तत्वान्वेषण,
भौतिक भव ही एक मात्र मानव का अन्तरदर्पण ।
स्थूल सत्य आधार, सूक्ष्म आधेय, हमारा जो मन,
बाह्य विवर्तन से होता युगपत् अंतर परिवर्त्तन ।

किन्तु पंत जी समाज का 'आमूल-परिवर्त्तन' चाहते हैं और यह अन्त-र्बहिमुखी दोनो प्रकार के परिवर्त्तनो से ही सम्भव है । अत पंत जी सास्कृतिक अभ्युदय करनेवाली आत्मा की शक्तियो के विकास के पक्षपाती हैं--

राजनीति का प्रश्न नहीं रे आज जगत् के सम्मुख,
....
आज वृहत् सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खंड मनुजता को युग-युग को होना है नव निर्मित ।

पंत जी की दृष्टि मे मनुष्य केवल अर्थ और काम का पुतला नही। यदि अन्न और काम ही उसका सर्वस्व है तो उसमे और एक पशु में कोई अन्तर नही । पंत मानव के इस रूप को बारबार धिक्कारते है। मनुष्य और पशु का भेद अन्तर मे है, संस्कृति और आत्मोत्कर्ष में है । इसलिए मनुष्य समाज के विकास के लिए केवल बाहरी सामाजिक समता नही चाहिए, उसके लिए अन्तर-अन्तर का भेद मिट जाना चाहिए। पतजी की दृष्टि में यदि मनुष्य के अन्तिम गुणो का विकास नही हुआ तो बाह्य भौतिक विकास मनुष्य के लिए घातक सिद्ध होगा, वह आदमी को और दुःखी कर देगा । इसलिए पंत जी वर्गसंघर्ष से अधिक सास्कृतिक क्रांति को महत्त्व देते हैं। उनकी दृष्टि में देह से अधिक महत्त्वपूर्ण आत्मा का उत्थान है--

बाह्य नहीं आन्तरिक साम्य
जीवों से मानव को प्रकाम्य ?

मानव को आदर्श चाहिए,
संस्कृति, आत्मोत्कर्ष चाहिए ;
बाह्य विधान उसे है बंधन
यदि न साम्य उसमें अन्तरतर—
....
पूर्ण तंत्र मानव, वह ईश्वर
मानव का विधि उसके भीतर ?

—चींटी (आ० क० पृ० ७६-७७)

चूँकि पंत जी अन्तर और बाहर दोनों में परिवर्त्तन चाहते हैं इसलिए उनकी क्रांति-भावना समन्वयवादी है। उसमें शरीर और आत्मा, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद, गांधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय है। पंत जी भौतिकवाद और अध्यात्मवाद दोनों से प्रभावित हुए हैं पर दोनों को किञ्चित परिमार्जन के साथ ही स्वीकार किया है। उन्होंने मार्क्सवाद के उस दर्शन को स्वीकार किया है जो मानव-जाति के सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक सम्बन्धों का विकास गोचर-सापेक्ष जगत् में करता है लेकिन मार्क्स के दर्शन के उस पक्ष को उन्होंने अपनी कविता का अंग बनने नहीं दिया है जिसमें शोषित श्रमजीवियों के संगठन और सामाजिक निर्माण का वास्तविक निर्णय आर्थिक और राजनीतिक क्रांतियाँ ही कर सकती हैं, तथा जिसकी परिणति, पूंजीवादी परिस्थितियों के कारण, वर्गयुद्ध और रक्तक्रांति में हुई है। इसी प्रकार भारतीय अध्यात्मवाद के इस दर्शन को माना है कि गोचर-सापेक्ष जगत् के परे एक निरपेक्ष सत्य भी है और वह मन एवं बुद्धि से अतीत है। लेकिन इसके साथ ही उन्होंने भारतीय अध्यात्मवाद के उस पक्ष को स्वीकार नहीं किया है जिसमें जगत् केवल माया है और जिसकी एकान्त परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई है।

इस प्रकार पंत जी ने भौतिकवाद और अध्यात्मवाद दोनों के

मांगलिक सत्य को, दोनों के कल्याणाकारी पक्ष को ग्रहण किया है। कह सकते है कि पंत की क्रांति-भावना मांगलिक है। इस दृष्टि से उन्हे ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय अध्यात्मदर्शन मे किसी-प्रकार का विरोध नही जान पड़ा। दोनों ही का लक्ष्य कल्याण है। फर्क यही है कि एक जीवन के सत्य को समतल पर देखता है, दूसरा ऊर्ध्वतल पर। और, चूँकि पंत मनुष्य का सर्वांगीन विकास चाहते है, मनुष्य के अन्तर और बाहर दोनों का उन्नयन चाहते है इसलिए उन्होंने भूत और अध्यात्म दोनो के सत्य का समन्वय किया है।

'महात्मा जी के प्रति' शीर्षक कविता मे पंत जी गांधीवाद की ओर आकर्षित है। यह आकर्षण भूतवाद और अध्यात्मवाद के आरम्भिक समन्वय की सूचना देता है—

वस्तु सत्य का करते भी तुम जग में यदि आवाहन,
सबसे पहले विमुख तुम्हारे होता निर्धन भारत ;
मध्य युगों की नैतिकता मे पोषित शोषित-जनगण
बिना भाव स्वप्नों को परखे कब हो सकते जाग्रत ?
सफल तुम्हारा सत्यान्वेषण, मानव सत्यान्वेषक !

—महात्मा जी के प्रति (आ० क० पृ० ८४)

इन पंक्तियो में वस्तु-सत्य को श्रेष्ठ कहा गया है किन्तु भाव-स्वप्न की उपयोगिता को भी स्वीकार किया गया है और गांधी जी द्वारा प्रतिष्ठित सत्य की अभ्यर्थना की गई है। गांधी जी साध्य के अतिरिक्त साधन (Medium) को भी महत्त्व देते थे। पंत जी भी मंगलमय, प्रेममय मानवोचित साधन के द्वारा साध्य की प्राप्ति करना चहाते है—

मानव को चाहिए, यहाँ मानवोचित साधन।

—दो लड़के (आ० क० पृ० ७८)

मार्क्स का मार्ग है क्रांति और वर्गसंघर्ष का। वह खूनी रास्ता पंत को पसन्द नहीं क्योंकि पंत ने मनुष्य की एक बड़ी कोमल, सुन्दर,

सुसंस्कृत, सुकुमार कल्पना की है । पंत की यह कान मानव-कल्पना संघर्ष की आग, बाढ, उल्का, झंझा को सह ही नहीं सकती––

वह्नि, बाढ, उल्का, झंझा का भीषण भू पर
कैसे सह सकता है कोमल मनुज कलेवर !

––दो लड़के (आ० क० पृ० ७८)

'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का स्पष्ट समन्वय हुआ है । पंत जी प्रत्यक्ष जगत् के उन्नयन के भी अभिलाषी हैं और मार्क्सवाद के प्रतिकूल ईश्वर की चिरन्तन सत्ता में भी विश्वास करते हैं । पंत जी इसे 'नवीन भौतिकवाद' कहते हैं जो उन्नीसवीं सदी के संकीर्ण भौतिकवाद से भिन्न है और जो दर्शन और विज्ञान दोनों से, मानव सभ्यता के अन्तर्बाह्य विकास से, ऐतिहासिक समन्वय से बना है[1]––

दर्शन युग का अन्त, अन्त विज्ञानों का संघर्षण,
अब दर्शन-विज्ञान सत्य करता नव्य निरूपण ।

'स्वर्ण किरण' (१९४७) और 'स्वर्णधूलि' (१९४८) के साथ पंतजी के जीवन-दर्शन का चौथा अध्याय शुरू होता है । चूँकि इसमें आन्तरिक चेतना की स्वर्णिम आभा का बारम्बार संकेत किया गया है इस दर्शन को, शब्दाभाव में, स्वर्ण-चेतनावाद कहा जा सकता है ।

स्वर्ण-चेतनावाद

द्वितीय महासमर के नारकीय दृश्य, विज्ञान के ध्वंसकारी परिणाम, स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद होनेवाले भीषण नरसंहार आदि घटनाओं ने कवि के मन में भौतिकता की प्रतिक्रिया उत्पन्न की है । पंत जी का संबंध इधर योगी अरविन्द के आश्रम से भी हो गया है । अतः 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' के दर्शन को हम युद्धोत्तर राजनैतिक घटनाओं, वैयक्तिक चिंताओं और अरविन्द के प्रभाव की पृष्ठभूमि में पढ सकेंगे ।

---

१. पर्यालोचन (आ० क० पृ० २३)

वे आज फिर सामाजिक जीवन से अन्तर्मन की ओर प्रवृत्त हो गये हैं। आज उनकी दृष्टि वर्त्तमान जीवन की समस्या का बहुलांश बाहर नहीं भीतर है और इसलिए उसका निदान भी आत्मा में ही ढूँढ़ना पड़ेगा—

सामाजिक जीवन से कहीं महत् अन्तर्मन,
बृहत् विश्व इतिहास, चेतना गीता किंतु चिरंतन।

कवि को विश्वास हो गया है कि अति-भौतिकवाद के कारण मानव जीवन का रस सूखता जा रहा है।

इस यान्त्रिक युग के भीषण लौह अस्थि-पंजर में मनुष्यत्व के हृदय का स्पंदन कैसे हो—यही उसकी दृष्टि में आज का सबसे महान् प्रश्न है और वह अणु-युग के वासियों को इसी प्रश्न पर विचार करने के हेतु आमंत्रित करता है—

आओ, सोचें द्विपद जीव कैसे बन सकता मानव,
शक्ति-मत्त होकर भूदेव न बन जाए भू-दानव!
मानव संस्कृति का क्या स्वर्ग बसायेगा वह भू पर,
भीषण अणु का भू प्रकंप या छोड़ेगा प्रलयंकर!

पंत जी ने इस प्रश्न का उत्तर अन्तर्जीवन के प्रवाह में पाया है।

अन्तर्जीवन का प्रवाह ही
भर सकता जग में समत्व नव!

पंत जी यह मानते हैं कि सामाजिक स्तर ऊँचा करने के लिए व्यक्ति पर ध्यान रखना होगा। सामाजिक जीवन व्यक्ति के आत्मिक विकास पर निर्भर करता है। व्यक्ति ही अपनी चेतना को रूपान्तरित कर विकसित समाज का निर्माण करेगा। पृथ्वी पर सामाजिक जीवन का सुख-स्वर्ग उतारने के लिए विश्व के बाह्य रूपान्तर के साथ व्यक्ति के अंतर का रूपान्तर होना भी आवश्यक है।

इस भाँति पंत जी इन रचनाओं में एक बार फिर व्यक्ति, आत्मा और अध्यात्म की ओर लौट आए हैं।

पर इसका यह तात्पर्य नही कि आज उन्होंने जिस आध्यात्मिक अन्तर्चेतना को वाणी दी है उसमे भौतिकता का सर्वथा बहिष्कार कर दिया है ।

वे आज भी मानते हैं कि जीवन-साफल्य का मूलतत्त्व भूत और अध्यात्म का समन्वय है—जीवन-तत्त्वो का सतुलन है—

वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन,
भूतवाद हो जिसका रज तन प्राणिवाद जिसका मन,
औ' अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गंभीर चिरतन।

पर इतना अवश्य है कि अतिशय भौतिकता की प्रतिक्रिया के कारण आज पत जी अध्यात्म की ओर अधिक उन्मुख है—

आज हमें मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख।

दर्शनों की परस्पर अन्विति और समन्वयवाद

जो कुछ ऊपर निवेदन किया गया उसका तात्पर्य केवल यही है कि पत जी अपने जीवनके विशेषकाल में एक विशेष दर्शन मे अधिक प्रभावित रहे ।इसका अर्थ यह कभी नही है कि कुछ दिनो तक एक दर्शन को उन्होने स्वीकार किया और आगे चलकर उसे बिल्कुल छोड दिया। उदाहरण के लिए जब वे प्रकृति से मानव की ओर आए तब भी वे प्रकृति से विचारो की प्रेरणा लेते रहे। मनुष्य के सघर्षो का चित्रण करते हुए भी वे इसकी कामना करते रहे कि काश, मनुष्य पक्षियों की तरह गा पाता ! इसी प्रकार जब वे व्यक्ति से समाज की ओर आए तब भी वे आत्मवाद और भौतिकवाद दोनों को लिए रहे और यह मानते रहे कि मनुष्य की बाह्य परि-स्थितियों और आत्मिक गुणों दोनो का विकास होना चाहिए । और, आज जब वे अतिशय भौतिकता से त्रस्त होकर ऊर्ध्वचेतना की ओर आए हैं तब भी वे समदिक विकास से मुँह मोड नही बैठे हैं बल्कि आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य उनकी दृष्टि में सामाजिक कल्याण ही है । एक शब्द मे हम उनके दर्शन को समन्वयवादी कह

सकते हैं। उनका दर्शन एक स्वप्नद्रष्टा आदर्शवादी कलाकार का दर्शन है जो वास्तविक सत्य (factualtruth) को नहीं बल्कि आदर्श सत्य को अपना आधार बनाता है। दूसरे शब्दों में हम इसे कल्पना का सत्य कह सकते हैं।[१]

जीवन-दर्शन पर बाह्य प्रभाव

पंत जी का जीवन-दर्शन मुख्यतः सनातन हिन्दू विचार-परम्परा, गीता के कर्मयोग, महात्मा बुद्ध के 'मध्यममार्ग', रवि ठाकुर की बंधन-मुक्ति अरविन्द के योग और वर्डसवर्थ के प्रकृति-सिद्धांत से प्रभावित है। पंतजी जहाँ सुख-दुःख को क्षणिक और माया मानते हैं वहाँ वे प्राचीन हिन्दू विचार का अनुमोदन करते हैं।[२] जहाँ वे दुःख को तृष्णामूलक मानते हैं और इच्छा को संयमितकर 'इन्द्रिय निग्रह' का आदेश देते हैं वहां वे 'गीता' में प्रतिपादित कर्मयोग का अनुशीलन करते हैं। जहाँ सुख-दुःख दोनों को स्वीकार करके चलने का आग्रह करते हैं वहाँ वे माहात्मा बुद्ध का समर्थन करते हैं——मध्यम पथ व्रज। इसी भाँति 'तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन' में रवि बाबू की पंक्ति 'असंख्य बंधन मांझे लभिव

---

१. मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ और उसे ईश्वरीय प्रतिमा का अंश भी मानता हूँ।....मेरा विचार है कि वीणा से लेकर ग्राम्या तक, अपनी सभी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है।

——पंत (आधु० क० पृ० २६)

२. गीता में स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के लक्षण——

दुःखेष्वनुद्विग्न मनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

पंत जी की पंक्तियाँ हैं——

अस्थिर है जग का सुख दुख
जीवन ही नित्य चिरंतन

'ब्रह्मानन्दमय मुक्तिरस्वाद' की प्रतिध्वनि है और जहाँ पंत जी यह कहते हैं कि केवल मनुष्य ही दुखी है, प्रकृति नही, मनुष्य ने अपने को कृत्रिम बनाकर दुःखपूर्ण बना लिया है; उसे जीवन की सारी प्रकृति से ग्रहण करनी चाहिए, वहाँ वे वर्डसवर्थ के प्रकृति-सिद्धान्त का अनुकरण करते है।[१]

अरविन्द का प्रभाव इस प्रकार है। अरविन्द अपनी योगसाधना के द्वारा ससार को दिव्य बनाना चाहते है। वे इस जगत् को माया नही भगवान का सस्थान मानते है। इसलिए वे ससार से भागना नही चाहते। यही उनमे और पहले के योगियो मे अतर है। अरविन्द स पृथ्वी पर योग द्वारा अमरत्व उतारना चाहते है। बाह्य जीवन मे आतरिक रूपान्तर और विकास लाकर मनुष्य मे देवत्व की अवतारणा करना उनके योग का लक्ष्य है। पत जी मे हम अरविन्द के इन योग-सिद्धान्ता का प्रभाव देख सकते है। यही नही, कही कही; तो अरविन्द के ऊर्ध्व मानव और अतिमानस-चेतना के भी दर्शन हो जाते है।

ऊर्ध्व चेतना को चलना भू पर धर जीवन के पग
समदिक् मन को पंख खोल चिद्नभ मे उठना व्यापक!

प्रभावो का परिणाम

छायावादी कवियो मे पन्त जी ही बाह्य प्रभावो से सर्वाधिक प्रभावित हुए है। उनकी चिताओं ने भी विभिन्न मतवादो की कृतज्ञता स्वीकार की है।[२] इससे

---

१. बन की सूनी डाली पर
सीखा कली ने मुस्काना
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुःख को अपनाना

२. मेरी कल्पना को जिन जिन विचार-धाराओं से प्रेरणा मिली है उन सबका समीकरण करने की मैंने चेष्टा की है।

—पंत (आ० क० पृ० २६)

उनके जीवन-दर्शन का स्वतन्त्र अस्तित्व कुछ अस्पष्ट हो गया है और कहीं कहीं विवादी सुर भी सुनाई पड़ता है।

जीवन-दर्शन का भारतीय स्वरूप

पर पंत का यह जीवन-दर्शन मूलत: भारतीय है। वह मार्क्सवादी नहीं है क्योंकि कवि सुख-दु:ख का मात्र आर्थिक मूल्यांकन नहीं करता। उसकी दृष्टि में सुख-दु:ख का सम्बन्ध मन से अधिक है। हाँ उसके इस दर्शन में भूत और अध्यात्म के समन्वय का आभास अवश्य मिलता है[1]। वह ईश्वर में आस्था रखता है और साथ ही वस्तुसत्य और आत्मसत्य के समन्वय से, बहिर्जीवन और अन्तर्जीवन के संगठन में एक नूतन संस्कृति, एक विकसित लोक-जीवन का निर्माण भी करना चाहता है—

चाहिये विश्व को नवजीवन।

---

१. यही समन्वय पंत जी के जीवन दर्शन का मूलाधार है—

'जिस प्रकार पूर्व की सभ्यता अपने एकांकी आत्मवाद और अध्यात्मवाद के दुष्परिणामों से नष्ट हुई उसी प्रकार पश्चिम की सभ्यता भी अपने एकांकी प्रकृतिवाद, विकासवाद और भूतवाद के दुष्परिणाम से विनाश के दलदल में डूब गयी। पश्चिम के जड़वाद की मांसल प्रतिमा में पूर्व के अध्यात्म-प्रकाश की आत्मा भरकर एवं अध्यात्मवाद के अस्थिपंजर में भूत या जड़विज्ञान के रूप रंगों को भरकर हमने आने वाले युग की मूर्ति का निर्माण किया है।'

—'ज्योत्स्ना' (पंत)

'मानव-जीवन एवं समाज का रूपान्तर करने तथा पृथ्वी पर मानव स्वर्ग बसाने का वस्तु-स्वप्न नवयुग की भावात्मक देन है। मध्ययुग के दार्शनिकों ने जिस प्रकार बाह्य जीवन की अवहेलना कर जगत् को माया या मिथ्या कहा है और आधुनिक भूतदर्शन जिसप्रकार अब जीवन-सत्य की उपेक्षा कर उसे बहिर्जीवन के अधीन रखना चाहता है, 'युगवाणी' में इन दोनों एकांगी दृष्टिकोणों का खंडन किया गया है।

पंत का कवि उस मधि-प्रदेश का गायक है जहाँ शिव और सुन्दर, अध्यात्म और भूत, ऊर्ध्व और समदिक्, धरती और आसमान मिलते हैं।

'लोक-कल्याण के लिए जीवन की बाह्य (संप्रति राजनीतिक-आर्थिक) और आभ्यंतरिक (सांस्कृतिक-आध्यात्मिक) दोनों ही गतियों का संगठन करना आवश्यक है। मात्रा और गुण दोनों का संतुलन होना चाहिए।

'मैंने मार्क्सवाद के लोक-संगठन रूपी व्यापक आदर्शवाद और भारतीय दर्शन के चेतनात्मक ऊर्ध्व आदर्शवाद दोनों का समन्वय करने का प्रयत्न किया है।....पदार्थ (मैटर) और चेतना (स्पिरिट) को मैंने दो किनारों की तरह माना है जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित एवं विकसित होता है।

'अपने देश में जन-साधारण के मन में जीवन के प्रति जिस खोखले वैराग्य की भावना घर कर गई है उसका विरोधकर नवीन सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर नवीन मानसिक जीवन प्रतिष्ठित करने पर जोर दिया गया है। भौतिक विज्ञान के विकास के कारण भू-रचना के जिस भावात्मक दर्शन का इस युग में आविर्भाव हुआ है उसे युगदर्शन का एक मुख्य स्तम्भ समझना चाहिए।'

—पंत (युगवाणी पर एक दृष्टि: प्रतीक, शरद्)

पंत के विचार

'पंत का जीवन-दर्शन' शीर्षक सन्दर्भ में जीवन के प्रति पंत जी के व्यापक दृष्टिकोण पर विचार किया गया है, यहाँ जीवन और जगत् के खंड-सत्यों और मान्यताओं पर विचार किया जाएगा।

अन्य छायावादी कवियों की तरह पंत जी के अध्ययन से भी जो पहली बात स्पष्ट होती है वह यह है कि पंत जी सर्वचेतनवादी हैं।

सर्वचेतन-वादी : सर्वात्मवादी

कवि की दृष्टि में प्रत्येक पदार्थ चेतना और स्पंदन से युक्त है। प्रत्येक पदार्थ आत्मा से युक्त है और प्रत्येक आत्मा अपने भीतर विश्वात्मा को लिए बैठी है। पंत के लिए सरित् प्रवाह जड़ जलधार नहीं है, वह भी उस आत्मा से युक्त है जो चेतना का नियंत्रण कर उसके अस्तित्व और प्रवाह को बनाए रखती है—

आत्मा है सरिता के भी,
जिससे सरिता है सरिता ;

न केवल मनुष्य ही इच्छाओं से उद्वेलित होता है वरन् कठोर पहाड़ में भी छाती होती है जिसमें तरुवर-रूपी आकांक्षाएँ उठ-उठकर नीरव भाषा में बहुत कुछ कह जाती हैं—

गिरिवर के उर से उठ-उठकर
उच्चाकांक्षाओं-से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष; अटल, कुछ चिन्ता पर !

——पर्वत प्रदेश में पावस (आ० क० पृ० १३

पंत की दृष्टि में सम्पूर्ण प्रकृति ब्रह्म की विवृति है। समस्त प्रकृति

उसी की छवि से प्रकाशित है। उसीका असीम आनन्द प्रकृति में विविध रूपों में प्रगट हो रहा है। सागर की लहरों में वही सब्ज परिधान पहन लेता है और आसमान में वही नील-कलेवर बन जाता है। यानी धरती और आकाश में एक ही आनन्द का विस्तार है--

प्रकृतिः ब्रह्म की विवृति

एक ही तो असीम उल्लास
विश्व में पाता विविधाभास ;
तरल जलनिधि में हरित विलास,
शान्त अम्बर में नील विकास

---नित्य जग (आ० क० पृ० ८१)

अत प्रकृति ब्रह्म के समान ही चिरन्तन और शाश्वत है--

शाश्वत नभ का नीला-विकास,
शाश्वत शशि का यह रजत-हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास।

--नौका विहार (आ० क० पृ० ५८)

चांदनी ब्रह्म की भांति ही दृष्टि का विषय नहीं, अनुभूति का विषय है। वह है भी और नहीं भी है। वह सब में और सब उसमें है। वह अनिर्वचनीय है। कबीर ने बूंद और समुद्र के पारस्परिक संबंध के द्वारा अद्वैतता सिद्ध की थी। पंत ने चांदनी को देखकर उसी शैली में कहा---

वह है, वह नहीं, अनिर्वच,
जग उसमें, वह जग में लय,
साकार-चेतना सी वह
जिसमें अचेत जीवाशय !

--चांदनी (आ० क० पृ० ६१)

पंत ने एक-आध स्थल पर संसार को क्षणभंगुर-'बुदबुदों का व्याकुल संसार' कहा है। किन्तु ऐसे वाक्य आवेग-वाक्य हैं, सिद्धांत

वाक्य नहीं। सिद्धांतरूप में पंत जगत् की नित्यता को

जगत् स्वीकार करते हैं। सृष्टि सृजनशील है, इसलिए अजर है। वह अपने भीतर निर अमरता छिपाए हुए है, उसकी मुट्ठी में 'महाकार' बंधा है—

वह है मुट्ठी में बन्द किए
वट के पादप का महाकार
संसार एक ! आश्चर्य एक !
वह एक बूंद सागर अपार !

—सृष्टि (आ० क० पृ० ६५)

इस सृष्टि में वह उर्वरता है, वह शक्ति है जिसके कारण वह अपने भीतर विराट् को विकसित कर सकती है। इसलिए यह जगत् ब्रह्म की भाँति ही शुभ, सुन्दर, आनादि और अमर है—'सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर'। इस संसार में बसनेवाला, इस

√जीव : मानव

धरती की कोख से जन्म लेनेवाला प्रत्येक जीव प्रभु का अंश है, अमर पुत्र है। कोई पदार्थ, कोई जीव क्षुद्र और नगण्य नहीं है। सब शाश्वत, सब अमर हैं, सब आत्मज्योतित, आत्म-पूर्ण हैं—

मिट्टी का गहरा अन्धकार
सोया है उसमें एक बीज,—
उसका प्रकाश उसके भीतर
वह अमरपुत्र ! वह तुच्छ चीज ?

—सृष्टि (आ० क० पृ० ६६)

प्रत्येक पदार्थ अथवा जीव ब्रह्म से निकलता है और उसीमें समा जाता है—

चिर जन्ममरण को हँस हँस कर
हम आलिंगन करतीं पल पल,

फिर फिर असीम से उठ उठकर
फिर फिर उसमें हो हो ओझल !

—लहरो का गीत (आ० क० पृ० ४३)

और मानव तो ब्रह्म की सम्पूर्ण सुन्दरता और अमरता लेकर उतरा है—

पृथ्वी की प्रिय तारावली !
जग के बसन्त के वैभव !
तुम सहज सत्य सुन्दर हो,
चिर आदि और चिर अभिनव !

मानव अमृत-पुत्र है ।

आत्मा

ऊपर हमलोगो ने देखा है कि पत जी सर्वात्मवादी है। प्रत्येक पदार्थ मे उन्होने आत्मा का अधिवास देखा है। आत्मा एक वास्तविक सत्ता है और है वह ब्रह्म का ज्योतिपिड—'अनन्त का मुक्त मीन'। इसलिए वह ब्रह्म की तरह ससार के भीतर रहकर भी निर्लिप्त है—बधनमुक्त । वह सासारिक कदर्म से पंकिल नही होती, मलिन नही होती । वह दुख से विकल और निराशा से उदास भी नही होती । प्रसन्नता उसका धर्म है । वह उज्ज्वल धीर, शुद्ध और प्रबुद्ध है—

वह रे अनन्त का मुक्त-मीन अपने असंग-सुख में बिलीन,
स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन ।
निष्कम्प-शिखा-सा वह निरूपम भेदता जगत-जीवन का तम,
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र, वह सम !

—एक तारा (आ० क० पृ० ५४-५५)

आत्म और जगदर्शन

अपने इस रूप को भूल जाने के कारण मनुष्य अपने को ब्रह्मेत्तर समझने लगता है। सत सुन्दर दास के शब्दो मे मनुष्य आत्मतत्त्व की ओर दृष्टि न डालकर पंचभूतो को देखता है—'सूधी ओर न देखई, देखै दर्पण पृष्ठ ।

इसी 'देहाध्यास' से उत्पन्न भ्रम उसके समस्त दुःखों का कारण है। नाम और दृश्य के वाह्यावरणों के भ्रम में पड़ा व्यक्ति अपने को शेष सृष्टि से भिन्न, एकाकी और अकिंचन समझता है और दुःखी एवं भयभीत होता है। पर, ज्योंही वह रूप और नाम के आवरण को भेदकर आत्मा में झाँकता है त्योंही उसे सर्वत्र एक ही तत्त्व का प्रसार मिलता है और इस आत्मप्रसार में उसे अपूर्व आनन्द मिलता है। 'एक तारा' शीर्षक कविता में पंत जी ने भी संसार को आत्मा के माध्यम से देखने का आग्रह किया है—

गुंजित अलि-सा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन-अन्धकार,
हलका एकाकी व्यथा-भार!
जगमग-जगमग नभ का आँगन लद गया कुन्द कलियों से घन
वह आत्म और यह जग-दर्शन!

—एक तारा (आ० क० पृ० ५५)

पंत जी ईश्वर पर विश्वास करते हैं—'ईश्वर पर चिर विश्वास सहे'। उनका ईश्वर एक सार्वभौमिक, अरूप-असीम
ब्रह्म सत्ता है। अखिल सृष्टि के चर-अचर सभी उसी के संकेतों से परिचालित हैं—

एक छबि के असंख्य उडुगन,
एक ही सब में स्पंदन;
एक छबि के विकास में लीन,
एक विधि के आधीन!

—नित्य जग (आ० क० पृ० ४०)

वह सत्ता संसार में रहकर भी, जल की अनन्त राशि में छिपी मछली की तरह, गुप्त, अदृश्य और अनिर्वचनीय है—

सुनता हूँ, इस निस्तल-जल में
रहती मछली मोती वाली,

इस प्रकार कवि ने जीव, जगत् और ब्रह्म में अभेद-सा स्थापित किया है। कहा जा सकता है कि वह अद्वैतवादी है।

अद्वैतवादबनाम रहस्यवाद

किन्तु नहीं, वह अद्वैतवादी नहीं, रहस्यवादी-सा है क्योंकि अद्वैतवादी को अपने अस्तित्व का बोध नहीं होता और रहस्यवादी अपने अस्तित्व का तिरस्कार नहीं कर पाता। पंत में भी अपने अस्तित्व का तिरस्कार नहीं है।[1]

वह स्वयं उसके पास जाना नहीं चाहता, वरन् उसे ही अपने पास बुलाना चाहता है। यह भावना भक्त कवियों की प्रेम-भावना के निकट है। अतः पंत जी का रहस्यवाद शुष्क अद्वैतवाद से भिन्न और भक्ति से युक्त है। पंत जी का विशुद्ध भक्ति का एक पुराना गीत भी है--

भक्ति का योग

चरण-कमल में अर्पण कर मन,
रज-रंजित कर तन,
मधुरस-मज्जित कर मम जीवन
चरणामृत-आशय में।
नीरव-तार हृदय में--

--नीरव तार (आ० क० पृ० ६)

इन पंक्तियों में जैसे निर्गुण साकार-सा हो गया है और कवि की भक्ति वैष्णव धर्म की करुणा से सिक्त हो उठी है।

वैष्णवीयता और मुक्ति-कल्पना

जब पंत जी बंधनोंवाली मुक्ति के प्रति आसक्ति प्रगट करते हैं और गंधहीन को गंधयुक्त तथा अरूप को स्वरूपपूरित बनाने का आग्रह करते हैं तब भी उनकी भावना वेदान्तवाद की अपेक्षा वैष्णव भक्तिवाद के निकट होती है--

---

१. विस्तार के लिए देखिए, 'रहस्यवाद और पंत' शीर्षक संदर्भ

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन,
गंध हीन तू गंध युक्त बन,
निज रूप में भर स्वरूप, मन।
मूर्त्तिमान बन निर्धन।

—तप (आ० क० पृ० ५१)

इसलिये पत वैराग्यवाली मुक्ति नही चाहते जिसमें संसार का तिरस्कार होता है। वे ससार के मधुर-सम्बन्धो के बीच मुक्ति की उपलब्धि करना चाहते हैं। यह मुक्ति-भावना आधुनिक है। रवीन्द्र, महादेवी आदि ने इसी प्रकार की मुक्ति की कामना की है।

सुख-दुःख

मध्यवर्त्ती तत्त्वों अर्थात् सुख-दु.ख, जन्म-मृत्यु आदि पर यथास्थान विचार हो चुका है। यहाँ संक्षेप में यह जान ले कि पत सृष्टि को सुख-दु.खपूर्ण मानते हैं। 'जड चेतन गुन दोषमय विश्व किन्ह करतार' वाली तुलसी दास की उक्ति को पत ने अपनी कविताओ मे जगह-जगह विविध प्रकार से कहा है।

यह साँझ उषा का आँगन,
आलिगन विरह-मिलन का
चिर हास अश्रुमय आनन
रे इस मानव-जीवन का

—सुखदुख (आ० क० ० ५०)

इसे ही त ने वैदिकवाद कहा है—

है यह वैदिकवाद
विश्व का सुख-दुःख मय उन्माद!

—स्नेह (आ० क० पृ० ७)

पर वे सुख और दुःख को सापेक्ष और परस्पर आश्रित मानते हैं। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना नहीं हो सकती।

आज का दुख कल का आह्लाद,
और कल का सुख आज विषाद ;
—-नित्य जग (आ० क० पृ० ४३)

उन्होंने दुःख के कारणों पर विचार करते हुए पाया है कि सभी दुःखों का मूल तृष्णा है, महत्वाकाक्षाएं हैं, असयमित-अबाध इच्छाएँ हैं जो सीमित साधनो के इस ससार में कभी पूरी नही होती । इसीलिए हमारा असतोष है, हाहाकार है ।

यह ठीक है कि हम इच्छा को जीवन से सर्वथा अलग नही कर सकते किन्तु यदि च्छा सृष्टि का प्राण है तो साधना आत्मा की पूजी है । हमारा जीवन, हमारी प्रत्येक क्रिया किसी न किसी इच्छा, काम अथवा आकाक्षा से उत्प्रेरित है और हमारी आत्मा, आत्मा का प्रत्येक निर्देश सयत च्छाओं की साधना अथवा सयम की भावना से अनुप्राणित है । इच्छा के कारण जीवन गतिशील और प्राणपूर्ण है; संयम के कारण आत्मा सदा प्रसन्न और शात । अत: सम-इच्छाओ की साधना में, सयमित जीवन व्यतीत करने मे ही तन और मन, काया और आत्मा दोनो प्रसन्न और सुखी हो सकती है।

अतः गीता की तरह वे साधना को ही सब कुछ मानने का आग्रह करते है—

अलभ है इष्ट, अतः अनमोल,
साधना ही जीवन का मोल ।
—-नित्य जग (आ० क० पृ० ४३)

वे यह भी मानते है कि ससार में दुख का रहना जरूरी है क्योकि इसी कारण ससार में क्षमा, दया, प्यार आदि वे गुण रहते है जिनको पाकर ही मनुष्य मनुष्य बनता है—

बिना दुख के सब सुख निस्सार
बिना आँसू के जीवन भार ;
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसी से क्षमा दया और प्यार !
—-नित्य जग (आ० क० पृ० ४३)

वे इसलिए भी दुख और सुख दोनों को धरती में रखना चाहते हैं कि आदमी एक विविधता-पसन्द प्राणी है। एक चीज का दीर्घ संयोग उसके जीवन में एकरसता ला देता है। यदि संसार से दुःख एकबारगी उठ जाए तो संसार बिल्कुल नीरस हो जाएगा। इसलिए वे सुख-दुख को सम अनुपात (Proportion) में चाहते हैं——

मानव जग में बँट जावे
दुख सुख से औ' सुख दुख से !

——सुख-दुख (आ० क० पृ० ५०)

पंत ने 'दुख' के बाह्य और आन्तरिक दोनों कारणों पर विचार किया है। समाज में सम्पत्ति और सुविधा का जो वैषम्य है उसके कारण भी मनुष्य दुःखी है। इसलिए पंत समाज का नवनिर्माण चाहते हैं। किंतु पंत की दृष्टि में दुख का कारण केवल आर्थिक नहीं है। दुःख मानसिक भी होता है। इसलिए पंत समाज की व्यवस्था में परिवर्तन और मनुष्य की आन्तरिक उन्नति दोनों चाहते हैं।

जन्म और मृत्यु के प्रति पंत जी का दृष्टिकोण भारतीय अध्यात्मवाद वाला दृष्टिकोण है जिसमें जन्म और मृत्यु अपने-आप में कोई महत्त्वपूर्ण अस्तित्व नहीं रखते। उन दोनों से होकर जीवन की भागीरथी बहती रहती है। जीवन के शाश्वत-प्रवाह में पड़ने वाले ये घाट उसके प्रवाह क्रम में कोई व्यतिक्रम उपस्थित नहीं कर सकते——

जन्म और मृत्यु

चिर जन्ममरण के आर-पार
शाश्वत जीवन-नौका-विहार।

——नौका-विहार (आ० क० पृ० ५८)

पंत जी के प्रेम और नारी-सम्बन्धी विचारों का उल्लेख 'प्रणयगीत और नारी एवं प्रेमभावना' शीर्षक संदर्भ में हो चुका है।